महादेवी वर्मा साहित्य: वाद-विवाद-संवाद

(इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद की हिन्दी विषय में डी. फिल.
की उपाधि के लिए प्रस्तुत)

शोध प्रबन्ध
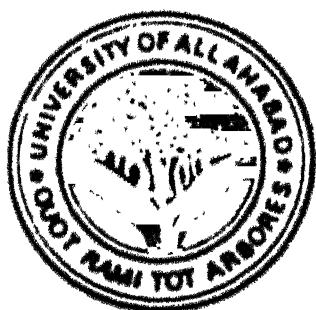
शोध निर्देशक
प्रो० मालती तिवारी
प्रोफेसर एवं पूर्व अध्यक्ष
हिन्दी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

शोधार्थी
शालिनी त्रिपाठी
हिन्दी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
मई, २००२

अनुक्रमणिका

भूमिका 2-6

प्रथम अध्याय 8-20

महादेवी की मानसिक संरचनाः परिवेश और परिस्थितियाँ

1.राजनीतिक परिवेश

1.1. अठाहरवीं सदी का भारत

1.2. राष्ट्रीय आन्दोलन और महात्मा गाँधी

2. सामाजिक परिस्थिति -

2.1. समाज में नारी की स्थिति

2.2. परिवार, शिक्षा - सांस्थानिक प्रभाव,

2.3. नारी की विषम स्थिति और महादेवी

2.4. महादेवी के व्यक्तित्व निर्माण में प्रभावी कारक - महात्मा बुद्ध, महात्मा गाँधी और मीरा

3. साहित्यिक वातावरण -

3.1. युगीन साहित्यिक परिवेश

3.2. समकालीन रचनाकारों का प्रभाव

3.3. महादेवी का स्थान।

द्वितीय अध्याय 22-48

छायावादः वाद-विवाद-संवाद

1. छायावाद का उदय
    - 1.1. राजनीतिक परिवेश
    - 1.2. सामाजिक परिस्थिति
    - 1.3. साहित्यिक वातावरण
2. नामकरण को लेकर उठा विवाद
3. प्रवर्तक-कवि के सम्बन्ध में मत वैभिन्नय
4. छायावादः आलोचकों तथा कवियों द्वारा उठाए गए विवाद और संवाद।

तृतीय -अध्याय 50-84

महादेवी के काव्य का विश्लेषणात्मक परिचय -

1. महादेवी का काव्यक्षेत्र में प्रवेश
2. काव्यकृतियाँ एक परिचय
    - 2.1. नीहार
    - 2.2. रश्मि
    - 2.3. नीरजा
    - 2.4. सान्ध्यगीत
    - 2.5. दीपशिखा
    - 2.6 बंगदर्शन
    - 2.7. सप्तपर्णा
    - 2.8. हिमालय

चतुर्थ अध्याय 86-189

महादेवी के काव्य में अनुभूति एवं अभिव्यक्ति पक्ष

1. अनुभूति पक्ष-

1.1. वेदना

1.2. करुणा

1.3. रहस्य

1.4. प्रकृति

2. अभिव्यक्ति पक्ष -

2.1. गेय तत्व

2.2. भाषा

2.3. विम्ब

2.4. प्रतीक

3. महादेवी के काव्य को लेकर उठाए गए विवाद

पंचम अध्याय 191-281

महादेवी का गद्य साहित्यः अन्तर्वस्तु, भाषा और शिल्प स्वरूप और विश्लेषण

1. महादेवी का गद्य लेखन में प्रवेश

2. काव्य से गद्य का अन्तर

3. गद्य की विविध विधाएँ -

3.1. रेखाचित्र

3.2. संस्मरण

3.3. आलोचकों द्वारा उठाया गया विधा का प्रश्न

3.4. महादेवी के संस्मरण और रेखाचित्रः अन्तर्वस्तु का विश्लेषण

4. महादेवी का निबन्ध लेखन

5. महादेवी की अन्य गद्य रचनाएँ

6. गद्य रचनाएँः भाषा और शिल्प

7. महादेवी के गद्य को लेकर उठाए गए विवाद

षष्ठ अध्याय 283-290

उपसंहार

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची 291-296

भूमिका

भूमिका

'महादेवी वर्मा साहित्यः वाद-विवाद-संवाद' यह विषय डी0एस0ए0 के अन्तर्गत मेरे लिए चुना गया, जो मेरी रुचि के भी सर्वथा उपयुक्त था। प्रारम्भ में छायावाद में वृहत्त्रयी की ही कल्पना की गई है, जिसमें जयशंकर प्रसाद, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला और सुमित्रानन्दन पन्त रहे हैं। महादेवी वर्मा इस काव्यान्दोलन से सबसे अन्त में जुड़ती हैं और चतुष्टयी की कल्पना को साकार करती हैं। हमें एक विचित्र विरोधाभास छायावादी कवियों के मध्य मिलता है कि जहाँ प्रारम्भिक तीनों कवि आलोचना के घेरे में रहते हुए अपने काव्य को प्रतिष्ठा दिलवाने में समर्थ हो जाते हैं, वहीं महादेवी के काव्य को आज भी वह प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं होती जिसकी वे सहज अधिकारिणी हैं। आखिर महादेवी को साहित्य-जगत में वह केन्द्रीयता क्यों नहीं प्राप्त होती जो अन्य कवियों को समय-समय पर मिलती रही। महादेवी के काव्य की जब भी चर्चा की जाती है तो निरन्तर प्रचलन में रहने वाली कुछ कविताओं का नाम लेकर यह बता दिया जाता है कि यही महादेवी का काव्य है। यह विडम्बना ही है कि महादेवी के काव्य को लेकर की जा रही आलोचना को देखकर ऐसा लगता है कि जैसे महादेवी को हाशिए पर कर दिया गया हो। लेकिन आज 'वाद-विवाद-संवाद' के द्वारा छायावाद के सभी प्रमुख कवियों पर एक नये दृष्टिकोण से विचार किया जा रहा है। इसके अन्तर्गत 'महादेवी साहित्यः वाद-विवाद-संवाद', जो मेरे शोध प्रबन्ध का विषय है, के सम्बन्ध में तत्कालीन पत्रपत्रिकाओं में इतने विवाद उठाए गए हैं कि यह विषय अपने-आप ही सार्थक हो उठा है और इसके लिए साठ-सत्तर साल पहले की पत्रिकाओं को टटोलना अपने-आप में एक खास अनुभव रहा है।

चूँकि छायावाद एक काव्यान्दोलन के रूप में प्रतिष्ठित होता है, इसलिए जब भी छायावाद की बात होती है तो वह इन कवियों के काव्य तक ही वह सिमट कर रह जाती है, जबकि इन सभी कवियों का गद्य-साहित्य इनके काव्य से किसी भी स्तर में कम नहीं है। महादेवी वर्मा भी सृजनात्मकता के विविध आयामों को चुनती हैं और उत्कृष्ट कोटि के साहित्य का सृजन करती हैं। यद्यपि उनका साहित्य परिमाण में कम है, लेकिन गुणों की दृष्टि से वह परिमाण में कम होते हुए भी महत्वपूर्ण बन गया है। महादेवी के समय में उनकी आलोचना ऐसे वर्ग के द्वारा की जा रही थी, जो महादेवी को भी जानता था और उनके साहित्य को भी। लेकिन आज हमारे सामने सिर्फ उनका साहित्य है तथा तत्कालीन और वर्तमान आलोचकों की प्रतिक्रिया है। इसी को आधार बनाकर मैंने महादेवी के समग्र साहित्य का विश्लेषण करने का प्रयत्न किया है। उनके

साहित्य के सम्बन्ध में तत्कालीन पत्रपत्रिकाओं में जो विवाद उठाए गए हैं, जहाँ तक सम्भव हो सका, उन्हें इस शोध-प्रबन्ध में विवेचित करने का भी प्रयास किया है।

मैंने इस शोध-प्रबन्ध को छह अध्यायों में बांटा है। प्रथम अध्याय 'महादेवी की मानसिक संरचनाः परिवेश और परिस्थितियाँ' के अन्तर्गत महादेवी की मनोरचना को निर्मित करने वाले तत्वों का विवेचन किया है क्योंकि प्रत्येक रचनाकार अपने समय की राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक परिवेश और परिस्थितियों से प्रभावित होता है। साथ ही, परिवार और शिक्षा संस्था जैसे सांस्थानिक प्रभाव भी रचनाकार का निर्माण करते हैं। समाज में नारी की विषम स्थिति भी महादेवी को आन्दोलित करती है और इन सबके साथ उनके व्यक्तित्व निर्माण में वेद, उपनिषद, बुद्ध, मीरा और महात्मा गाँधी का तो पर्याप्त प्रभाव पड़ा ही, साथ ही उनके समकालीन रचनाकारों ने भी उन्हें कम प्रभावित नहीं किया है। इस प्रकार प्रथम अध्याय में महादेवी पर पड़ने वाले बाह्य दबाव और अन्तर्दबावों का उल्लेख करके महादेवी की मानसिक स्थिति को समझने का प्रयास किया है, जिस कारण वे साहित्यक्षेत्र की ओर उन्मुख होती है।

द्वितीय अध्याय 'छायावादः वाद-विवाद-संवाद' में छायावाद के जन्म के समय की राजनीतिक, सामाजिक परिस्थितियों का उल्लेख किया गया है। द्विवेदी युग की इतिवृत्तात्मकता को छोड़कर अचानक छायावाद जैसे काव्यान्दोलन के जन्म के कारणों का विवेचन द्वितीय अध्याय की विषयवस्तु है। साथ ही छायावाद अपने जन्म से ही विवादों से घिरा रहा है। इसके नामकरण, प्रवर्तक कवि और इसकी विषयवस्तु को लेकर आलोचक वर्ग और समर्थक वर्ग के मध्य हुए विवाद-संवाद के माध्यम से छायावाद को समझने की कोशिश की गई है।

तृतीय अध्याय 'महादेवी के काव्य का विश्लेषणात्मक परिचय' में महादेवी का काव्य क्षेत्र में आगमन और उनकी सभी काव्य कृतियों- 'नीहार', 'रश्मि', 'नीरजा', 'सांध्यगीत', 'दीपशिखा', 'बंगदर्शन', 'सप्तपर्णा' और 'हिमालय' की विषयवस्तु का विवेचन किया है और इस विवेचन के द्वारा महादेवी की काव्यगत प्रवृत्तियों का अध्ययन करना आसान हो गया है, जो मेरे शोध प्रबन्ध का चतुर्थ अध्याय है।

चतुर्थ अध्याय 'महादेवी के काव्य में अनुभूति एवं अभिव्यक्ति पक्ष' के अन्तर्गत काव्य में विद्यमान अनुभूतिगत एवं अभिव्यक्तिगत विशेषताओं का विवेचन किया है। अनुभूतिगत विशेषताओं के अन्तर्गत मुख्य रूप से वेदना, करुणा, रहस्य और प्रकृति की विशेषताओं का विवेचन तथा इनके सम्बन्ध में आलोचकों की क्रिया-प्रतिक्रिया पर विचार किया गया है और गेयतत्व, भाषा, बिम्ब और प्रतीक, जो महादेवी के काव्य की अभिव्यंजना शिल्प और उसकी समृद्धि के लिए प्रमुख कारक तत्व के रूप में प्रयुक्त हुए हैं उनके विषय

में गम्भीरता से जांच-पड़ताल करने की चेष्टा की है क्योंकि ये तत्व जहाँ एक ओर छायावाद की प्रमुख प्रवृत्ति के रूप में मान्य थे वहीं दूसरी ओर महादेवी की भावाभिव्यक्ति को भी पूर्णता प्रदान कर रहे थे किन्तु महादेवी काव्य के आलोचकों ने स्थान-स्थान पर इस विषय को लेकर भी विवाद की स्थिति को बनाए रखा। इन समस्त विशेषताओं को चतुर्थ अध्याय में समाहित किया गया है।

पंचम अध्याय 'महादेवी का गद्य साहित्यः अन्तर्वस्तु, भाषा और शिल्प-स्वरूप और विश्लेषण' में महादेवी के समस्त गद्य साहित्य को विवेचन के लिए चुना गया है। काव्यक्षेत्र से सर्वथा विपरीत गद्य क्षेत्र की ओर महादेवी का आ जाना और काव्य तथा गद्य की विषयवस्तु में जमीन-आसमान का अन्तर होना, जो उनके साहित्य का अध्ययन करने वाले प्रत्येक पाठक को चमत्कृत करता रहा है, का विवेचन और इस विवेचन में उनके काव्य और गद्य के मध्य कुछ समान तत्वों को ढूँढ़ने की कोशिश की है। साथ ही उनके रेखाचित्र, संस्मरण को लेकर तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में आलोचकों द्वारा उठाये गए विधा के प्रश्न को हल करने का प्रयास महादेवी के कथन के आधार पर उन्हें समझने और उन पर विचार करने की चेष्टा की है। इन संस्मरणात्मक रेखाचित्रों की अन्तर्वस्तु का आलोचनात्मक विश्लेषण भी पंचम अध्याय की विषयवस्तु है। इसके अतिरिक्त महादेवी के निबन्ध साहित्य के अन्तर्गत 'शृंखला की कड़ियाँ', 'साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध' और क्षणदा जैसी कृतियों का विवेचन किया है। कुछ विद्वानों के मतानुसार महादेवी की दो अन्य गद्य रचनाएँ- 'पथ के साथी' और 'मेरा परिवार', जो हिन्दी साहित्य में अपने ढंग की अकेली रचना है, को भी अध्ययन का आधार बनाया गया है। इसके साथ ही इन गद्य रचनाओं की भाषा और शिल्प का भी विवेचन है। इसके अतिरिक्त महादेवी के गद्य साहित्य को लेकर भी तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में उठाए गए विवाद और उनके माध्यम से महादेवी के गद्य साहित्य के सम्बन्ध में कुछ प्रश्नों को उठाया गया है।

इस शोध प्रबन्ध का अंतिम अध्याय 'उपसंहार' अथवा 'निष्कर्ष' के रूप में है। इसमें महादेवी के काव्य साहित्य और गद्य साहित्य में विद्यमान अंतर्विरोधों के साथ उनके साहित्य को समझने की आवश्यकता पर बल दिया गया है।

बड़ों का शुभआशीर्वाद और गुरुजनों का समुचित मार्गदर्शन पाकर इस शोधप्रबन्ध को पूर्ण करते हुए मैं प्रसन्नता और सन्तोष का अनुभव कर रही हूँ। बचपन से ही मेरी माँ श्रीमती लक्ष्मी तिवारी और पिता श्री बाल मुकुन्द तिवारी द्वारा उच्च अध्ययन के लिए प्रेरित और निरन्तर प्रोत्साहित किया जाना ही इस शोधप्रबन्ध की रचना का आधार बना। मेरी माँ और पिता दोनों ने प्रारम्भ से ही मुझे अपनी रुचि के अनुसार विकास करने के समस्त अवसर प्रदान किये, साथ ही इनके प्यार और प्रोत्साहन की तो मैं सहज अधिकारिणी थी। इसीलिए आज इस शोध प्रबन्ध को पूरा करने में वस्तुतः माता-पिता के द्वारा किया गया

श्रम ही सार्थक हुआ है। इसके साथ ही मेरी निर्देशिका प्रो0 मालती तिवारी, जिनके सम्पर्क में मैं एम0ए0 के दौरान आई और जिनके व्यक्तित्व से मैं तभी से प्रभावित रही हूँ, के निर्देशन में शोध-कार्य करते हुए विषय से सम्बन्धित ज्ञान और दृष्टि तो पाई ही, साथ उनके साथ बिताये हुए क्षणों में उनके व्यक्तित्व के कई अन्य पहलुओं से भी मेरा परिचय हुआ, जिससे मुझे उनके साथ अब सम्बन्धों की मजबूत डोर से बाँध दिया है। उनके सहज, स्नेहिल और आत्मीयतापूर्ण व्यवहार ने ही मुझे प्रेरित किया जिसके कारण मैं उनके साथ विषय से सम्बन्धित जिज्ञासाओं के समाधान के साथ ही साथ इतर विषयों पर भी बातचीत करने में समर्थ हो सकी। उनके द्वारा दिये गए समुचित मार्गदर्शन और दृष्टि के कारण ही आज यह शोध प्रबन्ध इस रूप में सम्पूर्ण हो सका।

इस शोध प्रबन्ध को पूरा करने में मेरी सास श्रीमती कश्मीरा शुक्ला और श्वसुर श्री भवानी शंकर शुक्ल, जिनके संरक्षकत्व में मैं एक वर्ष पूर्व आई, के द्वारा दिया गया प्रोत्साहन एवं सहयोग मेरे लिए आजीवन अविस्मरणीय रहेगा। मेरी सास और श्वसुर दोनों ने ही मुझे यहाँ पर वैसा ही परिवेश और वातावरण प्रदान किया जैसा कि मुझे अपने पिता के घर में प्राप्त था। यही कारण है कि यह शोध-प्रबन्ध समय से पूरा हो सका। मेरे लिए इस शोधप्रबन्ध को पूरा करना माता-पिता और सास-श्वसुर के सपने को पूरा करने जैसा है। मैं अपने श्वसुर के बड़े भाई श्री श्रीलाल शुक्ल, जिनके कृतित्व से मैं पहले से ही प्रभावित थी और जिनके व्यक्तित्व से विवाह के पश्चात परिचय हुआ, के प्रति भी कृतज्ञ हूँ जिन्होंने विवाह के तुरन्त बाद मुझसे इस शोध कार्य को शीघ्रता से समाप्त करने को कहा था। इसके साथ ही मैं विषय सामग्री एकत्रित करने में मदद करने के लिए इलाहाबाद संग्रहालय के डॉ. रंजन शुक्ल के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ। मैं अपने चाचा श्री ओमशंकर तिवारी एवं चाची श्रीमती अरुण तिवारी के प्रति भी हार्दिक आभार व्यक्त करती हूँ जिन्होंने इलाहाबाद प्रवास के दौरान मेरी छोटी से छोटी आवश्यकताओं को पूरा करने में सदैव तत्पर रहे। इसके साथ ही मैं अपने भाईयों—श्री मनोज, श्री नवीन एवं डा0 प्रवीण—जो हमेशा से ही मेरी समस्त समस्याओं को ध्यानपूर्वक सुनकर उसे सुलझाने का प्रयत्न करते रहे और गम्भीरता के क्षणों को भी अपने मधुर स्वभाव के कारण सरस बनाए रखा, लेकिन इन तीनों से मैंने जो पाया, उसे मैं अपना अधिकार मानती हूँ।

मैं अपने विभाग के समस्त गुरुजनों के प्रति भी आभार व्यक्त करती हूँ जिनके अध्यापन द्वारा ही मेरे अध्ययन को समुचित दिशा प्राप्त हुई। मैं आज अपनी पूर्व निर्देशिका स्वर्गीया श्रीमती मालती सिंह के प्रति कृतज्ञ हूँ जिन्होंने मेरे लिए इस विषय को चुना और मुझे प्रारम्भिक दिशा निर्देश दिए। इसके साथ ही उन समस्त विद्वानों के प्रति भी आभार व्यक्त करती हूँ, जिनकी पुस्तकों का मैंने अध्ययन किया। मै विश्वविद्यालय प्रशासन के प्रति भी कृतज्ञ हूँ जिन्होंने मुझे छात्रावास में रहने की अनुमति प्रदान की।

इस शोध प्रबन्ध के लिए विषय सामग्री उपलब्ध करवाने में मेरी हर संभव सहायता करने वाले हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद और राष्ट्रीय संग्रहालय, इलाहाबाद के समस्त कर्मचारियों के प्रति भी मैं आभार व्यक्त करती हूँ। इसके साथ ही इस शोध प्रबन्ध के टंकण के लिए मै इमेज के प्रति भी हार्दिक आभार व्यक्त करती हूँ, जिन्होंने कम समय में इसे पूरा किया।

अन्त में, अपने जीवन के सर्वाधिक महत्वपूर्ण व्यक्ति मेरे पति श्री इन्दीवर शुक्ल, जो दुविधा के क्षणों में मुझे मानसिक संबल प्रदान करते रहे और विषय क्षेत्र भिन्न होने के बावजूद मेरे शोधकार्य के प्रति निरन्तर अपनी रुचि प्रदर्शित करते रहे। इसके साथ ही मुझे सभी प्रकार की उलझनों अथवा समस्याओं से दूर रखकर इस शोधकार्य को पूरा करने के समस्त अवसर एवम् सुविधाएँ मनोयोगपूर्वक दी, इसके लिए मैं स्वयं को सौभाग्यशालिनी मानती हूँ और मैं इनसे हमेशा ऐसे ही सहयोग की आकांक्षा करती हूँ।

शालिनी त्रिपाठी

शालिनी त्रिपाठी

* * *

अध्याय प्रथम

महादेवी की मानसिक संरचना : परिवेश और परिस्थितियाँ

●

1. राजनीतिक परिवेश

1.1. अठाहरवीं सदी का भारत

1.2. राष्ट्रीय आन्दोलन और महात्मा गाँधी

2. सामाजिक परिस्थिति

2.1. समाज में नारी की स्थितिङ्क

2.2. परिवार, शिक्षा : सांस्थानिक प्रभाव

2.3. नारी की विषय स्थिति और महादेवी

2.4. महादेवी के व्यक्तित्व के निर्माण के प्रभावी कारक : महात्मा बुद्ध, महात्मा गाँधी और मीरा

3. साहित्यिक वातावरण

3.1. युगीन साहित्यिक परिवेश

3.2. समकालीन रचनाकारों का प्रभाव

3.3. महादेवी का स्थान

समाज की गहरी चिन्ता ही वह मूल कारण है, जिसके द्वारा कोई महान् रचना आकार ग्रहण करती है क्योंकि साहित्यकार पर अपने चारों ओर विद्यमान राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक परिवेश का तो प्रभाव पड़ता ही है, साथ ही अन्तर्मन के दबाव और आन्तरिक अनुभव भी उसे इस प्रकार उद्वेलित करते हैं कि वह साहित्य-सृजन के लिए व्याकुल हो उठता है। निश्चय ही, महादेवी की मानसिक संरचना का निर्माण करने में इन दोनों तत्वों की महत्वपूर्ण भूमिका रही। महादेवी वर्मा जिस समय में जन्म लेती हैं, उस समय भारतीय समाज में निराशा के बादल छाए थे। प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद, अंग्रेजों ने भारतीयों को कुछ सुविधाएँ देने के स्थान पर अपना दमन चक्र और भी तेज कर दिया। जिसकी प्रतिक्रियास्वरूप भारतीयों ने संगठित होकर अंग्रेजों को देश से बाहर निकालने का संकल्प लिया हैं। इस निर्णय में सभी वर्गों की महत्वपूर्ण भूमिका रही। स्त्रियों ने भी पहली बार घर के प्रांगण को छोड़कर बाहर की गतिविधियों में सक्रिय रूप से भाग लिया। ऐसे परिवेश का प्रभाव बालिका महादेवी पर पड़ना स्वाभाविक था। साथ ही महात्मा बुद्ध तथा महात्मा गाँधी की विचारधारा की भी उनके जीवनदर्शन पर गहरी छाप थी। इसीलिए महादेवी के समग्र साहित्य का अध्ययन करने से पूर्व उस परिवेश से परिचित होना आवश्यक है,जो बालिका महादेवी को **लेखिका कवयित्री** महादेवी के रूप में परिवर्तित करता है, जिसमें उनकी मनोस्थित आकार ग्रहण करती है, जो उन्हें निरन्तर सृजनात्मकता की ओर प्रेरित किए रहता है। सर्वप्रथम राजनीतिक परिवेश फिर सामाजिक परिस्थितियाँ और तत्पश्चात तत्कालीन साहित्यिक परिवेश का संक्षिप्त अध्ययन इस प्रकार है—

राजनीतिक परिवेश

अठाहरवीं शताब्दी में भारत में ब्रिटिश शासन की स्थापना के साथ ही भारतीय समाज और संस्कृति का अधोपतन तीव्रगति से होना प्रारम्भ हो गया था। ब्रिटिश शासक भारतीय जनमानस को यह विश्वास दिलाने में सफल रहे कि भारतीय अपने देश की शासन व्यवस्था को सुचारु रूप से चलाने में सक्षम नहीं है, अतः उन पर अंग्रेजों द्वारा शासन किया जाना उचित है। परतन्त्रता की बेड़ियों में जकड़े हुए जनमानस को उच्चशिक्षा प्राप्त भारतीयों ने उम्मीद की किरण अवश्य दिखाई। उन्होंने अपने लोगों का जीवनस्तर ऊँचा उठाने के लिए आर्य समाज, ब्रह्मसमाज, प्रार्थना समाज, रामकृष्णमिशन जैसी संस्थाओं की स्थापना की। इन संस्थाओं के माध्यम से जातिप्रथा, सतीप्रथा, छुआछूत, अस्पृश्यता की भावना, अंधविश्वास और किसी भी प्रकार के नये परिवर्तन से अविचलित रहने वाले भारतीय समाज में सुधार भी हुए। निश्चय ही, इन सुधारों

के परिणामस्वरूप उन्नीसवीं शती के भारत में जबर्दस्त बौद्धिक और सांस्कृतिक उथलपुथल मची हुई थी। विदेशी शासन का अस्तित्व ही जनता के मध्य एकता का कारण बन गया क्योंकि उन्होंने अनुभव किया कि विदेशी शासक जाति, वर्ग, वर्ण, धर्म आदि का भेदभाव किए बिना सभी को समानरूप से प्रताड़ित कर रहा है। इसी भावना ने भारतीय राष्ट्रवाद के उदय में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। जनता ने अपनी कमजोरियों तथा अपनी शक्ति को पहचाना और संगठित होकर विदेशी शासन को उखाड़ फेंकने का संकल्प लिया। इन भावनाओं की कार्यरूप में सफल अभिव्यक्ति भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के माध्यम से हुई। राजनीतिक चेतना से समन्वित इसके नेताओं ने भारतीयों को क्षेत्र, जाति, वर्ग, वर्ण, धर्म के भेदभावों से ऊपर उठाकर राष्ट्रीय चेतना का वाहक बनाने में सफल रहे।

भारतीयों के मध्य विद्यमान एकता को कमजोर बनाने के लिए ब्रिटिश शासकों ने बंगाल का विभाजन जातिगत आधार पर कर दिया, जिसकी तीव्र प्रतिक्रिया सम्पूर्ण देश में हुई और एक स्वतःस्फूर्त आन्दोलन का जन्म हुआ, जिसमें समाज के सभी वर्गों की व्यापक भागीदारी रही। इस आन्दोलन के परिणामस्वरूप सदियों से गुलामी की नींद में सोई हुई भारतीय जनता जाग गई और इस जाग्रत जनता के नेतृत्व की बागडोर संभालने के लिए राजनीति में गाँधीजी का प्रवेश हुआ। गाँधीजी असहयोग और सत्याग्रह जैसे मौलिक सिद्धान्तों के प्रयोग द्वारा दक्षिण अफ्रीका में नस्लवाद के विरुद्ध लड़ाई जीत चुके थे। समाज के निम्न वर्ग के साथ उनकी गहरी सहानुभूति थी और उनकी समस्याओं का भी उन्हें ज्ञान था, अतः शीघ्र ही उन्होंने कृषक वर्ग तथा निम्नजातियों को अपने आन्दोलन का अंग बनाकर उसे अखिल भारतीय स्वरूप प्रदान किया। गाँधीजी विचार और कर्म में समानता रखते थे, इसलिए जैसे विचार वे अपने लेखों और भाषणों में व्यक्त करते थे वैसा ही आचरण भी करते थे। इसी समय ब्रिटिश शासकों ने भारतीयों के विरोध के बावजूद रौलट एक्ट पारित कर दिया। जिसके विरोध में गाँधीजी के आह्वान पर एकत्रित जनसमुदाय पर अंग्रेजशासकों ने निर्ममतापूर्वक गोलियाँ चलाई, जिससे क्षुब्ध होकर रवीन्द्रनाथ टैगोर ने अपनी 'नाइट' की उपाधि वापस कर दी और कहा कि 'वह समय आ गया है, जब सम्मान के प्रतीक अपमान अपने बेमेल सन्दर्भ में हमारी शर्म को उजागर करते हैं और मैं, जहाँ तक मेरा सवाल है, सभी विशिष्ट उपाधियों से रहित होकर अपने उन देशवासियों के साथ खड़े होना चाहता हूँ जो अपनी तथाकथित क्षुद्रता के कारण मानवजीवन के अयोग्य अपमान को सहने के लिए बाध्य हो सकते हैं।' [1] अंग्रेजों द्वारा किये जा रहे अत्याचारों की भरपाई के लिए तथा स्वराज्य की स्थापना के लिए गाँधीजी ने सरकार से असहयोग आरम्भ कर दिया तथा जनता से आग्रह किया गया कि वे सरकारी स्कूल, कॉलेज, अदालतों और यहाँ तक कि विधानमण्डल तक का बहिष्कार करें, विदेशी वस्त्रों का त्याग करें, सरकार द्वारा दी गई उपाधियों को वापस कर दे तथा सूत कातकर तथा खादी बुनकर खादी

के वस्त्रों को धारण करें। इस आन्दोलन के माध्यम से भारतीय जनता को राजनीतिक स्वाधीनता भले ही प्राप्त नहीं हुई, लेकिन उन्होंने गुलामी की मनोवृत्ति का सर्वथा परित्याग कर दिया। उन दिनों सम्पूर्ण भारत में अद्भुत उल्लास और उत्साह छाया हुआ था। हजारों विद्यार्थियों ने सरकारी स्कूल, कॉलेजों का त्याग करके राष्ट्रीय स्कूलों में प्रवेश ले लिया था, वकीलों ने वकालत छोड़ दी थी, खादी स्वतन्त्रता का प्रतीक बन गई और 'तिलक स्वराज फंड' में महिलाओं ने दिल खोलकर गहने और जेवर दिए थे। सरकार ने दमन का आश्रय लेकर आन्दोलन को दबा दिया तथा गाँधीजी को जनता के मध्य सरकार के खिलाफ असंतोष फैलाने के कारण छः वर्ष की कठोर सजा दी गई।

सामाजिक परिवेश

परम्परागत दृष्टि से स्त्री को भारतीय समाज में माँ और पत्नी के रूप में अत्यन्त सम्मानीय स्थान प्राप्त था, लेकिन व्यक्तिगत रूप में उसकी सर्वथा उपेक्षा की गई है। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में मानवतावादी और समानतावादी विचारों से प्रेरित होकर समाजसुधारकों ने स्त्रियों की दशा सुधारने तथा उनमें शिक्षा का प्रसार करने के लिए अनेक प्रयत्न किए और 1890 में कलकत्ता विश्वविद्यालय की प्रथम महिला स्नातक कादम्बिनी गांगुली द्वारा कांग्रेस के अधिवेशन को सम्बोधित किया जाना इस बात का प्रतीक माना गया कि स्वाधीनता संग्राम सदियों से दबी-सहमी माने जाने वाली नारी जाति को भी उनकी हीन दशा से उबारेगा। स्वतन्त्रता आन्दोलन स्त्रियों को घर की चहारदीवारी में कैद न रख सका और उन्होंने भी बाहर निकल कर हड़ताल, जुलूस में बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया। विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार किया। शराब बेचने वाली दुकानों पर भी धरना दिया। खादी का प्रचार किया, यहाँ तक कि जेल जाने से भी वे पीछे नहीं रहीं। निश्चय ही, मध्यकाल से पराधीन नारी की यह एक बिल्कुल नई भूमिका थी, जिसका उसने सफलतापूर्वक निर्वहन किया।

राजनीतिक दृष्टि से अंधकारमय और उहापोह से भरे वातावरण में महादेवी वर्मा का जन्म हुआ। यद्यपि तत्कालीन समाज में कन्यारत्न की प्राप्ति खुशी का विषय तो नहीं था, पर महादेवी के परिवार में पिछली सात पीढ़ी से लड़की का जन्म न होने के कारण स्थिति भिन्न थी। शिक्षित और सम्पन्न परिवार में जन्म लेने के कारण उनके माता-पिता ने बचपन से ही महादेवी को अपनी रूचियों का पूर्ण विकास करने का अवसर प्रदान किया। आर्य समाजी संस्कारों के साथ उन्हें मिशन स्कूल में भरती करवा दिया गया और घर पर भी हिन्दी, उर्दू, संगीत और चित्रकला की शिक्षा देने के लिए शिक्षक की नियुक्ति की गई। महादेवी जी ने लिखा है—'तीन वर्ष की अवस्था में मां के साथ मैं इन्दौर चली गई। इस प्रकार मेरा संस्कार तथा रुचियाँ बनने का समय मध्य प्रदेश में व्यतीत हुआ, जहाँ पशु-पक्षी, पेड़-पौधे ही हमारे संगी रहे। सेवक मिला रामा, जो हमारी

जिज्ञासाओं के अद्‌भुत समाधान प्रस्तुत कर देता था। माँ के गृहकार्य तथा पूजा-पाठ की मैं ही एकान्त संगिनी थी। अतः 'जागिए कृपानिधान पंछी बन बोले' जैसे प्रभाती पद मैं भी गुनगुनाने लगी थी।'[2] अपनी तीक्ष्ण बुद्धि तथा असाधारण प्रतिभा के कारण पूजा, आरती के समय माँ द्वारा गाये गए मीरा, तुलसी आदि के पद उन्हें भी सहज ही में कंठस्थ हो गए और इसी समय से उनके मन में काव्य रचना के बीज भी अंकुरित हो गए जो आगे चलकर साधना की समुचित खाद पाकर पुष्पित-पल्लवित होकर काव्य के विशाल वृक्ष में रूपान्तरित हो गए। महादेवी स्वीकार करती हैं कि— 'बाबा के उर्दू-फारसी के अबूझ कोहरे में मैंने केवल माँ की प्रभाती और लोरी को ही समझा और उसी में काव्य की प्रेरणा को पाया।[3] इसी समय सरस्वती पत्रिका के परिचय द्वारा बोलचाल की भाषा में कविता लिखने की सुविधा ने उन्हें अपनी ओर आकृष्ट किया और उन्होंने समस्यापूर्तियों को माध्यम के रूप में चुना। पढ़ाई-लिखाई में पिता का सूक्ष्म निरीक्षण-परीक्षण और घर के कार्यों में माता का कुशल निर्देशन—इन दोनों ने मिलकर महादेवी के व्यक्तित्व के विकास के लिए सुदृढ़ नींव प्रदान की। उनके व्यक्तित्व में अपने माता-पिता के विपरीत स्वभाव की विशेषताओं का सहज सम्मिलन था। एक ओर उनमें यदि माँ की आस्तिक प्रवृत्ति विद्यमान थी, तो वहीं दूसरी ओर वे पिता के समान पढ़ने-लिखने तथा घूमने-फिरने की भी शौकीन थी। महादेवी जी ने इस प्रवृत्ति का स्पष्ट उल्लेख किया है—'एक व्यापक विकृति के समय, निर्जीव संस्कारों के बोझ से जड़ीभूत वर्ग में मुझे जन्म मिला है; परन्तु एक ओर साधनापूत, आस्तिक और भावुक माता और दूसरी ओर सब प्रकार की साम्प्रदायिकता से दूर कर्मनिष्ठ और दार्शनिक पिता ने अपने-अपने संस्कार देकर मेरे जीवन को जैसा विकास दिया, उसमें भावुकता बुद्धि के कठोर धरातल पर, साधना एक व्यापक दार्शनिकता पर और आस्तिकता एक सक्रिय किसी वर्ग या सम्प्रदाय में बँधने वाली चेतना पर ही स्थित हो सकती थी।'[4] महादेवी के परिवार में बाबा फारसी और उर्दू के ज्ञाता थे। पिता ने अंग्रेजी साहित्य में एम. ए. किया था। उनके परिवार में हिन्दी का कोई वातावरण नहीं था। ऐसे में महादेवी ने हिन्दी भाषा को अपने अध्ययन के लिए माध्यम के रूप में चुना और उस युग में जब लड़कियों की शिक्षा को अधिक महत्व नहीं दिया जाता था, महादेवी ने इलाइबाद जाकर पढ़ने का आग्रह किया। परिवार में हुए थोड़े से विरोध के बाद उनका यह आग्रह स्वीकार कर लिया गया और उन्होंने 1919 में स्कूली शिक्षा के लिए इलाहाबाद के क्रास्थवेट गर्ल्स कॉलेज में प्रवेश लिया और यहीं पर उनके विचार दर्शन को ठोस और व्यापक आधार मिला। वे लिखती हैं कि— "आप कल्पना कीजिए कि समाज से संघर्ष, परिवार से संघर्ष और एक प्रकार की सारी व्यवस्था से संघर्ष—उसके बीच में पढ़ना है, उसके बीच में लिखना है, लेकिन प्रयाग में आकर मुझको कुछ मुक्त वातावरण मिला।"[5] घर के प्यार भरे वातावरण को छोड़कर जब वे विद्यालय के विशाल प्रांगण में आई, तब तक देश में राष्ट्रीय चेतना हर वर्ग में व्याप्त हो चुकी थी; सामाजिक जागृति ने

जैसे लोगों को सदियों से सोई हुई नींद से जगा दिया था और उत्तर भारत राजनीतिक गतिविधियों का केन्द्र बना हुआ था। ऐसे माहौल से महादेवीजी का अप्रभावित रहना कठिन ही था अतः उन्होंने देशभक्ति को जागृत करने वाली कुछ कविताओं की रचना की। 'आधुनिक कवि' में वे स्वीकार करती हैं कि— "जब मैं अपनी विचित्र कृतियों तथा तूलिका और रंगों को छोड़कर विधिवत् अध्ययन के लिए बाहर आई, तब सामाजिक जागृति के साथ राष्ट्रीय जागृति की किरणें फैलने लगीं थीं, अतः उनसे प्रभावित होकर मैंने भी 'शृंगारमयी अनुरागमयी भारतजननी भारतमाता,' 'तेरी उतारूँ आरती माँ भारती,' आदि जिन रचनाओं की सृष्टि की थी, वे विद्यालय के वातावरण में ही खो जाने के लिए लिखी गई थी। उनकी समाप्ति के साथ ही मेरी कविता का शैशव भी समाप्त हो गया।" [6]

सन् 1932 में विद्याध्ययन को समाप्त करने के पश्चात् जब महादेवी के प्यार-दुलार में पले युवा और सुकुमारमन ने अपना कार्य क्षेत्र सुनिश्चित करने के लिए संसार की ओर दृष्टि डाली तो वहाँ चारों ओर व्याप्त सामाजिक असमानता और विषमाताओं ने उन्हें घोर निराशा से भर दिया। अज्ञानता का अन्धकार वातावरण को चारों ओर से व्याप्त किए था। अंग्रेजों द्वारा भारतीय जनमानस पर किए जा रहे अत्याचार असहनीय होते जा रहे थे। गाँधीजी द्वारा शुरू किए गये असहयोग आन्दोलन की धार भी मन्द पड़ गई थी। समाजवाद तथा मार्क्सवाद जैसी नई वैचारिक शक्तियों का उद्भव हो रहा था। छात्रों के भी अनेक अखिल भारतीय सम्मेलन हो रहे थे। भगतसिंह, चन्द्रशेखर आजाद, राजगुरु जैसे क्रान्तिकारियों के आन्दोलन भी जनता की निगाहों में चढ़े हुए थे। इसी समय गाँधीजी ने 1930 में दूसरा नागरिक अवज्ञा आन्दोलन शुरू किया। उन्होंने प्रसिद्ध दांडी मार्च के माध्यम से नमक कानून तोड़ा जो इस बात का प्रतीक था कि अब भारतीय जनता स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए संकल्पबद्ध है। वह किसी भी प्रकार से ब्रिटिश शासन के अंतर्गत रहने को तैयार नहीं है। इस आन्दोलन के अन्तर्गत सम्पूर्ण देश में जनता ने और विशेषकर स्त्रियों ने हड़तालों, प्रदर्शनों, जुलूसों के माध्यम से अपने नेताओं का साथ दिया-बड़ी संख्या में भारतीयों ने सत्याग्रह किया और कर तथा मालगुजारी देने से भी इन्कार कर दिया। अब सम्पूर्ण भारतीय जनता का एकमात्र लक्ष्य विदेशी शासन को उखाड़ फेंकना था।

लेकिन नारियों का इस नये रूप में अवतार होने पर भी महादेवी ने अनुभव किया कि यद्यपि नारी जाति स्वाधीनता संग्राम में भाग लेने के लिए घर के सुरक्षित घेरे को तोड़कर बाहर आ गई है लेकिन अभी भी असंख्य नारियाँ पुरुष समाज की अज्ञानता का शिकार होकर अपने ही घर में शृंखला की कड़ियों में जकड़ी हुई हैं। एक ओर राजनीतिक पराधीनता तथा दूसरी ओर घर में नारियों की पुरुषों पर परवशता के कारण महादेवी ने निश्चय किया कि अब समय आ गया है कि नारियाँ पुरुषों से अलग अपने अस्तित्व को पहचाने

और अपनी अन्तर्निहित शक्तियों को जागृत करके मनुष्यत्व के विकास की ओर अग्रसर हों। महादेवी ने स्वयं को कुंठाओं, कुरीतियों की बेड़ियों से मुक्ति के लिए संघर्षशील नारी समाज का प्रतिनिधि माना। समाज में विद्यमान उपेक्षिता, निराश्रिता, असहाय विधवाओं, बाल विवाह तथा बेमेल विवाह के दुष्चक्र में फंसी, सामाजिक बंधनों में जकड़ी तथा पुरुष-प्रधान समाज द्वारा निरन्तर अपमान का कड़वा घूँट पीने वाली नारी की दयनीय दशा को देखकर महादेवी का संवेदनशील मन आन्दोलित हो उठा। महादेवी वर्मा सामाजिक शोषण, दैन्य,स्वार्थ और अभिशाप से संघर्ष करने के लिए स्वयं अंतिम क्षण तक तिल-तिल कर जलती हुई 'दीपशिखा' बन गई। हमारे मातृशक्ति उपासना प्रधान देश और मैत्रेयी, गार्गी की परम्परा वाले समाज में तिरस्कृत नारी का माँ, बहन, पुत्री, पत्नी किसी भी रूप में स्वतन्त्र और निजी अस्तित्व नहीं रहा। कभी वह पिता पर आश्रित रही, तो कभी भाई पर। कभी पति ने उसको आश्रय प्रदान किया तो कभी वह पुत्र के आधीन रही। ऐसी विषम और संघर्षपूर्ण परिस्थितियों ने महादेवी को समय की आवश्यकता पहचान कर अपना कर्त्तव्यपथ सुनिश्चित करने को प्रेरित किया और समाज में व्याप्त दीर्घकालीन जड़ता की स्थिति को समाप्त करने के लिए महादेवी ने कलम को माध्यम बनाया। इस प्रकार प्रताड़ित नारी की स्वतन्त्रता, प्रतिष्ठा का शंखनाद करने वाली महादेवी उन सभी के लिए प्रेरणास्रोत बन गयी; जिन्होंने खड़े होने का संकल्प लिया। महादेवी ने नारी का आह्वान करते हुए कहा—"आपसे इतना तो कहना चाहती हूँ कि भारत का भविष्य आपके हाथ में है। लड़कों के हाथ में नहीं है। हमारे यहाँ लड़की जन्म लेते ही पराई हो जाती है। सब कहते हैं कि अरे लड़की हो गई। लड़की तो पराये घर का धन है। यानि वह धन है, सम्पत्ति है,सामान है, जीवित व्यक्ति नहीं है, तो आप सामान बनने से इन्कार कर दीजिए।" [7]

निश्चय ही,महादेवी की इस भूमिका के पीछे व्यक्तिगत सुख, सामाजिक प्रशंसा अथवा बड़े पद की लालसा की भावना काम नहीं कर रही थी, वरन् मात्र मानव कल्याण की भावना तथा स्त्री-जाति की सर्वांगीण उन्नति की भावना काम कर रही थी। इसके लिए सर्वप्रथम महादेवी ने अल्पआयु में हुए अपने विवाह को पूर्णतया अस्वीकार कर दिया। रामधारी सिंह दिनकर के साथ हुए सहज वार्तालाप में उन्होंने गृहस्थ जीवन के प्रति अपनी विरक्ति का उल्लेख किया है—'मैंने उनसे कहा कि गृहस्थ-जीवन की ओर मेरी थोड़ी भी प्रवृत्ति नहीं है, अतएव मैं आपके साथ कभी भी नहीं रह सकूँगी।' [8] अब महादेवी के दृष्टि क्षेत्र के अन्तर्गत केवल अपना छोटा सा सुखी परिवार नहीं वरन् कमजोर, दीन-हीन, शोषित, उत्पीड़ित तथा अनेक प्रकार की असंगतियों से ग्रस्त सम्पूर्ण मानवजाति समाई हुई थी। इसलिए वे स्वयं को अपने छोटे से परिवार में सीमित नहीं करना चाहती थी। यद्यपि तत्कालीन समाज में एक नारी द्वारा विवाह को अस्वीकार करने को साधारण ढंग से नहीं लिया गया और उन्हें अनेक कठिनाइयों एवं बाधाओं का भी सामना करना पड़ा, परन्तु अपने

दृढ़ निश्चयी स्वभाव के कारण महादेवी कर्त्तव्य पथ से विचलित नहीं हुई। इसके पश्चात् महादेवी नारी जगत में व्याप्त अशिक्षा के अंधकार को दूर करने के लिए प्रयाग महिला विद्यापीठ की प्रधानाचार्या बनकर अपने विचारों को कार्यरूप में परिणत करने में लग गई।

यद्यपि महादेवी को 'महादेवी' बनाने में उपर्युक्त परिस्थितियों का तो योगदान रहा ही लेकिन उनके जीवन दर्शन को महात्मा बुद्ध और महात्मा गाँधी ने सर्वाधिक प्रभावित किया। बचपन से ही भगवान बुद्ध के प्रति भक्तिमय अनुराग के कारण अपने छात्रजीवन में महादेवी बौद्ध भिक्षुणी भी बनना चाहती थी और इसके लिए उन्होंने श्रीलंका के बौद्ध स्थविर से सम्पर्क भी किया था। बौद्ध स्थविर के नैनीताल प्रवास के दौरान महादेवी उनसे मिली लेकिन उनके द्वारा परदे की ओट में बात करना महादेवी को अपमानजनक लगा और उन्होंने बौद्ध भिक्षुणी बनने का विचार त्याग दिया। वे लिखती हैं कि— "अपने ही विद्रोही स्वभाव के कारण मैं भिक्षुणी नहीं हो सकी, क्योंकि मेरा मन ऐसे साधक से दीक्षा लेने को प्रस्तुत नहीं हुआ जो स्त्री के मुख-दर्शन तक ही सीमित था। आश्चर्य तो यह है कि युगयुगान्तर से हमारा तप और साधना का क्षेत्र नारी के आतंक से आतंकित रहता आया है, चाहे वह मानवी हो या अप्सरा।"[9] परन्तु बौद्ध दर्शन से अत्यधिक प्रभावित होने के कारण उनके काव्य में वेदना का साम्राज्य रहा है।

देश में राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्र में व्याप्त संकट भी महादेवी के मनोमस्तिष्क में छाये हुए थे, इसलिए उनका महात्मा गाँधी से सम्पर्क हुआ। महात्मा गाँधी के आदर्शों से प्रभावित होना इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है। प्रयाग महिला विद्यापीठ का कार्य संचालन महात्मा गाँधी के इस निर्देश का ही प्रतिफल था कि 'तू अपनी मातृभाषा से अपनी गरीब बहनों को शिक्षा देने का कार्य करे, तो अच्छा है।[10] महादेवी ने स्पष्टतः स्वीकार किया है—"मैंने बहुत से ऐसे निश्चय लिए, जो गाँधी जी के कारण। आज भी जीवन का कोई-कोई कठिन समय आता है तो मुझे उनका निर्देश मिल जाता है। अचानक शरीर के भीतर से अन्तर्ध्वनि आती है, मानो बापू कहते हैं कि 'ये करना है।' मेरे पूरे जीवन को उन्होंने बनाया। वेशभूषा में वे लंगोटी लगाते और देखने में ऐसे कि भगवान को भी दया आ जाय। लेकिन कोई चीज थी उनके पास कि देखते ही आदमी कुछ और हो जाता था।"[11] महात्मा बुद्ध और महात्मा गाँधी इन दो महान् व्यक्तियों की जीवन दृष्टि से प्रभावित महादेवी ने साधना का एक नवीन मार्ग ग्रहण किया। बौद्ध दर्शन के प्रभाव से काव्य के क्षेत्र में अंतर्मुखता को सर्वप्रमुख तत्व मानकर निराकार की उपासना की और गाँधी के प्रभाव से गद्य के क्षेत्र में बहिर्मुख होकर मानवसमाज में व्याप्त असमानताओं और विषमताओं को अपना निशाना बनाया। वे लिखती हैं कि— 'आज मेरा मन उन व्यक्तियों के प्रति प्रणत है, जिन्होंने अपने विश्वास और परम्परा की अवज्ञा कर मुझे ऐसी मुक्ति दी, जिसमें मेरा अंतर्बाह्य विकास सहज और स्वाभाविक हो गया।[12]

महादेवी और मीरा दोनों के काव्य में विद्यमान वेदना, विरह की प्रधानता को देखकर अधिकांशतः आलोचकों द्वारा महादेवी को मीरा का आधुनिक संस्करण कहे जाने की परम्परा प्रचलित हो गई है। यद्यपि महादेवी मीरा के विचारदर्शन से प्रभावित तो रही हैं लेकिन युगीन परिस्थितियों के दबाव स्वरूप उसमें पर्याप्त अन्तर भी आ गया है। जहाँ मीरा अपने साँवरे कन्हैया को पाने के लिए समस्त सामाजिक मर्यादा के बंधनों को तोड़कर वन-वन भटकती रही,वहीं महादेवी अपने निर्गुण, निराकार प्रियतम की आराधना करते हुए भी सामाजिक बंधनों को पूर्णतया अस्वीकार न कर सकी। उन्हें समाज के दीन-हीन, दलित, शोषित जन की हीनदशा भी उद्वेलित करती रही, स्त्रियों में व्याप्त दीर्घकालीन जड़ता की स्थिति को समाप्त करने के लिए वे निरन्तर प्रयत्नशील भी रहीं। युगीन परिस्थितियों के परिणामस्वरूप समाज से पूर्णतः निरपेक्ष रहना महादेवी के लिए सम्भव ही नहीं था। मीरा की भावानुभूति हृदय के सच्चे उद्‌गार हैं जबकि महादेवी की भावाभिव्यक्ति को उनकी उच्चशिक्षा और गहन-गम्भीर चिन्तन ने भी प्रभाावित किया। महादेवी की विरह वेदना भी मीरा के समान अत्यन्त गहरी है लेकिन गिरिधर गोपाल के प्रति आसक्ति की अपेक्षा उसमें जीवन की क्षणभंगुरता के कारण वैराग्य से उद्‌भूत और अमरत्व की खोज भी है। इस क्षणभंगुरता के बावजूद जीवन से पलायन नहीं है। महादेवी में विरह और आवेग की छटपटाहट मीरा जैसी है लेकिन वह लोकोन्मुख और बौद्धिक संयम तथा मर्यादा की गंभीरता में बंधी है। मीरा कभी-कभी अपने प्रियतम को अगम्य मानकर गा उठती है—'सूली ऊपर सेज पिया की, किस विधि मिलना होय' और महादेवी के पथ में अनेक बाधाओं के होते हुए भी उसमें निराशा के लिए कोई स्थान नहीं है। उनका लक्ष्य स्पष्ट है और इससे भी अधिक सशक्त है— उनका आत्मविश्वास अपराजेय संकल्प और समर्पित भावः—'जाग तुझको दूर जाना। [13] लेकिन महादेवी और मीरा में समानता भी है जहाँ मीरा को राजघराने की कुलवधू होने के कारण तथा विधवा होने के कारण साधु समाज में नाचने-गाने, भजन-कीर्तन करने के कारण अनेक प्रकार की कठोर यन्त्रणाओं और अपमान के कड़वे घूँट पीने पड़े वहीं महादेवी को भी स्वेच्छा से वैवाहिक जीवन का अस्वीकार करने के कारण, परम्परा विरुद्ध कार्यों को करने के कारण कट्टरपंथियों द्वारा किये जा रहे प्रबल विरोध को सहन करना पड़ा। उपर्युक्त पृष्ठभूमि ने महादेवी की मनोरचना को निर्मित करने में आधारशिला का कार्य किया। यह भी कहा जा सकता है कि समाज में व्याप्त इन्हीं आन्तरिक और बाह्य दबावों ने उन्हें सृजन-क्षेत्र की ओर आकृष्ट किया।

साहित्यिक वातावरण-

इस समय तक हिन्दी साहित्य जगत ने कोमलकांत मधुर पदावली से युक्त ब्रजभाषा को छोड़कर 'खरखराहट' वाली खड़ी बोली को अपना बना लिया था और उसे नित नये-नये शब्दों द्वारा, नवीन

अर्थसंकेतों द्वारा समृद्ध किया जा रहा था। द्विवेदी युग की इतिवृत्तात्मकता, उपदेशात्मकता तथा वर्णनात्मक काव्य प्रवृत्तियों के विरोध में एक नई काव्यधारा बड़े तीव्र वेग से प्रवाहित हो रही थी, जिसका स्वरूप कुछ-कुछ स्पष्ट न होने के कारण उसे 'छायावाद' नाम दिया गया। छायावाद सामाजिक रूढ़ियों के बंधन में जकड़ी हुई तथा पराधीनता के पाश में बंधी हुई जनता की भाव-अनुभूतियों की साहित्य में मुखर अभिव्यक्ति है। छायावाद ने काव्य के क्षेत्र में द्विवेदीयुगीन गद्यात्मक प्रणाली का बहिष्कार किया। छन्दों के साँचे में आबद्ध कविता को छायावाद ने मुक्त कर दिया जिससे हृदयगत् भावों की सहज अभिव्यक्ति साहित्य में संभव हो सकी। चूँकि इन भावों को अभिव्यक्त करने में प्रचलित प्रणाली अपर्याप्त थी। अतः छायावादी कवियों ने अभिव्यंजना के नये रूपों का आश्रय लिया और बिम्ब-विधान, प्रतीक-विधान, लाक्षणिकता, विशेषण-विपर्यय तथा ध्वन्यात्मकता जैसी प्रणाली से अपनी कविता को समृद्ध बनाया। अप्रस्तुत विधायिनी कल्पना के द्वारा छायावादी कवि ने अमूर्त स्थितियों को साकार रूप प्रदान किया तथा प्रस्तुत विषयों को अधिक कलात्मक एवं सूक्ष्म रूप में चित्रित किया। इन छायावादी कवियों की भावुकता एवं कल्पना का संस्पर्श पाकर जड़ मानी जाने वाली प्रकृति भी चेतनवत् व्यवहार करने लगी। इस प्रकार छायावाद ने अपनी प्राणशक्ति के बल पर हिन्दी साहित्य जगत में एक युगान्तर उपस्थित किया।

इन छायावादी प्रवृत्तियों का पूर्ण प्रतिनधित्व करने वाली जयशंकर प्रसाद की कविताएँ 1913-14 से ही 'इन्दु' में प्रकाशित होने लगी थी। 1918 में प्रकाशित जयशंकर प्रसाद का 'झरना' काव्यसंकलन छायावाद का प्रथम काव्यसंकलन माना गया। इसी समय के आसपास सन् 1916 में सूर्यकांत त्रिपाठी निराला की 'जूही की कली' प्रकाश में आई, जिसने छन्दों के बंधन को तोड़ने के कारण सभी का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया। सुमित्रानंदन पंत भी 'पल्लव', 'वीणा', 'ग्रन्थि' के प्रकाशन के साथ छायावादी काव्याकाश में छाए हुए थे। जीवन और जगत में व्याप्त आन्तरिक और बाह्य समस्याओं ने इन कवियों के अन्तर्मन पर गहन प्रभाव डाला तथा इस प्रभाव में अंग्रेजी के स्वच्छन्दतावादी कवियों का उन्मुक्त भाव, गीतांजलि का प्रभाव तथा समसामयिक परिस्थितियाँ का भी समावेश था। इन सभी प्रमुख कवियों की रचनाएँ निरन्तर तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में अपना स्थान बना रही थी लेकिन भाव और भाषा-शैली की दृष्टि से प्रचलित परम्परा से भिन्न होने के कारण ये कविताएँ आलोचकों की आँख का काँटा भी बनी हुई थी। जिनका समुचित प्रत्युत्तर छायावादी कवि पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से तथा अपनी रचनाओं में लम्बी-लम्बी भूमिकाएँ लिखकर दे रहे थे। इस वाद-विवाद-संवाद के माध्यम से छायावाद अपने चरमोत्कृष्ट रूप को प्राप्त कर रहा था।

जब छायावाद अपने चरमोत्कर्ष काल में था, तभी महादेवी ने 'नीहार' के प्रकाशन के साथ साहित्य जगत में पदार्पण किया। साहित्य जगत में सर्वत्र व्याप्त छायावादी प्रवृत्तियों से महादेवी का अप्रभावित रहना

असम्भव था। अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने महादेवी वर्मा के काव्य संग्रह 'नीहार' का अभिनन्दन किया—'ग्रन्थ सर्वथा निर्दोष नहीं, किन्तु इसमें अनेक इतनी सजीव और सुन्दर पंक्तियाँ हैं, कि उनके मधुर प्रवाह में उधर दृष्टि जाती ही नहीं। प्रभुल्ल पाटल प्रसून में काँटे होते हैं, हों, किन्तु उसकी प्रफुल्लता और मनोरंजकता ही मुग्धकारिता की सम्पत्ति है।[14] द्विवेदी युग के आचार्य कवि हरिऔध द्वारा साहित्य जगत में बिल्कुल नई छायावादी कवयित्री के प्रथम काव्य संग्रह की भूमिका लिखा जाना ही यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त था कि इस समय तक छायावाद द्विवेदी युगीन आलोचकों के मन में अपनी प्रतिष्ठा की जड़ों को गहरा कर रहा था। महादेवी वर्मा ने अपनी अनुभूतियों को कल्पना का रंगीन आवरण ओढ़ाकर एक नये रहस्यालोक की सृष्टि की जिसमें उन्होंने अज्ञात, अव्यक्त प्रियतम को आलम्बन बनाकर उसके प्रति हृदय के मनोरम भावों की सृष्टि की। प्रकृति का मानवीकरण करके उसे सामान्य मानव की तरह कार्य करते हुए दिखाया। महादेवी ने सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में एक नई सौन्दर्य चेतना के दर्शन किये। महादेवी ने रहस्यात्मक सत्ता के प्रति जिज्ञासा की भावना संसार की अस्थिरता, जीवन की नश्वरता तथा उस अज्ञात, अव्यक्त प्रियतम के प्रति वेदना एवं करुणा—इन चार उपादानों का आश्रय लेकर नीहार के गीतों की सृष्टि की है। 1932 में रश्मि प्रकाशित हुई, फिर नीरजा (1934), सांध्यगीत (1936) और दीपशिखा प्रकाशित हुई। इन सभी रचनाओं में छायावादी प्रवृत्तियां का पूर्ण परिपाक हुआ है। छायावादी कवियों में महादेवी ही सबसे अधिक **स्वतन्त्र** है जिन्होंने अपनी शैली कभी नहीं बदली और वह काव्य क्षेत्र में आरम्भ से लेकर अन्त तक छायावादी ही बनी रही। महादेवी ने केवल काल्पनिक छायालोक को ही दृष्टिगत नहीं किया वरन् उन्होंने बंगाल में आए हुए भीषण अकाल से व्यथित होकर 'बंगदर्शन' की रचना की। हिमालय पर संकट के बादल छाए होने पर 'हिमालय' पर लिखी प्राचीन से लेकर नए कवियों की कविताओं का संकलन किया। 'सप्तपर्णा' में संस्कृत काव्यग्रन्थों से अनुवाद प्रस्तुत किया। दीपशिखा के पश्चात महादेवी की लेखनी गद्य क्षेत्र की ओर मुड़ गई। 'अतीत के चलचित्र' और 'स्मृति की रेखाएँ' में उन्होंने अपने सम्पर्क में आए हुए दीन-हीन-शोषित जन को वाणी दी। 'शृंखला की कड़ियाँ' में महादेवी ने प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक की नारियों की सामाजिक स्थिति में आए हुए परिवर्तनों का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया और साथ ही अन्याय को स्वीकार करने वाली भारतीय नारियों की अंतर्निहित शक्तियों को जाग्रत करने का भी प्रयास किया है। 'पथ के साथी'(1956) में उन्होंने अपने वरिष्ठ तथा समकालीन साहित्यकारों के जीवन, व्यक्तित्व, कृतित्व तथा उनके साथ अपने सम्बन्धों का विवेचन किया है। 'क्षणदा' (1956) में ललित निबन्ध तथा 'साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध '1962) में आलोचनात्क निबन्धों का संग्रह है। 'मेरा परिवार' (1972) में उन्होंने अपनी ममता के अधिकारी के रूप में पशु पक्षियों को चुना है। रचना कर्म के अतिरिक्त महादेवी ने शिक्षा जगत में 'प्रयाग महिला

विद्यापीठ' को वट वृक्ष की भाँति आरोपित किया ओर अपनी ओजस्वी भाषण कला से सम्पूर्ण देश में होने वाले साहित्यिक समारोहों में भाग लेकर अनोखी वक्तृत्व कला का परिचय दिया।

छायावाद के चारों कवि एक ही युग के होकर भी, समान परिस्थितियों से प्रेरणा ग्रहण करके भी काव्य सृजन में समान भावभूमि के नहीं थे। प्रसाद में यदि दार्शनिक स्वर प्रधान था तो सुमित्रानंदन पंत के काव्य में सौन्दर्य चेतना और प्रकृति के प्रति असीम अनुराग व्यंजित हो रहा था। निराला के काव्य में यदि इन दोनों से भिन्न पुरुषार्थ का ओज और उत्साह की गंगा प्रवाहित हो रही थी तो महादेवी वर्मा के काव्य में नारी हृदय की कोमल एवं सुकुमार भावनाओं के साथ वेदना एवं करुणा का सागर हिलोरे ले रहा था। इस दृष्टि से एक ही युग में होते हुए भी इस काल के कवियों के काव्य का मूल स्वर अलग-अलग था। संभवतः इसका कारण परिस्थितियों का प्रभाव और अर्न्तबाह्य दबाव हो सकते हैं। महादेवी वर्मा अपनी कविताओं में जितनी भावुक हैं, अपनी गद्य रचनाओं में अपने परिवेश के प्रति वे उतनी ही अधिक जागरूक हो जाती हैं। महादेवी के समय में कई प्रतिभावान कवि हिन्दी जगत में विद्यमान थे। ऐसे प्रतिभावन कवियों के बीच से निकलकर अपनी प्रतिभा का लोहा मनवाना महादेवी की महान् उपलब्धि है।

* * *

संदर्भ-ग्रन्थ-सूची

1. आधुनिक भारत, एन. सी. ई. आर. टी. पृष्ठ संख्या 198

2. यामा, महादेवी वर्मा, पृ. सं. 5

3. यामा, महादेवी वर्मा पृ. सं. 5

4. आधुनिक कवि, महादेवी वर्मा, पृ. सं. 34.35

5. महादेवी साहित्य समग्र, 3 सं. निर्मला जैन, पृ. सं. 411

6. आधुनिक कवि, महादेवी वर्मा, पृ0सं. 35

7. 'उत्तर प्रदेश' महादेवी वर्मा अंक, दिसम्बर 1988 पृ. सं. 22

8. 'जीवन का एक पक्ष' ले. रामधारी सिंह दिनकर, 'महादेवी संस्मरण ग्रन्थ ',सं. सुमित्रानंदन पंत, पृ. सं. 82

9. आत्मिका, महादेवी वर्मा, महादेवी साहित्य समग्र-1 सं. निर्मला जैन, पृ. सं. 597

10. आत्मिका, महादेवी वर्मा महादेवी साहित्य समग्र-भाग-1, संपादन- निर्मला जैन, पृ. सं. 597

11. 'उत्तर प्रदेश' 'महादेवी वर्मा अंक, दिसम्बर 1988, पृ. सं. 21

12. आत्मिका 'महादेवी वर्मा, 'महादेवी साहित्य समग्र'-भाग-1, सं.- निर्मला जैन, पृ. सं. 597

13. सांध्यगीत, महादेवी वर्मा, पृ. सं. 50

14. नीहार, महादेवी वर्मा 'परिचय' पृ. सं. 6

* * *

द्वितीय-अध्याय

छायावाद : वाद-विवाद-संवाद

●

1. छायावाद का उदय :

   क. राजनीतिक परिवेश

   ख. सामाजिक परिस्थिति

   ग. साहित्यिक वातावरण

2. नामकरण को लेकर उठा विवाद

3. प्रवर्तक कवि के सम्बन्ध में मत-वैभिन्नय

4. छायावाद : आलोचकों तथा कवियों द्वारा उठाए गए विवाद और संवाद

किसी भी नई काव्य प्रवृत्ति का उद्भव समय के प्रवाह से अचानक नहीं होता वरन् उसके उद्भव के पीछे सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक कारण तत्वों की लम्बी शृंखला होती है। यही तत्व समाज को भी क्रियाशील बनाए रखते हैं। चूँकि साहित्य समाज से ही जीवन रस ग्रहण करता है। अतः किसी भी काव्य प्रवृत्ति अथवा वाद का अध्ययन करने से पूर्व उस समय की सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक पृष्ठभूमि का अध्ययन आवश्यक हो जाता है। छायावाद के जन्म की पृष्ठभूमि में भी यही प्रवृत्ति काम कर रही थी। तत्कालीन समाज में व्याप्त जनअसंतोष तथा विषमताओं एवं असंगतियों से स्वयं को अलग रखना भावुक तथा विचारशील प्राणी के लिए कठिन ही नहीं वरन् असम्भव भी था। इस प्रकार छायावाद समाज में व्याप्त अन्तर्बाह्य संघर्ष के विरुद्ध भावुक हृदय की पुकार है। इस अभिव्यक्ति के लिए विद्यमान साधन जैसे-भाव, भाषा, छन्द, रस, शिल्प आदि भी अपर्याप्त थे। अतः इन कवियों ने नए काव्य साधनों का निर्माण किया। इस अभिव्यक्ति के लिए जिन परिस्थितियों ने दबाव डालकर उस युग के कवियों को काव्य रचना की ओर प्रवृत्त किया तथा उन्हें अपने आन्तरिक भावों की अभिव्यक्ति के लिए विवश किया, उस सामाजिक, राजनीतिक पृष्ठभूमि का सम्यक् अनुशीलन छायावाद को समझने के लिए आवश्यक है। छायावाद अपने जन्म से ही वाद-विवाद की एक लम्बी प्रक्रिया साथ लेता आया है। यहाँ तक कि 'छायावाद' को 'छायावाद' नाम भी उपहास और हंसी में दिया गया था लेकिन धीरे-धीरे इस युग के कवियों ने अपनी कविताओं की सार्थकता सिद्ध की। आलोचकों के साथ-साथ इसका एक समर्थक वर्ग भी तैयार हुआ जिसने आलोचकों द्वारा की जा रही आलोचना का अपने लेखों द्वारा समाधान प्रस्तुत किया। इस पृष्ठभूमि के साथ छायावाद का सम्यक् अध्ययन प्रस्तुत है—

१.राजनीतिक-सामाजिक परिवेश -

बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में बंगाल में आए हुए अकाल के समय ब्रिटिश सरकार से कोई सहयोग न मिलने के कारण और इसके स्थान पर उनकी शोषणकारी नीतियों के परिणामस्वरूप भारतीय जनमानस में अंसतोष की तीव्र लहर व्याप्त थी। यद्यपि ब्रिटिश शासन ने भारत में व्यापार और उद्योग का विकास तो अवश्य किया किन्तु यह विकास अन्य देशों में इतने ही समय में होने वाले विकास से काफी कम था। इसके साथ ही साम्राज्यवादी शक्तियाँ अफ्रीका और एशिया में अपना विस्तार क्षेत्र बढ़ाने के लिए निरन्तर

प्रयत्नशील थी तथा इसके लिए वे भारतीय सेना तथा भारत के संसाधनों का खुलकर उपयोग कर रहे थे जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव भारतीय जनता पर पड़ रहा था। तभी सन् 1914 में प्रथम विश्वयुद्ध प्रारम्भ हो गया जिसमें भारत के राष्ट्रवादी नेताओं ने यह सोचकर अंग्रेज सरकार का समर्थन किया कि कृतज्ञतावश अंग्रेज सरकार भारतीयों को आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्र में कुछ रियायतों की घोषणा करेगी। लेकिन युद्ध समाप्ति के बाद भारतीय नेता ठगे से रह गए क्योंकि मित्र राष्ट्रों ने दुनिया के सभी राष्ट्रों के लिए जनतन्त्र तथा राष्ट्रीय आत्मनिर्णय का एक नया युग प्रारम्भ करने का जो वचन दिया था उसे पूरी तरह से भुला दिया गया। इसके परिणामस्वरूप भारतीय जनमानस में क्रांति की व्यापक लहर उठी और इसी समय राजनीतिक क्षेत्र में महात्मा गाँधी के आगमन से भारतीय जनता ने उनके नेतृत्व में संगठित होकर एक स्वर से विदेशी शासन को उखाड़ फेंकने का संकल्प लिया। विश्वयुद्ध के बाद भारतीयों की आर्थिक स्थिति और भी खराब हो गई। करों के बढ़ते बोझ और गरीबी की मार से मध्यवर्ग भी पीड़ित था और उस पर सूखा, महामारी आदि ने जनता की कठिनाइयाँ और भी बढ़ा दी थीं। 1920-22 में महात्मा गाँधी ने ब्रिटिश सरकार के साथ असहयोग करते हुए असहयोग आन्दोलन का सूत्रपात किया जिसमें समाज के सभी वर्गों ने समस्त भेदभावों को भुलाकर बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया। यहाँ तक कि दीर्घकालीन जड़ता की स्थिति को समाप्त कर भारतीय नारी भी इस आन्दोलन का मुख्य हिस्सा बनीं। इस आन्दोलन को दबाने के लिए अंग्रेजों ने हर संभव प्रयत्न किये। जनता का निर्ममतापूर्वक दमन किया गया, अत्याचार करने के नए-नए तरीके ढूँढे गए, सभी बड़े राष्ट्रवादी नेताओं को गिरफ्तार करके जेल में डाल दिया गया। लेकिन इस आन्दोलन के माध्यम से भारतीय जनमानस में इस आत्मविश्वास ने अवश्य जन्म लिया कि भारतीय हीन नहीं है और बिना अस्त्र-शस्त्र के भी अंग्रेजों को इस देश से बाहर किया जा सकता है।

राजाराममोहन राय ने ब्रह्मसमाज, दयानन्द सरस्वती के आर्य समाज, विवेकानन्द के रामकृष्ण मिशन तथा प्रार्थना समाज जैसी सुधारमूलक संस्थाओं ने भारतीय जनता के जीवनस्तर को ऊँचा उठाने का प्रयत्न किया तथा भारतीय समाज में शिक्षा के व्यापक प्रचार-प्रसार से जनता का एक वर्ग नवीन विचारों, नवीन मूल्यों को ग्रहण कर रहा था, जो परम्परागत मूल्यों से सर्वथा भिन्न था।

साहित्यिक वातावरण

चूँकि साहित्य समाज का दर्पण है इसलिए राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्र में व्याप्त इस उथल पुथल की अभिव्यक्ति साहित्य में होनी स्वाभाविक थी। साहित्यिक क्षेत्र में भी नई प्रवृत्तियों, भावों, विचारों एवं विधाओं का समावेश हुआ, जिसके लिए ब्रजभाषा के स्थान पर खड़ी बोली का आविष्कार किया गया।

साहित्य में नवजागरण काल भारतेन्दु युग माना जाता है जिसमें भारतेन्दु ने गद्य के लिए खड़ी बोली को स्वीकार करके उसे साहित्यिक रूप प्रदान किया लेकिन काव्यरचना उन्होंने परम्परा प्रचलित ब्रजभाषा में ही की। भारतेन्दु के काव्य और गद्य साहित्य में एक अद्भुत विरोधाभास देखने को मिलता है कि उन्होंने जहाँ गद्य में नाटकों के माध्यम से देश के सामने विद्यमान समसामयिक समस्याओं पर अपनी लेखनी चलाई, वहीं काव्य में परम्परा से चले आ रहे राधा-कृष्ण से सम्बंधित भक्तिमय सवैया ही लिखे। यही प्रवृत्ति आगे चलकर महादेवी वर्मा के साहित्य में मिलती है, जहाँ गद्य और काव्य सर्वथा भिन्न है। द्विवेदीयुग में वर्णन की प्रणाली इतिवृत्तात्मक ही रही और इस युग के कवियों का वस्तु-वर्णन पर अधिक जोर रहा। सम्भवतः इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि काव्य में व्यवहृत नई खड़ी बोली को अभी परिमार्जित और परिष्कृत होना बाकी था। उसे नए-नए भावों और विचारों को वहन करने योग्य बनाना था। इस कार्य के लिए आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी आगे आए और सरस्वती पत्रिका के माध्यम से उस युग के कवियों को खड़ी बोली में लिखने के लिए प्रेरित किया। उसके शब्दकोश को समृद्ध बनाया तथा व्याकरणगत अशुद्धियों को सुधारा। उनके द्वारा किए जा रहे प्रयत्नों के परिणामस्वरूप ही खड़ी बोली में आर्योचित गरिमा आ पाई। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है—"गद्य की भाषा पर द्विवेदी जी के इस शुभ प्रभाव का स्मरण जब तक भाषा के लिए शुद्धता आवश्यक समझी जाएगी, तब तक बना रहेगा।"[1] यद्यपि ब्रजभाषा की कोमलकान्त पदावली के स्थान पर खड़ी बोली में विद्यमान खरखराहट तत्कालीन साहित्यिक वर्ग को आसानी से स्वीकार्य नहीं हुई और खड़ी बोली को अपने अस्तित्व की स्थापना के लिए संघर्ष भी करना पड़ा लेकिन धीरे-धीरे खड़ी बोली ने साहित्य क्षेत्र में अपने पाँव जमाने शुरू कर दिए।

द्विवेदीयुगीन कवियों ने खड़ी बोली को कसौटी पर कसकर काव्य के उपयुक्त तो बना दिया लेकिन अब उसके शब्दों में नए अर्थ संकेत भरने की आवश्यकता थी और यह कार्य आगे आने वाली नई पीढ़ी ने अत्यन्त कुशलता के साथ किया। ये कवि नित्य ही ज्ञान विज्ञान के नये आयामों से परिचित हो रहे थे। चिन्तनशील होने के कारण नाना विचारभूमियों से गुजर रहे थे। देश की तत्कालीन दशा इन्हें आन्दोलित कर रही थी और विदेशी शासन से उत्पीड़ित भारतीय जनता का आर्त्त क्रन्दन इनके अन्तर्मन को झकझोर रहा था और इसीलिए इन कवियों ने मुखर अभिव्यक्ति न करके सूक्ष्म रूप में अपने भावों को व्यक्त किया। जनसाधारण में व्याप्त निराशा को दूर करने के लिए इन लोगों ने जनता का ध्यान स्वर्णिम अतीत की ओर खींचा तथा उन्हें एकता के सूत्र मे आबद्ध रखने के लिए राजनीतिक व्यवस्था से ऊपर उठकर उच्चतर मानवीय मूल्यों की स्थापना की। पराधीनता में जकड़े हुए और सामाजिक रूढ़िनीति के बंधे-बंधाएँ ढाँचे को तोड़ने के लिए ये कवि विद्रोह कर बैठे। उन्होंने व्यक्तिगत और राष्ट्रीय दोनों स्तरों पर स्वतन्त्र होने का प्रयास किया।

इन कवियों के पास नए-नए भावों एवं विचारों का उन्मुक्त आकाश तो था ही, साथ ही कल्पना के योग ने उनकी अनुभूतियों को ऐसे रूप में अभिव्यक्त किया, जो तत्कालीन साहित्यिक जगत के लिए बिल्कुल नई चीज थी। उन्होंने परम्परा-प्रचलित शैली को अस्वीकार करके लक्षणा, व्यंजना, प्रतीक तथा बिम्ब का प्रयोग करके एक नई काव्यशैली को जन्म दिया। अमूर्त विधायिनी कल्पना के योग से अमूर्त स्थितियों को भी साकार रूप प्रदान किया गया तथा प्रस्तुत विषयों को अधिक कलात्मक और सूक्ष्म रूप में प्रस्तुत किया गया। उनकी कल्पना एवं अनुभूति का संस्पर्श पाकर जड़ माने जाने वाली प्रकृति भी चेतनवत् व्यवहार करने लगी। 1911 में गीतांजलि का प्रकाशन और 1913 में उस पर नोबुल पुरस्कार मिलने से इस काव्य रचना की ओर नए कवियों का ध्यान जाना स्वाभाविक ही था, उसमें व्यक्त भावों, विचारों, और शैली को अपनाना भी अस्वाभाविक नहीं था। क्योंकि साहित्य को जन्म देने में सामयिक परिस्थितियों का हमेशा से ही महत्वपूर्ण स्थान रहा है। यद्यपि इस नई काव्य प्रवृत्ति का जन्म द्विवेदी युगीन इतिवृत्तात्मक, वर्णनप्रधान, नीरस तथा उपदेशात्मक कविताओं के विरुद्ध प्रतिक्रिया के रूप में हुआ था लेकिन यह बिल्कुल नया नहीं था, वरन् इसके बीज रीतिकाल के अन्तिम चरण में विकसित होने वाले रीतिमुक्त कवियों के काव्य में देखे जा सकते हैं, जहाँ घनानन्द, बोधा, ठाकुर आदि कवियों ने परम्परागत भाषा, शैली में क्रांति लाते हुए लाक्षणिक मूर्तिमत्ता और प्रयोग वैचित्य की अद्भुत छटा प्रस्तुत की। सम्भवतः इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि प्रचलित भाषा, शैली, शब्द बार-बार व्यवहृत होकर अपनी चमक खो देते हैं, एकरसता उत्पन्न करने लगते हैं, और अपनी गुणवत्ता में हीन हो जाते हैं अतः इस बंधी बंधायी लीक को तोड़ने के लिए कवि का यह विद्रोह स्वाभाविक ही माना जाना चाहिए।

इस नई काव्य प्रवृत्ति का प्रारम्भ 1918 से सर्वस्वीकृत हो चुका है लेकिन इससे प्रभावित कविताएँ 1911 से ही 'इन्दु' में प्रकाशित होने लगी थी। प्रसाद की 'प्रथम प्रभात' और 'खोलो द्वार' कविताएँ इन्दु में ही छपी थी। इन दोनों ही कविताओं में लाक्षणिक वैचित्य, आत्माभिव्यक्ति, तथा कल्पना का उन्मुक्त आकाश विद्यमान है। इनमें इस नई काव्यप्रवृत्ति के विकास की अनन्त सम्भावनाएँ विद्यमान हैं। प्रसाद की एक अन्य रचना 'प्रभो' 1911 के 'इन्दु' में प्रकाशित हुई थी जो निम्न प्रकार है—

"विमल इन्दु की विशाल किरणें प्रकाश तेरा बता रही हैं।"

"तुम्हारा स्मित हो जिसे देखना वह देख सकता है चन्द्रिका को"

"प्रसाद तेरी दया का जिसको देखना हो तो देखे सागर

तुम्हारे गाने की धुन में नदियाँ निनाद करती ही जा रही हैं।"

'अनन्तता की यह उज्ज्वल काव्यात्मक अनुभूति इतनी सरलता सहजता एवं संवेद्यता के साथ 1911 में ही प्रसाद द्वारा व्यक्त हो चुकी थी।"[2] सन् 1916 में छन्दों के बंधन को तोड़ते हुए निराला की 'जूही की कली' प्रकाशित हुई। निराला का संस्कार तथा रुचियाँ बनने का समय बंगाल में व्यतीत होने के कारण इस कविता पर बंगाल के छन्द-पद-बन्ध एवं नाद सौन्दर्य का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। सन् 1918 में प्रकाशित 'झरना' काव्य संकलन इस नए ढंग की काव्यप्रवृत्तियों का प्रतिनिधि संकलन माना जाता है। इसके साथ ही नए कवि इस नई काव्य प्रवृत्ति की ओर आकृश्ट हुए। तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में इन कविताओं की धूम सी-मच गई। ये सभी कवि कल्पना के समुचित समावेश से अपनी भावानुभूतियों को नित्य नये रंग प्रदान कर रहे थे, शब्दों में नई अर्थच्छवि भर रहे थे। सन् 1925 में 'आँसू' के प्रकाशन के साथ इनकी भावाभिव्यक्तियों में और भी प्रौढ़ता आई। रामचन्द्र शुक्ल भी अपने इतिहासग्रन्थ में स्वीकार करते हैं कि— "उक्तियों के भीतर बड़ी ही रंजनकारिणी कल्पना, व्यंजक चित्रों का बड़ा ही अनूठा विन्यास, भावनाओं की अत्यन्त सुकुमार योजना मिलती है।" [3] सुमित्रानंदन पन्त की इस नई काव्यप्रवृत्ति से सम्बन्धित रचनाओं का संकलन 'वीणा' का प्रकाशन तो 1927 में हुआ लेकिन इसकी अधिकतर रचनाएँ 1918-1919 में लिखी गई थीं। सन् 1927 में पन्त के 'पल्लव' का प्रकाशन हुआ और उसके बाद 1929 में निराला के 'परिमल' का प्रकाशन हुआ। महादेवी का प्रवेश साहित्य जगत में थोड़ी देर से हुआ उनका 'नीहार' सन् 1930 में प्रकाशित हुआ जिसमें उनकी 1926 से 1929 तक की रचनाएँ संग्रहीत हैं। 'नीहार' में रहस्यात्मक सत्ता के प्रति जिज्ञासा की भावना, संसार की अस्थिरता, जीवन की नश्वरता तथा उस अज्ञात, अव्यक्त, प्रियतम के प्रति वेदना एवं करुणा का पूर्ण परिपाक् हुआ। है। 1932 में सुमित्रानंदन पन्त का 'गुंजन' और महादेवी के 'रश्मि' का प्रकाशन हुआ। महादेवी वर्मा की अन्य काव्य-कृतियाँ 'नीरजा' 'सांध्यगीत' तथा 'दीपशिखा' क्रमशः 1934,1936 और 1942 में अस्तित्व में आई। 1933 में प्रसाद की 'लहर' और 1936 में 'कामायनी' का प्रकाशन हुआ और इसी समय डा. रामकुमार वर्मा का 'चित्ररेखा' का प्रकाशन हुआ। 1936 में सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला के गीतों का संग्रह 'गीतिका' के प्रकाशन के साथ ही इस नई काव्यप्रवृत्ति की सम्भावनाएँ समाप्त होने लगी थीं।

नामकरण को लेकर उठा विवाद-

यद्यपि इस नई काव्य प्रवृत्ति के बीज काव्यभूमि पर उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में ही पड़ने प्रारम्भ हो गए थे। परन्तु उस समय यह काव्य प्रवृत्ति बिल्कुल नई थी, जिसका नामकरण होना अभी शेष था। इस नई काव्य प्रवृत्ति के अन्तर्गत नए-नए भावों एवं विचारों का समावेश होने के कारण और इसीलिए प्रचलित काव्य

वस्तु के साथ सामंजस्य न बिठा सकने के कारण उस समय के साहित्यिक वर्ग के मध्य इसको लेकर तीव्र प्रतिक्रिया हुई। कविता में निहित भावों की सूक्ष्म अभिव्यक्ति और उसका अर्थ स्पष्ट न होने के कारण इस नई काव्य प्रवृत्ति को 'छायावाद' संज्ञा से विभूषित किया गया, जिसका प्रथमतः उल्लेख जबलपुर से प्रकाशित होने वाली 'श्री शारदा' पत्रिका के 1920 के जुलाई, सितम्बर, नवम्बर और दिसम्बर के अंकों में मिलता है, जिसमें मुकुटधर पाण्डेय ने 'हिन्दी में छायावाद' शीर्षक से एक लेखमाला प्रकाशित करवाई थी। जो छायावाद पर एक "अत्यन्त सूझ-बूझ भरी गंभीर समीक्षा"[4] है। यह 'छायावाद' संज्ञा आलोचकों द्वारा उपहास और व्यंग्य में दी गई थी किन्तु कालान्तर में इसकी इतनी अधिक आलोचना-प्रत्यालोचना हुई कि 'छायावाद' नाम स्वयं को साहित्य जगत में प्रतिष्ठा दिलाने में सफल रहा। प्रारम्भ में 'छायावाद' नाम को बंगाल से आया हुआ माना गया किन्तु बाद में यह धारणा निर्मूल सिद्ध हुई। छायावाद में अज्ञात, अव्यक्त या असीम को निवेदित कविताएँ देखकर इसे रहस्यवाद का पर्याय भी माना गया किन्तु अन्त में रहस्यवाद को भी छायावाद की एक विशेषता के रूप में स्वीकार कर लिया गया।

मुकुटधर पाण्डेय ने कविता में निहित वस्तुगत सौन्दर्य और उनकी अन्तर्निहित रहस्य की प्रेरणा को कविता का मूल तत्व माना है। इस रहस्यपूर्ण सौन्दर्य दर्शन में कल्पना का भी योग रहता है। इसीलिए कविता में विद्यमान भाव अस्पष्ट रहते हैं। मुकुटधर पाण्डेय अपने एक लेख में लिखते हैं कि— "इसी अस्पष्टता का दूसरा नाम 'छायावाद' (Mysticism) है जो लोग छायावाद को एक नई बात समझते हैं, वे भूलते हैं। यथार्थ में वह कविता के साथ ही साथ उत्पन्न होती है।"[5]

महावीर प्रसाद द्विवेदी छायावादी कविताओं को बंगाल के रवीन्द्रनाथ टैगौर की कविताओं से प्रभावित मानते हैं। टैगोर की कविता के लिए वे Mystic या Mystical शब्द का प्रयोग करते हैं, जिसका अर्थ पं० मथुरा प्रसाद मिश्र ने अपने त्रैभाषिक कोश में गूढ़ार्थ, गुह्य, गुप्त, गोप्त और रहस्य बताया है। इस समय तक छायावाद को लेकर भ्रम की स्थिति बनी हुई थी। महावीर प्रसाद द्विवेदी सरस्वती पत्रिका में लिखते हैं— "छायावाद से लोगों का क्या मतलब है, कुछ समझ में नहीं आता। शायद उनका मतलब है कि किसी कविता के भावों की छाया यदि कहीं अन्यत्र जाकर पड़े तो उसे छायावाद कविता कहना चाहिए।'[6]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'छायावाद' शब्द का प्रयोग बंगाल में ईसाई संतों के छायाभास तथा यूरोपीय काव्यक्षेत्र में प्रवर्तित आध्यात्मिक प्रतीकवाद के अनुकरण पर रची जाने वाली कविताओं के लिए किया है जिससे प्रभावित होकर बाद में हिन्दी के कवि भी कविताएँ करने लगे। वे लिखते है कि -"यह वाद क्या प्रकट हुआ, एक बने बनाए रास्ते का दरवाजा सा खुल पड़ा और हिन्दी के कुछ नए कवि एकबारगी

झुक पड़े।' [7] 'छायावाद' नाम वेदान्त के प्रतिबिम्बवाद से प्रभावित, फिर सूफियों के यहाँ से होता हुआ योरोप के प्रतीकवाद से संश्लिष्ट होकर बंग साहित्य में आया और वहाँ से हिन्दी में ग्रहण किया गया, ऐसा आचार्य रामचन्द्र शुक्ल मानते हैं।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने ही सर्वप्रथम इस धारणा को निर्मूल सिद्ध किया कि छायावाद शब्द बंगाल से आया हुआ है। वे उसे बिल्कुल नया मानते हैं जो केवल अधिक व्यवहृत हो जाने के कारण सभी के द्वारा स्वीकारणीय हो गया है।

जयशंकर प्रसाद ने छायावाद की समानता संस्कृत साहित्य के साथ निरूपित की। परम्परा के बंधे बंधाए ढाँचे से हटकर कविता में वेदना के आधार पर स्वानुभूति की अभिव्यक्ति प्रमुख होने लगी और इन भावों को व्यक्त करने में प्रचलित भाषा असमर्थ थी। इसलिए नवीन शैली, नया वाक्य-विन्यास और नवीन शब्दों के माध्यम से भावों की सूक्ष्म अभिव्यक्ति का प्रयास किया गया और ऐसी कविता को छायावाद के नाम से पुकारा गया। छायावाद नाम के चलन के बारे मे प्रसाद का मत था कि "कविता के क्षेत्र में पौराणिक युग की किसी घटना अथवा देश-विदेश की सुन्दरी के बाह्य वर्णन से भिन्न जब वेदना के आधार पर स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति होने लगी, तब हिन्दी में उसे छायावाद के नाम से अभिहित किया गया।" [8]

सुमित्रानन्दन पन्त को इस नई काव्य प्रवृत्ति का 'छायावाद' नाम स्वीकार्य नहीं है। वे लिखते हैं कि— 'छायावाद' नाम से मैं सन्तुष्ट नहीं हूँ। यह तो द्विवेदी युग के आलोचकों द्वारा नई कविता के उपहास का सूचक है।" [9] छायावाद के प्रवर्तक प्रसाद द्वारा छायावाद नाम स्वीकार कर लिए जाने के कारण और उसकी व्याख्या भी कर देने का परिणाम सुमित्रानंदन पंत यह मानते है कि-"जिस प्रकार वाल्मीकि उलटा नाम रटकर ब्रह्म के समान हो गए उसी प्रकार काव्य में उस युग की ज्योति छाया बनकर हिन्दी साहित्य को सर्वसम्पन्न करने में सफल हुई।"[10] अतः इस नाम के औचित्य को सिद्ध करने के लिए जो तर्क दिए गए वे उसे और भी उलझाते रहे, जिसका अन्त यह हुआ कि "साहित्य के मन्दिर में छाया या प्रेत की स्थापना कर लेने पर अनेक प्रयत्न करने पर भी उसमें प्राण-प्रतिष्ठा नहीं कर सके, छाया नये जीवन की वास्तविकता नहीं बन सकी, वह छाया की भी परछाई के रूप में ग्रहण की जाने लगी।"

साहित्यजगत में महादेवी के आगमन तक छायावाद नाम को लेकर हुआ प्रारम्भिक विरोध काफी सीमा तक शान्त हो गया था और छायावाद अपनी पूरी गरिमा के साथ साहित्यिकों का सिरमौर बना हुआ था। महादेवी 'छायावाद' नाम को उपयुक्त मानती हैं। छायावाद के जन्म की परम्परा को वे वेदों, उपनिषदों से जोड़ते हुए, वीरगाथा कालीन, निर्गुण-सगुण भक्ति काव्य से होते हुए रीतिकालीन रुढ़िवादिता की प्रतिक्रिया

के साथ-साथ तत्कालीन समाज में व्याप्त मनुष्य के अन्तर्बाह्य संघर्ष से जोड़ती है। जिस प्रकार किसी मनुष्य को स्वतंत्र छोड़ देने पर वह स्वतंत्रता से ऊब कर अपने लिए असंख्य बंधनों की रचना कर डालता है, फिर उन बन्धनों को तोड़ने में लग जाता है। उसी प्रकार काव्य में पहले तो स्थूलता, इतिवृत्तात्मकता तथा वस्तु वर्णन का प्राधान्य हो गया और फिर उसकी प्रतिक्रियास्वरूप स्वानुभूत सुख दुखों की सूक्ष्म अभिव्यक्ति की जाने लगी। वे लिखते हैं कि— "उसके जन्म से प्रथम कविता के बंधन सीमा तक पहुँच चुके थे और सृष्टि के बाह्याकार पर इतना अधिक लिखा जा चुका था कि मनुष्य का हृदय अपनी अभिव्यक्ति के लिए रो उठा। स्वच्छन्न छन्द में चित्रित उन मानव-अनुभूतियों का नाम छाया उपयुक्त ही था और मुझे तो आज भी उपयुक्त ही लगता है।" [12]

डा0 नगेन्द्र छायावाद के जन्म के पीछे तत्कालीन राजनीतिक तथा सामाजिक परिस्थितियों को मुख्य कारण मानते हैं। ब्रिटिश सरकार की शोषणकारी नीतियों के परिणामस्वरूप उत्पन्न जन-असंतोष और पश्चिम के स्वतंत्र विचारों के सम्पर्क में आने के कारण कवि मन अपनी अनुभूतियों की बाह्य अभिव्यक्ति में असमर्थ था। इसलिए उसकी आत्मगत चेतना अन्तर्मुखी होकर यथार्थ और स्थूल से मुँह फेरकर सुदूर, रहस्यमय और सूक्ष्म के प्रति आकर्षित हो रही थी। वे लिखते हैं कि— "जिन परिस्थितियों ने हमारी कर्मवृत्ति को अहिंसा की ओर प्रेरित किया उन्हीं ने भाववृत्ति को छायावाद की ओर। उसके मूल में स्थूल से विमुख होकर सूक्ष्म के प्रति आग्रह था।" [13]

नन्ददुलारे बाजपेई प्रारम्भ में छायावाद के अन्तर्गत आध्यात्मिकता का समावेश करते हैं। वे लिखते हैं कि— 'मानव अथवा प्रकृति के सूक्ष्म किन्तु व्यक्त सौन्दर्य में आध्यात्मिक छाया का भान मेरे विचार से छायावाद की सर्वमान्य व्याख्या हो सकती है।" [14] किन्तु बाद में इस आध्यात्मिकता को उन्होंने कबीर जैसे निर्गुणमार्गी तथा सूफी कवियों की आध्यात्मिकता से भिन्न माना है। इसकी मुख्य प्रेरणाभूमि धार्मिक नहीं है, वरन् मानवीय और सांसकृतिक है। छायावाद बीसवीं शताब्दी में होने वाली वैज्ञानिक और भौतिक प्रगति की प्रतिक्रिया है, जिसकी अपनी नवीन और स्वतंत्र काव्य शैली है।

इलाचन्द्र जोशी छायावाद से पूर्व दो प्रकार की कविताओं को प्रचलन में मानते हैं। एक तो नायक-नायिका भेद प्रदर्शन तथा नख-शिख वर्णन की पुरानी पद्धति की कविताएँ और दूसरी वर्णनात्मक और इतिवृत्तात्मक कविताएँ। प्रसाद गुण से समन्वित सुस्पष्ट तथा बोधगम्य कविता सुनने के आदी लोगों के सामने जब अन्तरात्मा की वास्तविक तथा निगूढ़ वेदना से उत्पन्न कविताएँ नये रूप में तथ नए आकार में सजकर आई तो वे उन्हें अस्पष्ट, रहस्यपूर्ण और छायात्मक लगी। वे लिखते हैं कि—"अचानक इस प्रकार की

कविताओं की बाढ़ सी आते देख वे घबरा उठे और इस घबराहट में उन्हें कुछ सूझ न पड़ा कि इस श्रेणी की कविताओं को क्या नाम दिया जाय। कोई एक नाम देना परमावश्यक हो उठा, क्योंकि वास्तविक कविताओं को इन 'अवास्तविक' तथा अर्थहीन कविताओं की बाढ़ से बचाने, उनके संसर्ग से सुरक्षित रखने के लिए ऐसा करना जरूरी समझा गया। फलस्वरूप नए ढर्रे की कविता का नाम पड़ा। छायावादी कविता और इस श्रेणी की कविता की भावधारा का नाम पड़ा-'छायावाद।' [15]

इन्द्रनाथ मदान भी छायावाद के जन्म के मूल में अस्पष्टता को ही प्रधान स्थान देते हैं। वे लिखते हैं कि— 'इतिवृत्तात्मक कविता के प्रेमी और उस काल की यह अटपटी व्यंजना ब्रजभाषा के रसिकों को समझ में नहीं आती थी, इसमें अस्पष्टता भी थी। उन्होंने इसमें काव्य की काया न देखी, छाया देखी और इसका नाम किसी प्रकार छायावाद पड़ गया है।' [16]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि छायावाद नाम को लेकर विद्वानों में पर्याप्त मतभेद रहा था और अपने पक्ष में सभी ने तर्क भी प्रस्तुत किये। प्रारम्भ में इसे बंगाल से उधार लिया हुआ माना गया किन्तु बाद में यह स्वीकार कर लिया गया कि यह हिन्दी का ही शब्द है और इस युग की काव्य प्रवृत्तियों के लिए सर्वाधिक उपयुक्त भी है।

·.वर्तक कवि के सम्बन्ध में मतवैभिन्य-

छायावाद के नामकरण के समान इसके प्रवर्तक कवि के सम्बंध में भी विद्वानों में मत विभिन्नता रही है। रामचन्द्र शुक्ल ने मुकुटधर पाण्डेय, मैथिली शरण गुप्त और रामनरेश त्रिपाठी के काव्य में सर्वप्रथम छायावादी प्रवृत्तियों के दर्शन किए। वहीं राम नरेश त्रिपाठी भी स्वयं को छायावाद कविता के प्रवर्तक का श्रेय देना चाहते हैं क्योंकि पंत को उनके 'पथिक' में छायावादी पंक्तियां मिली थी। रामनरेश त्रिपाठी का मानना है कि— 'यदि यह ठीक है और मैं मानता हूँ कि यह ठीक है तो इसे स्वाभाविक विकास का एक प्रमाण मानना चाहिए, क्योंकि पथिक लिखते समय छायावाद की कोई कल्पना मेरे मस्तिष्क में नहीं थी और इसका श्रेय मुझे मिल सकता है या नहीं, विचार किया जा सकता है।' [17] श्री रायकृष्ण दास दृढ़ता के साथ प्रसाद को छायावाद का प्रवर्तक स्वीकार करते हैं। वे लिखते हैं कि— "अन्य कोई भी नाम उनके साथ न लिया जा सकता है, न टिक सकता है।" [18] सियाराम शरण गुप्त यह श्रेय रवीन्द्रनाथ टैगोर को देते हैं क्योंकि हिन्दी की नई कविता धारा ने स्वयं को वहीं से परिपुष्ट किया है। वे लिखते हैं कि— 'ब्रजभाषा का सूरसागर, अवधी का रामचरितमानस और पद्मावत, एवं राजस्थान कीमीराबाई की पदावली जब हिन्दी की है तो जन-गण-मन-

अधिनायक के कवि को हम हिन्दी कवियों में वरण न करके अपनी संकीर्ण दृष्टि का ही परिचय देंगे।[19] सुमित्रानन्दन पंत मोटे रूप से प्रसाद को छायावाद का जनक स्वीकार करते हैं किन्तु बाद में उन्होंने अपनी कुछ रचनाओं का प्रकाशन वर्ष प्रसाद की रचनाओं के प्रकाशन से पहले बताया है। नन्ददुलारे बाजपेई ने छायावादी काव्यशैली का वास्तविक अभ्युदय सन् 1920 के पूर्व-पश्चात श्री सुमित्रानन्दन पंत की उच्छवास नाम की काव्य-पुस्तिका के प्रकाशन के साथ माना है। इलाचन्द्र जोशी पहला छायावादी कवि उसे मानते हैं जिसने छायावाद युग की निश्चित स्थापना हो जाने के पहले से ही एकआध छिटपुट कविता नहीं वरन् निरन्तर छायावादी प्रवृत्तियों से समन्वित कविताएँ लिखीं। इस दृष्टिकोण से प्रसाद को ही वे सर्वप्रथम छायावादी कवि मानते हैं।

प्रिंसिपल मनोरंजन, श्री प्रभात, आरसी प्रसाद सिंह भी प्रसाद को छायावाद का प्रवर्तक स्वीकार करते हैं और जानकी वल्लभ शास्त्री छायावाद का आदि कवि तो निराला और पन्त को मानते हैं लेकिन प्रवर्तक कवि प्रसाद को स्वीकार करते हैं। 'मेरी समझ से प्रसाद की प्राथमिकता वयःकृत ही है।'[20] विनयमोहन शर्मा, और प्रभाकर माचवे ने माखनलाल चतुर्वेदी को छायावाद का प्रवर्तक कवि माना है।

'छायावाद के प्रवर्तक कवि के रूप में प्रसाद का नाम अब सर्वसम्मति से स्वीकार कर लिया गया है। प्रसाद की रचनाएँ 1913-14 से ही इन्दु में प्रकाशित होने लगी थीं और उस विकास की चरमपरिणति कामायनी में हुई। इस नई शैली के निरन्तर विकास के लिए प्रसाद सतत् प्रयत्नशील रहे और छायावादी कविताएँ ही अन्त तक लिखते रहे।

छायावाद : आलोचकों तथा कवियों द्वारा उठाए गए विवाद और संवाद

छायावाद अपने जन्म के साथ ही विवादों से घिरा रहा है। यद्यपि इन्हीं विवादों के उत्तर-प्रत्युत्तर में यह और भी निखरता गया है। द्विवेदी युग की काव्यवस्तु वर्णनात्मक एवं वस्तुपरक थी और छायावाद की विषयप्रधान, स्वानुभूतिपरक एवं अप्रस्तुत विधायिनी शैली से उसे आघात पहुँचना स्वाभाविक ही था। इसलिए आघात जितना तेज था,उसकी प्रतिक्रिया भी उतनी ही तीव्र हुई। इसके विरोधियों द्वारा इसे अस्पष्ट, अर्थहीन, निस्सार प्रमाणित करने के प्रयत्न भी किए गए, किन्तु वे सफल नहीं रहे और छायावाद को तत्कालीन साहित्य जगत में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ। छायावाद के सम्यक् अनुशीलन के लिए आरोपों प्रत्यारोपों पर एक दृष्टि डालना अत्यन्त आवश्यक है।

छायावाद पर लिखे गए मुकुट धर पाण्डेय के प्रथम निबन्ध 'छायावाद क्या है' से ही उसे

'Mysticism' का पर्याय माना जाता रहा है। उन्होंने छायावाद को मायामय सूक्ष्म वस्तु माना है जिसका शब्दों द्वारा वर्णन नहीं किया जा सकता क्योंकि शब्द अपने स्वाभाविक अर्थ को खोकर प्रतीक के रूप में प्रयुक्त होते हैं। छायावाद के कवि वस्तुओं को असाधारण दृष्टि से देखते हैं और इस दृष्टि पर ही उनकी रचना की सम्पूर्ण विशेषताएँ टिकी रहती हैं। इन कवियों की आत्मनिष्ठ अन्तर्दष्टि को ही मुकुटधर पाण्डेय ने छायावादी कविताओं का स्रोत माना है। कल्पना की अधिकता तथा प्रकृति का प्रारम्भ स ही अदृश्य और अव्यक्त के रूप प्रकाशन छायावादी कविता की प्रमुख प्रवृत्ति रही हैं।

'सरस्वती' पत्रिका में जून 1921 में सुशील कुमार का लेख 'हिन्दी में छायावाद' शीर्षक से संवाद शैली में छपा है जिसमें चार पात्र है। उनमें एक चित्रकार हैं और एक स्वयं पंत। शेष अन्य दो पात्रों में एक उच्चशिक्षा प्राप्त सुशीला देवी तथा दूसरे उनके अरसिक किन्तु लक्ष्मी के कृपापात्र पतिहरि किशोर बाबू हैं। चित्रकार ने पंत की रचना 'छाया' के आधार पर एक चित्र बनाया है,जो कोरा कागज है। पंत जी उस चित्र के आधार पर कविता के स्थान पर कोरा कागज प्रस्तुत करते हैं। इस प्रकार अस्पष्टता को इसमें छायावाद को प्रधान गुण माना गया है।

महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सुकवि किंकर' उपनाम से लिखे अपने निबन्ध में छायावादी कवियों को कठोर व्यंग्यबाणों का निशाना बनाया। कविता का सर्वप्रमुख गुण वे दूसरों को अपने भावों द्वारा प्रभावित करना मानते हैं। लेकिन छायावादी कविता में इसका अभाव है। इनका अर्थ तो स्वयं छायावादी कवि भी नहीं बता सकते। इसीलिए ये कवि अपनी कृति को बाह्य आडम्बरों से सजा कर प्रस्तुत करते हैं। छायावादी कविता को वे सहोक्ति अलंकार से प्रभावित मानते हैं, जहाँ वर्ण्य विषय के सिवा किसी अन्य विषय का भी बोध साथ ही साथ हो जाता है। यह प्रवृत्ति रवीन्द्रनाथ में है और उसका ही अनुकरण ये नए कवि कर रह हैं। पर रवीन्द्रनाथ ने जिस कार्य को गहन अभ्यास से संभव बनाया, उसे ये कवि स्कूल, कॉलेज में रहते ही करना चाहते हैं। वे लिखते हैं कि 'रहीम पर कुछ लिखना हो तो राम का चरितगान करो अशोक पर कुछ लिखनाहो तो सिकन्दर के जीवन चरित की चर्चा करो—यह अघटनीय घटना कर दिखाना साधारण कवियों का काम नहीं।'[21]

बाबू श्याम सुन्दर दास भी छायावादी कवियों को रवीन्द्रनाथ की कविताओं से प्रभावित मानते हैं और इस प्रवृत्ति को हिन्दी कविता के लिए हानिकर मानते हैं।वे लिखते हैं कि— "छायावाद और समस्यापूर्ति से हिन्दी कविता को बहुत हानि पहुँच रही है। छायावाद की ओर नवयुवकों का झुकाव है और ये जहाँ कुछ गुनगुनाने लगे कि चट दो-चार पद जोड़कर कवि बनने का साहस कर बैठते हैं।'[22]

रामचन्द्र शुक्ल छायावाद शब्द का प्रयोग दो अर्थों में करते हैं—एक तो रहस्यवाद के रूप में तथा दूसरा काव्यशैली या पद्धति विशेष के व्यापक अर्थ में। रहस्यवाद के अन्तर्गत 'जहाँ कवि उस अनन्त और अज्ञात प्रियतम को आलम्बन बनाकर अत्यन्त चित्रमयी भाषा में प्रेम की अनेक प्रकार से व्यंजना करता है।[23] दूसरा अर्थ है—'प्रस्तुत के स्थान पर उसकी व्यंजना करने वाली छाया के रूप में अप्रस्तुत का कथन।[24] प्रारम्भ में इन कवियों ने अभिव्यंजना के लाक्षणिक वैचित्य, वस्तुविन्यास की विशृंखलता, चित्रमयी भाषा और मधुमयी कल्पना को ही साध्य माना और अर्थ के विस्तार की ओर ध्यान नहीं दिया। अभिव्यंजनावाद और कलावाद के प्रभाव से कल्पना और शैली की विचित्रता को ही सबकुछ मान लिया गया पर यही प्रवृत्ति तो रीतिकालीन कविता में भी थी, उसका तो सभी ने घोर विरोध किया रामचन्द्रशुक्ल लिखते हैं कि 'पर वहीं शृंगारी कविता—कभी रहस्य का पर्दा डालकर, कभी खुले मैदान में—अपनी कुछ अदा बदलकर फिर प्रायः सारा काव्य क्षेत्र छेंककर चल रही है।'[25] यद्यपि बाद में शुक्ल जी ने स्वीकार किया कि छायावाद में काव्य शैली का बहुत अच्छा विकास हुआ। साथ ही अब कवियों का ध्यान अनेक प्रकार के विषयों की ओर भी गया। उन्होंने जीवन और जगत की समस्याओं को भी अपन काव्य का विषय बनाया। यद्यपि प्रारम्भ में शुक्ल जी ने छायावादी कविता को रहस्यवाद से प्रभावित माना था किन्तु बाद में उन्होंने इन कविताओं को विलायती अभिव्यंजनावाद, बंगला कविताओं की नकल तथा अंग्रेजी कविताओं के लाक्षणिक चमत्कार पूर्ण वाक्य शब्द-प्रति-शब्द जोड़कर बनी हुई माना। वे लिखते हैं कि—'छायावाद समझकर जो कविताएँ हिन्दी में लिखी जाती है, उनमें से अधिकांश का छायावाद या रहस्यवाद से कोई सम्बन्ध नहीं होता। [26] शुक्ल जी प्रारम्भ में छायावादी कव्रिताको काव्य की परम्परा का स्वाभाविक विकास नहीं मानते किन्तु बाद में वे उस कविता में विद्यमान लाक्षणिक वैचित्य,भाषा की वक्रता, विरोध चमत्कार, कोमल पद-विन्यास तथा भावावेश की प्रधानता से प्रभावित भी रहे।

हजारी प्रसाद द्विवेदी ने छायावादी कविता को तीव्र सांस्कृतिक चेतना का परिणाम माना है। इंगलैण्ड के स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन से प्रभावित होने के कारण वे इन कविताओं में शास्त्रीय परम्परा के प्रति विद्रोह पाते हैं। तथा व्यक्ति की अनुभूतियों को काव्य रूढ़ियों की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण मानते हैं। इस प्रकार उनके अनुसार इस कविता में मानवतावादी दृष्टि की प्रधानता थी। उसके वक्तव्य विषय में कवि की चिन्तन और अनुभूति का गहन समावेश था तथा बदलते हुए मानवीय मूल्यों को स्वीकार किया गया था। छन्द, अलंकार, रस, ताल, तुक में पिष्टपेषण से बचने का प्रयत्न था और शास्त्रीय रूढ़ियों के प्रति अनास्था का भाव प्रबल था।

कोई भी नई काव्य प्रवृत्ति जिस प्रकार अपने जन्म के साथ आलोचकों का एक वर्ग तैयार कर लेती है उसी प्रकार समर्थकों का भी एक समूह इनके साथ होता है। इन प्रमुख आलोचकों द्वारा छायावाद पर निरन्तर प्रहार होते देखकर अब आवश्यक हो गया कि उसके प्रमुख कवि अपनी कविता का आलोचना से आगे ले जाएं। अतः इन कवियों ने अपनी पुस्तकों में लम्बी-लम्बी भूमिकाएँ लिखकर तथा तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में छायावाद के समर्थन में लेख लिखकर छायावाद पर लगाए गए आरोपों का उचित समाधान प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया और छायावाद को साहित्यजगत में वह स्थान दिलाने में सफल रहे, जिसका वह अधिकारी था।

छायावाद के सम्बन्ध में प्रचलित अनेक प्रकार की भ्रान्त धारणाओं का निराकरण करते हुए जयशंकर प्रसाद ने उसका शास्त्रीय आधार सिद्ध करते हुए छाया को मोती के भीतर स्थित, छाया के समान माना—

"मुक्ताफलेषुच्छायायास्तरलत्वमिवान्तरा,
प्रतिभाति यदङ्गेषु तल्लावण्यमिहोचयते।[27]

(मोती के भीतर छाया की जैसी तरलता होती है वैसी ही कान्ति की तरलता अंग में लावण्य कही जाती है) प्राचीन संस्कृत कवियों के समय से ही काव्य में आन्तरिक वर्णन की प्रधानता थी और इन भावों की अभिव्यक्ति के लिए नए शब्दों के नए अर्थ लगाए गए। इस नए अर्थ के माध्यम से ही साहित्य में अभिधा, लक्षणा, तथा व्यंजना जैसी शब्द शक्तियों का निर्माण हुआ। इस प्रकार संस्कृत साहित्य से उदाहरण देकर प्रसाद ने स्पष्ट किया कि यह परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। इसलिए जब हिन्दी में इस तरह के प्रयोग प्रारम्भ हुए तो प्रारम्भिक विरोध के बावजूद भी यह छायावाद स्वयं को साहित्य जगत में स्वीकार करवाने में सफल रहा है। छायावाद पर लगाए गए अस्पष्टता के आरोप को भी वे उसका सही मूल्यांकन नहीं मानते। कभी-कभी कवि का अपनी अनुभूति के साथ पूर्ण सामंजस्य न हो पाने के कारण भले ही ऐसा हुआ हो कि वहाँ "अभिव्यक्ति विशृंखल हो गई हो, शब्दों का चुनाव ठीक न हुआ हो, हृदय से उसका स्पर्श न होकर मस्तिष्क से ही मेल हो गया हो परन्तु सिद्धान्त से ऐसा रूप छायावाद का ठीक नहीं कि जो कुछ अस्पष्ट, छायामात्र हो, वास्तविकता का स्पर्श न हो, वही छायावाद है।"[28] इसी प्रकार छायावाद को प्रकृति काव्य मानने से भी वे इन्कार करते है। यद्यपि प्रकृति का आलम्बन रूप में ग्रहण तथा अपनी अनुभूति के साथ प्रकृति का समन्वय अवश्य इसमें होता है किन्तु फिर भी छायावाद इससे भिन्न है। जयशंकर प्रसाद लिखते हैं कि— "छाया भारतीय दृष्टि से अनुभूति और अभिव्यक्ति की भंगिमा पर अधिक निर्भर करती है। ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता, सौन्दर्यमय प्रतीक विधान तथा उपचारवक्रता के साथ स्वानुभूति की विवृत्ति छायावाद की विशेषताएँ हैं।"[29]

छायावाद की रामचन्द्र शुक्ल द्वारा की गई व्याख्या से सुमित्रानन्दन पंत असहमत थे उनका मानना था कि 'छायावाद को जिस बाहरी दृष्टि से शुक्ल जी देख सके उसमें तथ्यों का आग्रह भले ही हो पर वह इतनी सीमित दृष्टि थी कि उसमें अर्द्धसत्य क्या सत्य का छिलका ही देखने को मिलता है।'[30] पंत ने इसका प्रधानकारण उस समय तक आलोचनाके विकसित मानदण्डों का अभाव होना माना है। छायावाद पर लगाए गए रहस्यवाद के आरोप को वे निराधार मानते हैं क्योंकि यह रहस्य भावना मध्यकालीन रहस्यभावना से भिन्न है। मध्यकालीन कवि आत्मब्रह्म तथा आत्म परिष्कार की खोज में संलग्न थे, वहीं छायावादी कवि विश्व आत्मा तथा विश्वजीवन की खोज में संलग्न थे। यह सच है कि छायावादी कविताओं पर कबीर आदि मध्ययुगीन कवियों की काव्यवस्तु का तथा उसकी अभिव्यंजना कला पर रवीन्द्रनाथ की कविताओं का प्रभाव था पर उसका कारण यह था कि ये प्रभाव उस युग में चारों ओर छाए हुए थे। अतः इन कवियों की रचनाओं में उनका आनास्वाभाविक था। लेकिन बंधी-बंधाई लीक परचलने वाले आलोचकों को यह एकदम नई वस्तु लगी और इन्होंने प्रचलित परम्परा के साथ इनका सामंजस्य दिखाने के लिए मध्ययुगीन रहस्यवाद से जोड़ दिया। पन्त छायावाद के अन्तर्गत रहस्यवाद के प्रभाव को स्वीकार करते हैं, पर वे लिखते हैं कि - "वह रहस्यभावना मध्ययुगीन संतों की सी निषेध पोषित, जीवन रस वंचित, आत्मा या ब्रह्म के अस्पष्ट स्पर्श की अतीन्द्रिय अनुभूति न होकर नये विश्वजीवन तथा विश्वचैतन्य की खोज तथा जिज्ञासा की भावानुभूति रही।"[32] इसी प्रकार पंत स्थूल के प्रति सूक्ष्म के विद्रोह को भी छायावाद की एक अस्पष्ट तथा एकांगी परिभाषा मानते हैं। यदि सूक्ष्म का अर्थ अभिव्यंजना के वैचित्य से है तो वह सूक्ष्म न होकर पूर्ण है। यदि सूक्ष्म का संबंध भावतत्व से है तो वह स्थूल का सूक्ष्म में रूपान्तर है। वास्तव में छायावाद स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह न होकर नये मूल्य की प्रतिष्ठा करना है। 'मध्यकालीन सामन्ती स्थूल का परिष्कार तो पुनर्जागरण काल में ही प्रारम्भ हो गया था, जो छायावाद की राष्ट्रीय चेतना से प्रभावित कविताओं से और भी परिपुष्ट हो गया था पर प्रमुख रूप से वह द्विवेदी युगीन पौराणिक मान्यताओं, आदर्शों तथा परम्परागत कलाबोध से समन्वित विषयवस्तु से पृथक एक नवीन विश्वबोध तथा मानवमूल्य से प्रेरित नयी भाववस्तु को काव्यरूप में उपस्थित करने का प्रयास करता है। वे लिखते हैं कि—'इस प्रकार स्थूल के प्रति सूक्ष्म के विद्रोह से अधिक आग्रह छायावाद में नवीन जीवन सौन्दर्य के मूल्य तथा भाव-सम्पद् की स्थापना के प्रति रहा है।'[32] छायावाद पर प्रकृति का मानवीकरण रहस्यवाद नहीं वरन् आज का वैज्ञानिक दृष्टिकोण है जिसमें प्रकृति को चेतन माना गया है। छायावाद पर लगाए गए कल्पना बाहुल्य के आरोप को पंत अस्वीकार करते हैं क्योंकि कोई भी महत्वपूर्ण एवं व्यापक अनुभूति कल्पना प्रधान ही होती है।

महादेवी ने भी छायावाद के रहस्यवाद को धर्म के अध्यात्म से अधिक दर्शन के ब्रह्म का ऋणी माना

है। बौद्धिक चेतना से समन्वित कवि ने जीवन की अखण्डता का अनुभव किया। हृदयगत भावों के साथ उसने प्रकृति में चारों ओर बिखरी हुई सौन्दर्य सत्ता की रहस्यमयी अनुभूति ग्रहण की और वे लिखती हैं कि— "दोनों के साथ स्वानुभूत दुखों को मिलाकर एक ऐसी काव्य सृष्टि उपस्थित कर दी, जो प्रकृतिवाद, हृदयवाद, अध्यात्मवाद, रहस्यवाद, छायावाद आदि अनेक नामों का भार संभाल सकी। [33] महादेवी छायावाद पर प्रकृति के अत्यधिक प्रभाव को भी प्राचीन परम्परा से जोड़ती हैं। प्राचीनकाल से ही प्रकृति मानव की चिरसहचरी रही है। इसी कारण मनुष्य को प्रकृति अपने दुख में दुखी और सुख मे सुखी जान पड़ती है। छायावाद में प्रकृति ने और भी विराट रूप प्राप्त कर लिया वे छायावाद नामक अपने निबन्ध में लिखती हैं कि— 'छायावाद की प्रकृति घट, कूप आदि में भरे जल की एकरूपता के समान अनेक रूपों में प्रकट एक महाप्राण बन गयी, अतः अब मनुष्य के 'अश्रु' मेघ के जलकण और पृथ्वी के ओसबिन्दुओं का एक ही कारण, एक ही मूल्य है।[34] छायावाद पर अक्सर यह आरोप लगाया गया है कि जब देश पर संकट के बादल दाए हुए थे उस समय ये कवि कल्पना के भावलोक में विचरण कर रहे थे। महादेवी इस आरोप को उचित नहीं मानती क्योंकि सभी प्रमुख छायावादी कवियों की रचनाओं में राष्ट्रीयता को और समसामयिक समस्याओं को वाणी मिली है। चाहे निराला का 'भारति जय विजय करे' अथवा प्रसाद का 'हिमाद्रि तुंग शृंग से' जैसे राष्ट्रीय उद्बोधन से सम्बंधित गीत हों अथवा स्वयं महादेवी का 'कह दे माँ अब क्या देखूँ,' जैसा सामयिक परिस्थितियों को अंकित करने वाला मार्मिक गीत हो। महादेवी लिखती हैं कि 'सामाजिक आधार पर 'वह दीपशिखा-सी शान्त, भाव में लीन' में,तपपूत वैधव्य का जो चित्र है, वह अपनी दिव्य लौकिकता में अकेला है।"[35] महादेवी छायावाद की एक अन्य व्याख्या 'स्थूल के विरुद्ध सूक्ष्म का विद्रोह' को छायावाद का उचित मूल्यांकन नहीं मानती क्योंकि सूक्ष्म की सत्ता स्थूल से बाहर कहीं नहीं है। छायावाद पर लगाए गए पलायनवृत्ति के आरोप को महादेवी यथार्थ से पलायन नहीं, वरन् यथार्थ की पूर्ति के रूप में ग्रहण करती हैं। मानव स्वभाव की प्रारम्भ से ही यह विशेषता रही है कि जिस वस्तु की अतिशयता उसके जीवन में होती है, उसके विरोधी पक्ष की ओर वह अवश्य ही आकृष्ट रहता है। इसलिए महादेवी लिखती है कि -'तब हम कैसे कह सकते हैं कि केवल संघर्षमय यथार्थ जीवन से पलायन के लिए ही, उस वर्ग के कवियों ने सूक्ष्म भावजगत को अपनाया।[36] इस प्रकार महादेवी ने ठोस तर्को के माध्यम से छायावाद के सम्बंध में की जाने वाली आलोचनाओं को शान्त करने का सफल प्रयास किया।

आचार्य नन्ददुलारे बाजपेई छायावाद को भक्तिकाल के समकक्ष रखते है। जिस प्रकार भक्ति काव्य मध्ययुगीन जीवन की अभिव्यक्ति है, उसी प्रकार छायावाद आधुनिक काल के जीवन की अभिव्यक्ति है। नन्ददुलारे बाजपेई दोनों में एक मौलिक अन्तर भी मानते हैं जहाँ भक्तिकाव्य में लौकिक और व्यावहारिक पक्षों

की उपेक्षा की गई है वहीं छायावाद में प्राकृतिक, सामाजिक पहलुओं तथा समसामयिक परिस्थितियों का ही चित्रण किया गया है। छायावाद पर लगाए गए समाज निरपेक्षता के आरोप को नन्ददुलारे बाजपेई पूर्णतया अस्वीकार करते हैं क्योंकि छायावादी कवि भी लगभग उन्हीं सामाजिक परिस्थितियों के बीच काम करता है और उन्हीं शक्तियों से परिचालित होता है, जिनके बीच कोई भी नया रचनाकार रहता है। वे लिखते हैं कि— 'जहाँ तक साहित्य के भावों और कल्पनाओं का प्रश्न है, उनमें ऐसी ताजगी है और ऐसी परिष्कृति है जैसी ऊँचे काव्य में ही पाई जा सकती है।'[37] तत्कालीन पत्र पत्रिकाओं के माध्यम से छायावाद पर लगाये गए इन आरोपों का, कि छायावादी कवि सामाजिक परिवर्तन के क्रम से अपरिचित है, उन्हें इस परिवर्तन के बीच अपने कर्तव्य का ज्ञान नहीं है और उसका सम्पूर्ण जीवनदर्शन ही काल्पनिक और ऐकान्तिक है, नन्ददुलारे बाजपेई का जवाब यह है कि भले ही छायावादी कवि मार्क्सवादी निर्देशों से अपरिचित हो, पर वे अपने समाज की परिस्थितियों से प्रेरणा अवश्य ग्रहण करते हैं। नन्ददुलारे बाजपेई लिखते हैं कि— 'जिस हवा में वे साँस ले रहे हैं उसकी उपेक्षा वे कर ही कैसे सकते हैं ? रही कर्तव्य की बात। कर्तव्य में भी वे किसी दूसरे साहित्यिक वर्ग से पिछड़े हुए हैं यह कहने के लिए साधारण से अधिक धृष्टता जरूरी होगी।'[38]

रामस्वरूप चतुर्वेदी ने छायावाद को आधुनिक संदर्भों से जोड़ते हुए उसके प्रति एक नई दृष्टि विकसित की है जिसमें छायावाद को मूलतः शक्तिकाव्य के रूप व्याख्यायित किया गया है। यह छायावाद की एक नई व्याख्या है और छायावादी कविता की विभिन्न आलोचकों द्वारा की जा रही परम्परागत आलोचना को एक नये दृष्टिकोण से देखने का प्रयास है। रामस्वरूप चतुर्वेदी प्रारम्भिक छायावादी काव्य में तो प्रकृति की प्रधानता मानते हैं, लेकिन बाद में इन कविताओं में मानवीय जीवन और उसकी विविध जटिल भावभूमियों के समावेश से मनुष्य और उसके आसपास का सामाजिक परिवेश का तनाव मुख्य हो जाता है। छायावादी कविता पर आए बंग प्रभाव का कारण वे तत्कालीन संस्कृति के प्रवाह को मानते है लेकिन उसके मूल में पुनर्जागरण चेतना प्रमुख है। वे लिखते है कि- 'रवीन्द्रनाथ का काव्य और 'गीताजंलि' जिस वातावरण का निर्माण करते हैं, वह हिन्दी के छायावादी काव्य संसार का एक अंश मात्र है; उसके केन्द्र में तो शक्तिचेतना का वह उत्स है जिसने भारतीय पुनर्जागरण को परिचालित किया था और जो फिर क्रमशः साहित्य के सूक्ष्म स्तरों पर उन्मुक्त हुआ'।[39] छायावाद की प्रसाद द्वारा की गई व्याख्या से वे सन्तुष्ट हैं क्योंकि उन्होंने ही सर्वप्रथम 'छाया' के प्रभाव, सूक्ष्म और अस्पष्ट जैसे अर्थों को व्याख्यायित करते हुए उसे प्रकृति काव्य से अलग करके छायावाद की संरचना में चमक और कांति पर बल दिया। छायावाद अपनी अर्थप्रक्रिया के अन्तर्गत मानवव्यक्तित्व को (गहन) स्तरों पर समृद्ध करता है। इस काल की प्रवृत्तियों का चरमोत्कृष्ट विकास 'कामायनी' में है जो सर्जनात्मक मानवीय संस्कृति के विकास का आख्यान है। इसमें वर्तमान संकट की ओर

दृष्टि डालने के साथ ही उससे बचने के लिए शक्ति के नियोजन का प्रस्ताव भी समाहित है। 'राम की शक्तिपूजा' में जाम्बवान द्वारा 'शक्ति की मौलिक कल्पना' करने की सलाह तत्कालीन सन्दर्भों में राष्ट्रीय नेताओं द्वारा असहयोग आन्दोलन की विफलता के बाद शक्ति को नियोजित करने के लिए है क्योंकि शक्ति तो अपने अन्दर ही है, उसे तो केवल जागृत और विकसित करने की आवश्यकता है। वे लिखते हैं कि- 'शताब्दियों से पराधीन देश को इससे बड़ी और सार्थक दृष्टि कोई नहीं दे सकता। यहाँ राम जितने आने लिए हैं, उतने ही सामूहिक राष्ट्रीय मन के प्रतीक है और उतने ही स्वयं कवि-व्यक्तित्व के। ये कई अर्थस्तर एक दूसरे से टकराकर मानवीय आत्म-शक्ति का एक विराट आख्यान प्रस्तुत करते हैं।'[40] रामस्वरूप चतुर्वेदी छायावादी कवियों के काव्य व्यक्तित्व को भक्तिकालीन कवियों के काव्य-व्यक्तित्व जितना बड़ा मानते हैं। भक्तिकाव्य में संन्यास, वैराग्य, तपस्या और परलोकवाद में आस्था जैसे मूल्यों का चित्रण है वहीं छायावादी काव्य में ऐहिक जीवन, इहलोक और मानव शरीर के प्रति आस्था जैसे आधुनिक मूल्यों का चित्रण प्रधानतया किया गया है। छायावादी काव्य में निष्काम कर्म के स्थान पर कर्म और भोग का समन्वय किया गया है। वे लिखते हैं कि- 'कबीर, सूर, जायसी, तुलसी भक्तिकाल के अन्तर्गत संसार का निषेध करके परमतत्व की ओर मन को ले जाने का उपक्रम करते हैं। छायावाद के कवि इस संसार को पूरी तरह सकार के उसे परमतत्व से अभिन्न देखते हैं। हिन्दी मानसिकता की विश्वदृष्टि पुनर्जागरण के संक्रमण में जैसे पूरी तरह घूम गई हो।[41] इस प्रकार छायावाद, जिसे इन्द्रियातीत अनुभव और कल्पना लोक से जुड़ा हुआ समझा जाता था, रामस्वरूप चतुर्वेदी ने उसे नये सिरे से समझा और छायावाद में शरीर और संसार की महत्ता को प्रतिष्ठा प्रदान की। लंबी कविताओं में ही नहीं वरन् छोटे-छोटे गीतों मे भी विरह, प्रेम और आनन्द के साथ सर्वत्र जागरण की चेतना स्पंदित हो रही है। वे लिखते हैं कि- 'इस तरह अपने व्यक्तिगत प्रणय और राष्ट्रप्रेम की अनुभूति में और उनके संश्लेष में छायावाद मूलतः शक्तिकाव्य है।[42]

इस विवेचन से स्पष्ट है कि छायावाद पर निरन्तर किये जा रहे व्यंग प्रहार से क्षुब्ध होकर समर्थक कवियों ने अपने अपर्युक्त तर्को से उस व्यंग्य प्रहार को शान्त करने का प्रयत्न किया। प्रारम्भ से ही छायावाद को रहस्यवाद सिद्ध करने की चेष्टा आलोचकों द्वारा की गई। उसे मौलिक न मानकर बाहर से उधार लिया हुआ माना गया। सभी ने छायावाद का सम्बन्ध अज्ञात, अव्यक्त, असीम जगत से स्थापित किया और समसामयिक समस्याओं से विमुख घोषित किया। लेकिन समर्थक कवि अपने प्रयास से छायावाद को कल्पना जगत से हटाकर यथार्थ की ठोस भावभूमि पर ले आने में सफल रहे। उसका सम्बन्ध देश की ज्वलन्त समस्याओं से जोड़ा और यह स्पष्ट किया कि इन कविताओं में देश में छाई हुई निराशा को दूर करके उसके स्थान पर आशा का सन्देश भी समाहित है। छायावादी कवियों ने उपेक्षित, दलित और निम्न जाति का

आर्न्तक्रन्दन भी सुना और उस क्रन्दन की करुण पुकार को अपनी कविताओं में मुखर अभिव्यक्ति भी दी। निश्चय ही, छायावाद पूरी तरह से समसामयिक है।

जिस प्रकार छायावाद की शुरुआत विवाद के साथ हुई उसी प्रकार उसकी समाप्ति की उद्घोषणा भी विवादों से मुक्त नहीं रही। 'कामायनी' जैसे महाकाव्य, 'राम की शक्ति पूजा' और 'सरोजस्मृति' तथा 'तुलसीदास' जैसी लम्बी कविताओं की रचना के बाद छायावाद में विद्यमान शक्ति को चुका हुआ मान लिया गया। छायावाद के प्रमुख कवियों ने स्वयं ही छायावाद के अन्त की सूचना दी। प्रमुख कवियों में केवल प्रसाद ही एकमात्र ऐसे कवि थे जिनकी प्रारम्भिक कविताओं में छायावादी प्रवृत्तियाँ शिशु रूप में थी और जिनकी अन्तिम रचना कामायनी में वही छायावादी प्रवृत्तियाँ अपनी प्रौढ़ता को प्राप्त करती है। सुमित्रानंदन पन्त और निराला छायावाद का पथ छोड़कर प्रगतिवाद और जनोन्मुख रास्ता स्वीकार कर लेते हैं। महादेवी वर्मा तो छायावाद की समाप्ति के साथ अपनी काव्यगत रचनाओं से विमुख होकर पूर्णतया गद्य-क्षेत्र की ओर मुड़ जाती हैं और अपना श्रेष्ठतम् गद्य साहित्य को देती हैं। पन्त ने छायावाद का अन्त 'युगान्त' जैसी काव्य रचना से किया। उन्होंने स्वीकार किया-'छायावाद इसलिए अधिक नहीं रहा कि उसके पास भविष्य के लिए उपयोगी, नवीन आदर्शों का प्रकाश, नवीन भावना का सौन्दर्यबोध और नवीन विचारों का रस नहीं था।'[43] यद्यपि छायावादी काव्य द्विवेदीयुगीन काव्य प्रवृत्तियों की तुलना में आधुनिक था लेकिन वह आगे आने वाले नये युग की विचारधारा के साथ सामंजस्य नही बिठा सका। इसलिए 'एक ओर वह निगूढ़, रहस्यात्मक, भाव प्रधान और वैयक्तिक हो गया और दूसरी ओर केवल टेकनीक और आभरण मात्र रह गया'।[44] यद्यपि प्रारम्भ में तो पन्त ने छायावाद पर आलोचकों द्वारा लगाए जा रहे आरोपों का उचित उत्तर दिया लेकिन बाद में स्वयं उनकी विचारधारा में ही परिवर्तन हो गया और उनकी काव्यगत प्रवृत्तियों का रूपान्तरण प्रगतिवाद में हो गया। कालान्तर में महादेवी ने भी छायावाद में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का अभाव पाया और उन्होंने भी छायावाद को अपूर्ण घोषित किया। वे लिखती हैं कि— 'छायावाद के कवि को एक नए सौन्दर्य लोक में ही वह भावात्मक दृष्टिकोण मिला, जीवन में नही, इसी से वह अपूर्ण है।'[45] इसके बाद उस समय की पत्रपत्रिकाओं में छायावाद का अन्त मान लिया गया और इसकी अवनति के कारण गिनाए जाने लगे। डा0 देवराज ने तो 'छायावाद का पतन' शीर्षक से एक पुस्तक ही लिख डाली। उन्होंने छायावाद के पतन के कारणों में शब्दमोह, चित्रमोह, कल्पना-मोह, केन्द्रपगामी व्यंजना प्रवृत्ति, असामंजस्यः विचारगत और रागात्मक, वास्तविकता पर बलात्कार, मूड की कविता तथा लोकसंवेदना का तिरस्कार की गणना भी है। इलाचन्द्र जोशी ने भी विशाल भारत में 1940 में एक लेख छपवाया, जिसका शीर्षक था-'छायावादी कविता का विनाश क्यों हुआ?' जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है कि इसमें यह मान लिया गया है कि छायावाद समाप्त हो चुका है। वे

लिखते हैं कि- 'तीन-चार वर्ष पहले ही 'युगान्त' हो चुका है और छायावादी कविता का मृत शरीर पड़ा-पड़ा सड़ रहा है, यद्यपि उसकी प्रेत-आत्मा (प्रेतात्मा) कभी-कभी अपनी झलक दिखाकर उसके प्रेमियों को मोह में डाल जाती है।'[46] इलाचन्द्र जोशी ने छायावादी कविता की उत्पत्ति नपुंसकता में मानी, जिसका अहमिका और विलासिता के अस्वास्थ्यकर रस से पोषण हुआ और उच्छृंखलता के साथ जिसका अन्त प्रगतिवाद में हो गया। इलाचन्द्र जोशी छायावादी कविताओं में प्राणों की गहरी अनुभूति और जीवन की मार्मिक वास्तविकता के अनुभवों का पूरी तरह से अभाव पाते हैं। इलाचन्द्र जोशी ने अपने समर्थन में पंत को उद्धृत किया है- वे लिखते हैं कि— 'पंतजी ने अपने युगान्त द्वारा इस बात की एक प्रकार से स्पष्ट घोषणा कर दी है कि छायावाद की कोटि की कविता का युग अब बीत चला। युगान्त के कवरपृष्ठ में छायावाद के मृतशरीर का चित्र अंकित है। अब सब साहित्यिकों को चाहिए कि उस लाश को, जो अभी तक पड़ी हुई है और सारे वातावरण को अपनी उत्कट दुर्गन्ध से गन्दा कर रही है, शीघ्र हा जला दें। छायावाद की मृत्यु के लिए रोने और उसके मृत शरीर को घेरे रहने से अब कोई लाभ नहीं है।'[47] इलाचन्द्र जोशी ने भी छायावाद का पर्यवसान प्रगतिवाद में माना लेकिन वे इस प्रगतिवाद से भी संतुष्ट नहीं हैं क्योंकि वह छायावाद से भी अधिक उच्छृंखल है। वे लिखते हैं कि- 'रोना तो अब इस बात का है कि छायावाद के बाद जो उसका वंशधर (प्रगतिवाद) साहित्य की राजगद्दी पर आसीन हुआ है, वह अपने बाप से कई गुना अधिक जालिम, अत्याचारी और उच्छृंखल निकला है।[48]

इस प्रकार छायावाद की मृत्यु की उद्घोषणा के बाद अब छायावाद को जीवित सिद्ध करने के प्रयत्न भी प्रारम्भ हो गए और कामेश्वर शर्मा ने अपने लेख 'छायावाद जिन्दा है' में छायावाद को जीवित माना । उन्होंने अपने लेख को तीन भागों में बांटा है- 1. छायावाद जिन्दा है तो क्यों? 2. छायावाद जिन्दा है तो कैसे? 3. छायावाद जिन्दा है तो कहाँ ? इसमें प्रथम प्रश्न का उत्तर है कि छायावाद प्रगतिवाद के अन्तर्गत विद्यमान, उसकी छत्रछाया मे पलकर आज भी जीवित है। दूसरे प्रश्न के उत्तर में उन्होंने छायावाद की कुछ महत्वपूर्ण विशेषताओं की ओर संकेत किया है और प्रकृति में विश्वात्मा की सत्ता का अनुभव, उसका शब्द चयन, उसकी बारीकी और उसमें विद्यमान कल्पना वैभव और आत्मनिवेदन के बीच उसे जिन्दा माना है। तीसरे प्रश्न का उत्तर है कि 'प्रत्येक मानव के हृदय में बैठा हुआ स्वच्छंदतावाद, उसकी प्रत्येक धड़कन के साथ छलक उठने वाली भावुकता, उसकी धमनियों के रक्त में विहार करने वाली संस्कृति के जीवाणु ही छायावाद के निवास स्थान हैं।' [49]

छायावाद को अपने जन्म से ही उपेक्षित जीवन बिताना पड़ा। यद्यपि छायावाद ने अपने जन्म के

बाद शीघ्र ही अपने अन्दर विद्यमान नए-नए भावों, विचारों, नई काव्यवस्तु, नई भाषा, नए शिल्प, नए छन्द, नए रूप आदि के द्वारा तत्कालीन साहित्य जगत का ध्यान अपनी ओर खींचा लेकिन परम्परागत काव्यगत मान्यताओं के साथ संगति न बिठा सकने के कारण उसकी तीव्र आलोचना हुई। परन्तु इस आलोचना के कारण उठे हुए वाद-विवाद के कारण उसका स्वरूप निखरता ही गया और उसने समसामयिक परिस्थितियों से साम्य भी स्थापित किया। अनेक पत्रपत्रिकाओं में छायावादी कवियों के कार्टून छापे गए। छायावादी कविता पर हास्यव्यंग्य लिखे गए जैसे जुलाई 1930 की 'सरस्वती' की पृष्ठ संख्या -109 में 'हास्य और विनोद' शीर्षक के अन्तर्गत छायावादी कविता का मजाक उड़ाया गया है। इसी प्रकार 'चाँद' में भी छायावादी कविता पर एक पैरोडी 'कविकुल-कुमुद-कलाधर-कविवर 'श्री धोंधाराम' के नाम से छपी है—

आह! वह पीड़ा का संसार!
किस अनन्त की ओर चल पड़ा लिए-
वेदना-भार!
छेड़ कर मेरे हृततन्ती के तारों को-
विकाल उच्छवासों की आँधी में,
निर्दय उस निर्मम ने,
कानों में पहुँची नहीं,
नीरवध्वनि—मूक भाषा का
वह शून्य स्तब्ध स्वर!
हाय मैं पुकारता ही रह गया!!!
मेरा वह सोने का संसार!
शून्य कुटी में जिसे सजाया था मैंने
आँसू की लड़ियों से!
उसे उड़ा ले गया झण्झावात!

अब मैं क्या करूँ?

क्या खाऊँ, क्या पिऊँ?

क्या ले परदेश जाऊँ?[50]

छायावाद को लेकर किए गए इस विश्लेषण से स्पष्ट है कि उसके जन्म से ही विवादों की एक अन्तहीन श्रृंखला जारी है, जिस पर बहस के माध्यम से निरन्तर संवाद स्थापित करने की कोशिश की जा रही है। यद्यपि छायावाद नाम द्विवेदीयुगीन आलोचकों द्वारा उपहास के रूप में दिया गया था लेकिन इस नाम ने तत्कालीन साहित्यजगत में अपनी सर्वश्रेष्ठता सिद्ध की। प्रारम्भिक आलोचकों ने इसे सीधे-सीधे टैगोर की कविता का अनुकरण माना और छायावाद का समावेश रहस्यवाद में कर दिया। यदि इसी समय प्रसाद, पन्त और महादेवी छायावाद के समर्थन में उठ खड़े नहीं होते तो छायावाद निश्चय ही उस महत्ता से वंचित रह जाता, जो उसे आज प्राप्त है और जो आगे आने वाले काव्यान्दोलनों का आधार बनता है। जयशंकर प्रसाद ने सर्वप्रथम छायावाद का सटीक अर्थ प्रस्तुत किया और रहस्यवाद की परम्परा को पूरी तरह से भारतीय माना। यद्यपि प्रसाद द्वारा छायावाद शब्द की, की गई व्याख्या से सभी लोग सन्तुष्ट हो गए हों, ऐसा नहीं था लेकिन उनके द्वारा की गई छाया शब्द की व्याख्या ने बिल्कुल ठीक अर्थ की व्यंजना अवश्य की, इसमें सन्देह नहीं। पन्त ने भी अपनी पुस्तक 'पल्लव' की भूमिका में छायावाद और उसकी भाषा खड़ी बोली को लेकर उठायी गयी समस्याओं का समाधान प्रस्तुत किया। महादेवी ने भी छायावाद को पूर्णतया भारतीय परम्परा का स्वाभाविक विकास माना। छायावाद की लगभग सभी प्रवृत्तियों का मूल उद्गम वेद, उपनिषद और संस्कृत साहित्य में मिल जाता है। छायावाद का अभिव्यंजना शिल्प भी, जो उस समय आलोचकों को चमत्कृत कर रहा था, उसके बीज भी रीतिमुक्त कवियों जैसे घनानंद, ठाकुर आदि की कविताओं में मिल जाते हैं।

तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं को पलटने पर आज यह आश्चर्य होता है कि कैसे छायावादी आलोचना-प्रत्यालोचना के उस दौर में स्थिर रह सके। पंत और महादेवी को यदि छोड़ भी दें, जिनके पास कम से कम जीवनयापन के साधन तो सुलभ थे लेकिन 'कामायनी' जैसे महाकाव्य की रचना करने वाले प्रसाद और 'राम की शक्ति पूजा' तथा 'सरोजस्मृति' जैसा विश्वसाहित्य में एकमात्र गीत लिखने वाले निराला की मनःस्थिति को समझा जा सकता है। इन कवियों का संघर्ष दोहरा था। एक ओर तो कविता के परम्परागत ढाँचे को तोड़कर अपनी कविता को प्रतिष्ठा दिलवाना और दूसरी ओर जीवनयापन के लिए अर्थ की समस्या से जूझना। निराला छायावाद में पदार्पण 1916 में लिखी कविता 'जूही की कली' से करते हैं-

"विजन वन वल्लरी पर,

सोती थी सुहाग-भरी-स्नेह-स्वप्न-मग्न"[51]

और 'सरोज स्मृति,' जिसका प्रकाशन 1935 में होता है, में स्वीकार करते हैं-

'अस्तु, मैं उपार्जन को अक्षम

कर नहीं सका पोषण उत्तम,' [52]

जयशंकर प्रसाद भी जीवन भर आर्थिक कठिनाइयों से जूझते रहते हैं। महादेवी वर्मा का संघर्ष बिल्कुल भिन्न था। वह वेद और संस्कृत साहित्य का अध्ययन करना चाहती थी लेकिन स्त्रियों का वेदाध्ययन तत्कालीन समाज को स्वीकार्य नहीं था। महादेवी लिखती है कि, "कल्पना कीजिए, कितना कष्ट, कितना संघर्ष झेला होगा, लेकिन संघर्ष ने मुझे कभी पराजित नहीं किया। हार नहीं मानी मैंने।"[53] "हार नहीं मानी मैंने ' यह पंक्ति समस्त छायावादी कवियों पर पूर्णतया चरितार्थ होती है। यह हार न मानने की ही प्रवृत्ति थी जो आलोचना-प्रत्यालोचना के उस दौर में उन्हें शक्ति देती है कि वह अपनी पुस्तकों में लम्बी-लम्बी भूमिकाएँ लिखकर छायावाद को स्थापित करें अथवा आलोचकों द्वारा उठाए गए प्रश्नों का समाधान करें। अन्त में छायावाद के सुधी आलोचक रामचन्द्र शुक्ल भी यह मानने के लिए विवश हो जाते हैं कि -"छायावाद की शाखा के भीतर धीर-धीरे काव्यशैली का बहुत अच्छा विकास हुआ, इसमें सन्देह नहीं।"[54]

छायावाद की आलोचना के सन्दर्भ में हमने देखा कि प्रायः सभी आलोचक रामचन्द्र शुक्ल द्वारा की गई आलोचना को प्रमुख मानकर उसी का विस्तार करते रहे। कल्पना की बहुलता, रहस्यात्मक प्रवृत्ति, नाना अर्थभूमियों पर काव्य का प्रसार न होने को दोषों के रूप में गिनाया गया। सम्भवतः इसका प्रमुख कारण आलोचना के विकसित मानदण्डों का अभाव था। आधुनिक आलोचकों में रामस्वरूप चतुर्वेदी उसी सामग्री से छायावाद को एक नई दृष्टि से देखते हैं और उसे 'शक्ति काव्य' के रूप में प्रतिष्ठा दिलाते हैं तथा उसे भारतीय पुनर्जागरण की परम्परा से जोड़ते हैं।

छायावाद का उद्भव, नामकरण, उसका अर्थ और प्रवर्तक कवि जिस प्रकार विवाद के घेरे में रहे, उसी प्रकार उस के अंत की उद्घोषणा भी पत्रपत्रिकाओं में चर्चा का विषय बनी रही। लेकिन एक प्रश्न विचारणीय है कि कोई भी प्रवृत्ति, वाद अथवा विचार अचानक प्रकट नहीं होता, वरन् वह परम्परा से ही निकलता है। परम्परा से कटकर वह कुछ समय तक तो आकृष्ट कर सकता है लेकिन इतनी प्रभूत मात्रा में साहित्य का सृजन परम्परा और अपनी संस्कृति से जुड़कर ही हो सकता है, जैसा कि छायावाद के प्रमुख कवि

स्पष्ट भी करते हैं। इसीलिए छायावाद का अंत करने और फिर अपने लेखों में उसे जीवित करने के आलोचकों द्वारा किए जा रहे प्रयास निरर्थक हैं। छायावाद एक विचार दर्शन है जो कुछ परिवर्तन के साथ आगामी काव्यान्दोलनों से जुड़ जाता है। चूँकि कविता अथवा साहित्यसृजन सामाजिक परिस्थितियों पर निर्भर करता है, इसलिए छायावाद का प्रगतिवाद में रूपान्तरण को उस समय की सामाजिक परिस्थितियों से जोड़कर देखना चाहिए। विश्व के पटल पर मार्क्सवाद और साम्यवाद का उदय, जिसमें एकमात्र मानव को ही प्रमुखता मिलती है और मनुष्य के हितों को समाज के साथ जोड़ दिया जाता है। इस विचारधारा का प्रभाव भारतीय साहित्यकारों पर भी पड़ता है और सन् 1936 में 'प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना होती है तथा छायावाद के प्रमुख कवि पंत और निराला स्वयं उस ओर झुक जाते हैं। महादेवी काव्यक्षेत्र में तो अवश्य छायावाद में ही सीमित रहती हैं। उन्होंने छायावाद से आगे आने के लिए किसी राह का निर्माण नहीं किया लेकिन वे गद्य क्षेत्र में उन्हीं प्रवृत्तियों को स्थान देती हैं जिन प्रवृत्तियों को पंत और निराला काव्य में प्रमुखता दे रहे थे। इस प्रकार प्रगतिवाद और उसके आगे आने वाले प्रयोगवाद की कविताओं में छायावाद की ही आत्मा समाई हुई है।

* * *

सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची

1. हिन्दी सहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, पृ0सं0 334
2. छायावाद की काव्य साधना, प्रो0 क्षेम एम0ए0, पृ0सं0-15
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, पृ0सं0-461
4. छायावाद, नामवर सिंह, पृ0सं0 12
5. सरस्वती, दिसम्बर 1921, पृ0सं0 338
6. आजकल के हिन्दी कवि और कविता, महावीर प्रसाद द्विवेदी पत्रिका-सरस्वती, पृ0सं0 526
7. हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, पृ0सं0 442
8. छायावाद, सं0 उदयभानु सिंह, पृ0सं0-95
9. अवन्तिका 'काव्यालोचनांक' 1954 पृ0सं0 190
10. छायावादः पुनर्मूल्यांकन, सुमित्रानंदन पंत, पृ0सं0 12
11. छायावादः पुनर्मूल्यांकन, सुमित्रानंदन पंत, पृ0सं0 14
12. साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 57
13. विचार और अनुभूति, डा0 नगेन्द्र, पृ0सं0 53
14. हिन्दी साहित्यः बीसवीं शताब्दी, नन्ददुलारे बाजपेई, पृ0सं0 174
15. देखा-परखा, इलाचन्द्र जोशी, पृ0सं0-22
16. आधुनिक कविता का मूल्यांकन, इन्द्रनाथ मदान, पृ0सं0-188
17. अवन्तिका 'काव्यालोचनांक' 1954, पृ0सं0 188
18. अवन्तिका 'काव्यालोचनांक' 1954, पृ0सं0 188
19. अवन्तिका 'काव्यालोचनांक' 1954, पृ0सं0 190
20. अवन्तिका 'काव्यालोचनांक' 1954, पृ0सं0 197
21. सरस्वती, भाग-28, संख्या-5 ले0 'आजकल के हिन्दी कवि और कविता' लेखक-महावीर प्रसाद द्विवेदी पृ0सं0 527

22. सरस्वती, भाग-28, संख्या-5 आजकल के हिन्दी कवि और कविता, पृ0सं0 533
23. हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, पृ0सं0 453
24. हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, पृ0सं0 453
25. हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, पृ0सं0 444
26. काव्य में रहस्यवाद 'चिन्तामणि -2', रामचन्द्र शुक्ल, पृ0सं0-79
27. काव्यकला तथा अन्य निबन्ध, जयशंकर प्रसाद, पृ0सं0 144
28. काव्यकला तथा अन्य निबन्ध, जयशंकर प्रसाद, पृ0सं0 148
29. काव्यकला तथा अन्य निबन्ध, जयशंकर प्रसाद, पृ0सं0 149
30. छायावादः पुनर्मूल्यांकन, सुमित्रानंदन पंत, पृ0सं0 14
31. छायावादः पुनर्मूल्यांकन, सुमित्रानंदन पंत, पृ0सं0 18
32. छायावादः पुनर्मूल्यांकन, सुमित्रानंदन पंत, पृ0सं0 26
33. साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध, महादेवी वर्मा पृ0सं0 58
34. साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध, महादेवी वर्मा पृ0सं0 58
35. साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध, महादेवी वर्मा पृ0सं0 61
36. साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध, महादेवी वर्मा पृ0सं0 65
37. छायावाद और रहस्यवाद, गंगाप्रसाद पाण्डेय, पृ0सं0-5
38. छायावाद और रहस्यवाद, गंगाप्रसाद पाण्डेय, पृ0सं0-12
39. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृ0सं0 129
40. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृ0सं0 131
41. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृ0सं0 133
42. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृ0सं0 135
43. आधुनिक कवि, पंत, पृ0सं0-11
44. आधुनिक कवि, पंत, पृ0सं0-12
45. आधुनिक कवि, महादेवी वर्मा, पृ0सं0-22
46. विशाल भारत, अक्टूबर, 1940, पृ0सं0 372

47. विशाल भारत, अक्टूबर, 1940, पृ0सं0 374

48. विशाल भारत, अक्टूबर, 1940, पृ0सं0 374

49. छायावाद और प्रगतिवाद, देवेन्द्रनाथ शर्मा, पृ0सं0 126

50. चाँद, जुलाई, 1931, पृ0सं0 318

51. परिमल, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, पृ0सं0 143

52. प्रसाद, निराला, पन्त, महादेवी की सर्वश्रेष्ठ रचनाएँ, प्रस्तुतकर्ता-वाचस्पति पाठक, पृ0सं0 148

53. महादेवी साहित्य समग्र-3, सं0 निर्मला जैन, पृ0सं0 411

54. हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, पृ0सं0 445

* * *

अध्याय-तृतीय

महादेवी के काव्य का विश्लेषणात्मक परिचय

●

1. भूमिका
2. महादेवी का काव्य क्षेत्र में प्रवेश
3. काव्य कृतियाँः परिचय
3.1. नीहार
3.2. रश्मि
3.3. नीरजा
3.4. सांध्यगीत
3.5. दीपशिखा
3.6. बंग-दर्शन
3.7. सप्तपर्णा
3.8. हिमालय

छायावादी कविता पर हमारे देश के राष्ट्रीय जनजागरण का तो प्रभाव पड़ा ही, साथ ही अंग्रेजों के शासन के दौरान पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति के साथ सम्पर्क ने भी छायावाद की अलख को जगाने में योगदान दिया। जिस प्रकार राष्ट्रीय आन्दोलन और जन-जागृति ने हमारे बाह्य जीवन और कर्म को संचालित किया, उसी प्रकार उस समय प्रवाहित स्वच्छन्तदतावादी धारा ने आन्तरिक भावों की अभिव्यक्ति पर बल दिया। अन्य विकसित देशों के साथ भी आवागमन के साधनों के सुलभ हो जाने के कारण मध्यवर्गीय समाज में व्यक्ति की जड़ हो चुकी स्थिति में भी बदलाव आया। इससे पूर्व मध्यवर्गीय व्यक्ति के केवल कर्तव्यों की ही बात होती थी, लेकिन अब उस व्यक्ति के अधिकारों का भी प्रश्न उठने लगा और इस प्रकार साहित्य में व्यक्तिवाद की प्रबलता और राष्ट्रीय चेतना का उदय लगभग साथ-साथ हुआ। शिवदान सिंह चौहान का मत है, "नई छायावादी कविता का व्यक्तित्वाद असामाजिक पथों पर न भटककर राष्ट्रीय नवजीवन की उदात्त आकांक्षा का गम्भीर मर्मवेदन लेकर मुखरित हुआ।"[1] इन छायावादी कवियों का व्यक्तिवाद निजी सुख दुखों से ऊपर उठकर जाति, वर्ग, वर्ण, देश और समाज के बन्धनों को तोड़ता हुआ विश्वबन्धुत्व और मानवतावाद के साथ भौतिक और आध्यात्मिक विकास की सम्भावनाओं को भी व्यक्त कर रहा था। इन उदात्त भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए इन कवियों ने प्रगीत को अपना माध्यम बनाया। इस प्रकार छायावादी कवियों का रुदन-क्रन्दन व्यक्तिगत होने के साथ-साथ पराधीन, रुढ़ियों से ग्रस्त लेकिन संघर्ष में लगे हुए भारतीय समाज का भी रुदन-क्रन्दन था। 'मैंने मैं शैली अपनाई' कविता में व्यक्त 'मैं' प्रत्येक भारतवासी का 'मैं' बन गया। इसीलिए कवि ने अपनी सूक्ष्म से सूक्ष्म भावानुभूतियों को व्यक्त करने के लिए लाक्षणिक भाषा और अप्रस्तुत योजना शैली को स्वीकार किया जिससे कविता में प्रयुक्त संकेत ओर प्रतीक सभी के लिए सम्प्रेषणीय बन सके। निराला की निम्न पंक्तियाँ सभी छायावादी कवियों द्वारा सूत्रवाक्य के रूप ग्रहण की जाने लगीं।

"मैंने मैं शैली अपनाई
देखा एक दुखी निज भाई

दुख की छाया पड़ी हृदय में
झट उमड़ वेदना आई।"[2]

इसमें निश्चय ही निजी सुख-दुखों के साथ-साथ 'अन्य व्यक्तियों के सुख-दुखों की अनुभूति की अभिव्यक्ति को वाणी मिली है।

हिन्दी साहित्य के परम्परा से चले आ रहे रूप को स्वीकार करने वाले आलोचक प्रारम्भ में तो प्रसाद, निराला और पंत की कविताओं की काव्यभूमि को सहन करते रहे लेकिन जब उन्होंने परम्परा प्रचलित मार्ग को छोड़कर नयी भाषा, नये शिल्प को छायावादी कविता के अन्तर्गत स्वीकार कर लिया तो रुढ़ि में बँधे हुए आलोचकों को यह स्वीकार नहीं हुआ ओर उन्होंने तत्कालीन पत्रिकाओं में इस कविता का जमकर विरोध करना शुरू कर दिया। जिसकी शुरुआत महावीर प्रसाद द्विवेदी ने की लेकिन बाद में रामचन्द्र शुक्ल भी विरोध करने वालों में सम्मिलित हो गये। यद्यपि उन्होंने बाद में स्वीकार किया—"छायावाद की शाखा के भीतर धीरे-धीरे काव्यशैली का बहुत अच्छा विकास हुआ, इसमें सन्देह नहीं। उसमें भावावेश की आकुल व्यंजना, लाक्षणिक वैचित्य, मूर्तप्रत्यक्षीकरण, भाषा की वक्रता, विरोध चमत्कार, कोमलपद विन्यास इत्यादि काव्य का स्वरूप संघटित करने वाली प्रचुर सामग्री दिखाई पड़ी।"[3] और इस प्रकार विरोध के बावजूद छायावादी कविता अपनी पहचान बनाती जा रही थी। शिवदान सिंह चौहान की टिप्पणी भी इस सम्बन्ध में ध्यान देने योग्य है—"छायावादी कविता के तथाकथित 'प्रेमगीत' वस्तुतः सामन्तकालीन रूढ़ि-जर्जर व्यवस्था, नैतिकता और मानव सम्बन्धों के विरुद्ध असन्तोष और विद्रोह के गीत हैं और मानव सम्बन्धों को अधिक व्यापक मानवीय आधार पर संगठित करने की युगीन आकांक्षा के प्रतिनिधि है।"[4]

इस पृष्ठभूमि के अन्तर्गत जब महादेवी वर्मा ने हिन्दी काव्य क्षेत्र में प्रवेश किया तब तक प्रसाद, निराला और पंत की रचनाओं के द्वारा छायावादी कविता गौरवपूर्ण स्थान पर अधिष्ठित हो चुकी थी। ये तीनों कवि अपने-अपने काव्यग्रन्थों और उन पर लिखी हुई भूमिकाओं के द्वारा छायावाद के व्याख्याता बन चुके थे। इस पृष्ठभूमि ने महादेवी की मनोरचना को निर्मित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। यद्यपि महादेवी ने काव्यरचना के प्रयास बालपन से ही प्रारम्भ कर दिये थे। छः सात वर्ष की आयु में ही माँ द्वारा गाये गये भजनों एवं सूरदास एवं मीराबाई के पदों ने उन्हें अपनी ओर आकृष्ट करना प्रारम्भ कर दिया था। माँ द्वारा शीतकाल में सुबह चार बजे उठकर ठाकुरजी को नहलाने की उन पर ऐसी प्रतिक्रिया हुई कि उन्होंने तुकमिलाई—

"माँ के ठाकुर जी भोले हैं
ठंडे पानी में नहलाती
ठंडा चंदन इन्हें लगाती
इनका भोग हमें दे जाती
फिर भी नहीं कभी बोले हैं
माँ के ठाकुर जी भोले हैं।"[5]

इस प्रकार तुक मिलाते हुए इनके कविता लिखने के बाल प्रयास जारी रहे। जो पंडित जी उन्हें पढ़ाने आते थे उन्होंने भी ब्रजभाषा में ही कविता लिखवानी शुरू कर दी। महादेवी प्रयाग आने तक ब्रजभाषा में ही कविता रचती रहीं। यद्यपि ब्रजभाषा में काव्यरचना करने पर भी वे उस भाषा के परम्परागत विषयों को स्वीकार नहीं करती हैं। वे अपनी उस समय की लिखी हुई एक कविता द्वारा इस बात को निम्न शब्दों में स्पष्ट भी करती हैं—"बाँधे मयूर वन के डोरने में हिंडोरन पर नित फूरियो" और आए हैं "शीतल मंद बयार तो अंक दुलार कबूलियो' और "भौर के गीतन पर तुम रीझियो तितली के नर्तन पर फिर भूलियो, फूल तुम्हें तब ही कह हैं, जब काँटन में धंसि के हँसि फूलिहो,' ये मेरे बहुत बचपन की कविता है।"[6] यह कविता ब्रजाभाषा में लिखी जाने वाली पारम्परिक कवताओं से किंचित भिन्न हैं। तुक मिलाने के साथ-साथ उन्होंने समस्यापूर्तियाँ प्रारम्भ कर दी और अपनी काव्य क्षमता को समर्थ बनाने का प्रयास करती रहीं। महादेवी स्वयं स्वीकार करती हैं—"उस समय की अवस्था को देखते हुए मुझे आश्चर्य होता है कि मैंने कैसे लिखा होगा। लेकिन लिखा है मैंने। भाषा उसकी ब्रज है किन्तु जो कहा है मैंने, वही आज तक कहती हूँ। आगे चलकर लगता है, वही रास्ता था, वही लक्ष्य था, वही नियति थी मेरी।"[7]

समस्यापूर्तियों का यह प्रयास प्रयाग आने तक चलता रहा, वे स्वयं स्वीकार करती हैं कि—"सुभद्राजी जब हंसने लगी तब ही समस्यापूर्ति समाप्त हुई। क्योंकि यहाँ कोई समस्यापूर्ति नहीं करता था।"[9] इसके पश्चात महादेवी ने खड़ी बोली में लिखना शुरू किया। प्रयाग में आकर उन्हें कुछ मुक्त वातावरण मिला और समसामयिक राष्ट्रीय जनजागरण से प्रभावित होकर उन्होंने अनेक कविताएँ लिखीं जो विद्यालय के वातावरण में खो जाने के लिए ही लिखी गई थी। इनमें 'भारतजननी भारतमाता', 'बेड़ी की झन-झन में वीणा की लय हो, सरिता सरोवर में बहता प्रलय हो', 'हे शृंगाररूपी अनुरागमयी भारत जननी भारतमाता', 'सिर देकर हमने आज खरीदी है ये ज्वाला' आदि गीत प्रमुख हैं। विद्याध्ययन को समाप्त करने के पश्चात जब महादेवी ने हिन्दी काव्य जगत में 'नीहार' के माध्यम से प्रवेश किया, तब छायावादी प्रवृत्तियाँ अपने पूर्ण उत्कर्ष काल में थीं और इनसे अप्रभावित रहना महादेवी के लिए आसान भी न था क्योंकि इसी वातावरण ने उनकी मानसिक संरचना की बनावट में योगदान दिया था। महादेवी के सभी काव्यग्रन्थ छायावादी प्रवृत्तियों को परिपुष्ट ही करते हैं। महादेवी का काव्य संसार छायावाद से शुरू होकर छायावाद में ही सीमित हो जाता है। इनमें जहाँ तक ओर वैयक्तिक सुखदुखों को राष्ट्रीय जनजागरण से जोड़कर प्रस्तुत किया गया है। वहीं दूसरी ओर तत्युगीन प्रवृत्ति के अनुसार वैयक्तिक भावों को अज्ञात, अव्यक्त प्रिय पर आरोपण करके रहस्यवाद की भी सृष्टि की गई है। छायावाद के सभी कवियों के समान प्रकृति महादेवी की भी चिर-सहचरी रही है।

महादेवी की जिन रचनाओं का अनुशीलन हम कर रह हैं। वे इसी पृष्ठभूमि की देन कहीं जा सकती हैं।

नीहार –

'नीहार' महादेवी की काव्ययात्रा का प्रथम पड़ाव है, जिसका प्रकाशन सन् 1930 में हुआ। 'नीहार' के अन्तर्गत सन् 1926 से सन् 1929 के मध्य लिखी गई कविताएँ संग्रहीत है। 'नीहार' के प्रकाशन द्वारा महादेवी ने हिन्दी साहित्य जगत में अपने पदार्पण की घोषणा की और जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानन्दन पन्त तथा सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला के बाद छायावाद की सशक्त उत्तराधिकारिणी होने के लिए अपनी दावेदारी पेश की, जिसे समस्त साहित्यिक जगत ने सहर्ष स्वीकार कर लिया। 'नीहार' की रचना के समय तक छायावाद और रहस्यवाद को लेकर साहित्य जगत में भ्रम की स्थिति बनी हुई थी। जिसका संकेत अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध द्वारा लिखे 'नीहार' के परिचय में मिलता है। वे लिखते हैं कि—"स्वयं छायावादी-कवि अब तक इस बात को निश्चित नहीं कर सके, कि वे अपनी नूतन प्रणाली की कविताओं को छायावाद कहें अथवा रहस्यवाद।"[9] इस समय तक काव्य क्षेत्र का प्रसार अनेक भावभूमियों में हो चुका था अतः उन सबका अन्तर्भाव केवल छायावाद और रहस्यवाद में नहीं हो सकता। यद्यपि इस समय तक छायावाद आलोचना का शिकार बना हुआ था लेकिन 1930 तक छायावाद में पाई जाने वाली स्निग्धता, मनोरमता और प्राञ्जलता के कारण इसे सहृदयों की स्वीकृति मिलना भी प्रारम्भ हो गई थी। जिसका प्रमाण द्विवेदीयुग के कवि हरिऔध द्वारा सर्वथा नवोदित कवयित्री महादेवी वर्मा की पुस्तक का परिचय लिखने में मिलता है। हरिऔध ने 'नीहार' को महादेवी का 'आदिम ग्रन्थ' मानते हुए भी यह स्वीकार करते हैं कि—"ग्रन्थ सर्वथा निर्दोष नहीं; किन्तु इसमें अनेक इतनी सजीव और सुन्दर पंक्तियाँ है; कि उनके मधुर प्रवाह में उधर दृष्टि जाती ही नहीं। प्रफुल्ल पाटल प्रसून में काँटे होते हैं, हों, किन्तु उनकी प्रफुल्लता और मनोरंजनकता ही मुग्धकारिता की सम्पत्ति है।......वास्तव में बात यह है कि ग्रन्थ की भावुकता और मार्मिकता उल्लेखनीय है, उसका कोमल शब्द-विन्यास भी अल्प आकर्षक नहीं।"[10] प्रियप्रवास जैसे महाकाव्य के रचयिता अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' द्वारा नीहार का परिचय लिखा जाना ही मानो भविष्य में छायावाद और छायावाद के अन्तर्गत महादेवी के स्थान को सुनिश्चित कर देता है। यद्यपि डा. भालचन्द्र तैलंग 'नीहार' को महादेवी का आदिग्रन्थ न मानकर प्रथमग्रन्थ मानना अधिक उचित समझते हैं। वे लिखते हैं कि—"छायावाद की भावभूमि, वैचारिक भूमि, नई भास्वर चेतना और उसका सांस्कृतिक परिवेश स्पष्ट सूचित करता है कि 'नीहार' को सुश्री महादेवी वर्मा का आदिम ग्रन्थ नहीं, उनकी प्रथम रचना मानना होगा।"[11]

'नीहार' महादेवी के जीवन के प्रारम्भिक दिनों की रचना है, जिसमें अनुभूति ही प्रधान है और चिन्तन को अभी उतना महत्व नहीं मिला है। 'नीहार' अपने नाम के अनुरूप सर्वत्र एक धुंधले वातावरण की सृष्टि करता है। इसमें महादेवी की अनुभूतियाँ एवं मनोभाव अपना स्वरूप निर्माण करते हुए जान पड़ रहे हैं।

महादेवी स्वयं स्वीकार भी करती हैं कि—"नीहार के रचनाकाल में मेरी अनुभूतियों में वैसी ही कुतूहल मिश्रित वेदना उमड़ आती थी जैसी बालक के मन में दूर दिखाई देने वाली अप्राप्य सुनहली उषा और स्पर्श से दूर सजल मेघ के प्रथम दर्शन से उत्पन्न हो जाती है।"[12] महादेवी की कविताओं में प्रारम्भ से ही युगीन प्रवृत्ति के अनुसार दार्शनिकताकी पृष्ठभूमि का आश्रय ग्रहण किया गया है, साथ ही रहस्य, विस्मय और सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को जान लेने की उत्कट जिज्ञासा भी बार-बार अपनी झलक दिखाती है। वे लिखती हैं कि—

"तुम्हें भेजा किसने इस देश
कौन वह है निष्ठुर कर्तार?"[13]

'नीहार' में महादेवी सम्पूर्ण प्रकृति में एक नई सौन्दर्य चेतना के दर्शन करती हैं एवम् उसके कार्यव्यापारों में सर्वत्र एक अव्यक्त रहस्यमय सत्ता का अनुभव करती हैं। 'नीहार' में सर्वत्र कौन, कहाँ आदि के द्वारा एक जिज्ञासा व्यक्त हो रही है। सूर्य की स्वर्णिम आभा सर्वत्र बिखर रही है और इस आभा में भी कवयित्री कौतूहल के दर्शन करती हैं और पूछ बैठती हैं कि—

"छिपा कर लाली में चुपचाप
सुनहला प्याला लाया कौन?"[14]

प्रकृति में रहस्यात्मक सत्ता के दर्शन के साथ महादेवी उसके उद्दीपन रूप का भी चित्रण करती हैं लेकिन वहाँ भी अन्त तक आते-आते रहस्यमयी जिज्ञासा ही प्रधान हो जाती है। प्रकृति के उद्दीपन रूप के उदाहरण स्वरूप निम्न पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

"घोरतम छाया चारों ओर
घटायें घिर आई घनघोर;"[15]

'नीहार' की कविताओं में महादेवी अत्यन्त अन्तर्मुखी रही हैं। उन्हें वेदना, संताप और वियोगावस्था के प्रति अत्यन्त प्रेम है। यहाँ तक कि वे उस लोक में रहने को तैयार नहीं होती जिसमें वेदना और अवसाद नहीं हैं। यदि प्रिय को करुणा के उपहार के रूप में वेदनाहीन अमरों का लोक भी मिलता हो तो वह भी उन्हें स्वीकार्य नहीं और वे कहती हैं—

"रहने दो हे देव! अरे यह
मेरा मिटने का अधिकार।"[16]

यद्यपि राम विलास शर्मा नीहार की कविताओं के विषय में लिखते हैं कि—'नीहार' की कविताएँ इसी विरहिन के आँसू हैं। विरह की पीड़ा ने उनमें एक अपूर्व सौन्दर्य को जन्म दिया है।''[17] लेकिन उनकी कविताओं में पीड़ा एवं वेदना के होते हुए भी निराशा नहीं है। उन्हें यह वेदना अवश्य प्रिय है और वह यह कामना भी करती हैं कि उनका सारा शरीर ही नेत्र बन जाए; जिससे इस वेदना का वे और अधिक आनन्द ले सके। वे लिखती हैं कि—

"गला कर मेरे सारे अंग,
करो दो आँखों को निर्माण!"[18]

महादेवी नीहार में केवल छायायुगीन काल्पनिक लोक में ही विचरण नहीं करती रहीं, जैसा कि अक्सर उनके बारे में कहा जाता रहा है। वरन् देश में व्याप्त राष्ट्रीय जनजागृति की ओर भी उनका ध्यान था। निम्न पंक्तियों में वे भारत के गरीब वर्ग की दुर्दशा देखकर कह उठती हैं कि—

"उन सूखे ओंठो के विषाद
में मिल जाने दो हे उदार
फिर एक बार बस एक बार!"[19]

'नीहार' में छायावाद युगीन प्रवृत्तियों की प्रधानता होने पर भी कुछ कविताओं में द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मकता भी झलक मारने लगती है। 'मुर्झाया फूल' नामक कविता इसी प्रकार की है जिसमें फूल की दुर्दशा को देखकर वे द्विवेदी युगीन कविताओं के समान लिखती हैं। निम्न पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

"मत व्यथित हो फूल ! किसको
सुख दिया संसार ने?

स्वार्थमय सबको बनाया-
है यहाँ करतार ने।"[20]

इस विवरण से स्पष्ट है कि नीहार में कवयित्री की भावुकता से भरी हुई कविताएँ हैं, जिसमें वातावरण के सृजन के लिए प्रकृति को चुना गया है। युग की बौद्धिकता ने उनके भाववेश को शिथिल नहीं होने दिया है। महादेवी ने रहस्यात्मक सत्ता के प्रति जिज्ञासा की भावना, संसार की अस्थिरता, जीवन की नश्वरता तथा उस अज्ञात, अव्यक्त प्रियतम के प्रति वेदना एवं करुणा—इन चार उपादानों के द्वारा नीहार के गीतों की रचना

की है। प्रकाशचन्द्र गुप्त स्वीकार करते हैं कि, "नीहार में श्रीमती महादेवी वर्मा के काव्य की रूपरेखा बन रही है। एक अव्यक्त पीड़ा इन छन्दों में भी है, किन्तु उसका कोई स्थिर रूप नहीं। कवयित्री के मन में एक हूक उठती है, वह गाने लगती है—इससे कुछ मतलब नहीं है क्या? इन गीतों में एक कहीं कुछ दूर की पुकार है।"[21] वे इसी पुकार को छायावाद कहते हैं। इस प्रकार के गीतों का प्रभाव उस समय के युवा वर्ग पर अत्यधिक पड़ा था। कलात्मक दृष्टि से भी ये उस श्रेष्ठता को तो नहीं छूते जो दीपशिखा के गीतों में हैं लेकिन फिर भी ये रमणीय बन पड़े हैं। इन गीतों में व्यक्त उनके हृदय की मार्मिक अनुभूतियाँ सहृदय जनों को प्रभावित करने में पर्याप्त सफल रही हैं।

रश्मि –

1932 में प्रकाशित 'रश्मि' महादेवी वर्मा की काव्ययात्रा का द्वितीय पड़ाव है, जिसमें कुल 35 गीत संगृहीत हैं। 'नीहार' में जहाँ महादेवी की कविता में अनुभूति का प्राधान्य था, वहीं 'रश्मि' में अनुभूति के साथ-साथ चिन्तन का पक्ष भी प्रबल होता गया। महादेवी ने रश्मि की भूमिका के अन्तर्गत स्वयं स्वीकार करती हैं—"रश्मि को उस समय आकार मिला जब मुझे अनुभूति से अधिक उसका चिन्तन प्रिय था।"[22] महादेवी को रश्मि के गीत अत्यन्त प्रिय हैं और वे इन गीतों को अपने सबसे निकट मानती हैं। वे लिखती हैं—"मैं स्वयं अनित्य होकर भी जिन प्रिय वस्तुओं की नित्यता की कामना करने से नहीं हिचकती, यह उन्हीं में से एक है।"[23] 'नीहार' उनके हृदयगत प्रकृत भावों की सहज अभिव्यक्ति हैं। अभी तक उनके मन ने आत्मगोपनता की प्रवृत्ति ग्रहण नहीं की थी लेकिन 'रश्मि' तक आते-आते उनकी संवेदना पर संकोच हावी हो जाता है और अब वे अपने हृदयस्थ भावों को दबाने या रूप बदलकर प्रस्तुत करने में समर्थ हो जाती हैं। यहाँ पर महादेवी और भी अधिक अंतर्मुखी हो जाती हैं। सुमित्रानन्दन पंत और सच्चिदानंद वात्स्यायन अज्ञेय दोनों ने ही महादेवी के काव्य में वेदना और प्रेम की अभिव्यति निर्वैयक्तिक स्तर पर करने का कारण नारी हृदय का सहज संकोच माना है। जब महादेवी 'नीहार' के सहज भावों का संसार छोड़कर 'रश्मि' के चिन्तन लोक में प्रवेश करती हैं तो उन्हीं का प्रश्न दोहराने की इच्छा मन में जाग उठती हैं—"अश्रुमयी रंगिनि! कहाँ तू आ गई परदेशिनी री।"[24]

'नीहार' में व्याप्त धूमिलता 'रश्मि' में समाप्त होती हुई भी पूर्णतया समाप्त नहीं होती। यद्यपि रश्मि में नीहार के अन्तर्गत आने वाली जिज्ञासा और कुतूहल तो हैं लेकिन उसमें दार्शनिकता का समावेश होने लगता है। रहस्यात्मक अनुभूति स्पष्ट होने लगी है और अनेक दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन भी होने लगा है। डा. धनंजय वर्मा 'रश्मि' के विषय में लिखते हैं—"काव्य के भिन्न स्वरों में भी एकत्व है और विरोधी विषयों मं भी एक साम्य संगीत की ध्वनि है।"[25]

'रश्मि' में महादेवी ने उस अज्ञात अव्यक्त प्रियतम के प्रति जिज्ञासा और कौतुहल का भाव अनेक कविताओं में व्यक्त किया है। यद्यपि यहाँ पर भी नीहार के समान उसका स्वरूप पूरी तरह से स्पष्ट नहीं हो पाता है। वह अभी भी धूमिलता के आवरण में छिपा हुआ है। वह सामने आता भी है तो धूमिल घन के रूप में—

'रजत रश्मियों की छाया में, धूमिल घन सा वह आता।'[26] यद्यपि वह परिचित तो हैं लेकिन फिर भी छाया के समान है—

'सजनि कौन तम में परिचित सा, सुधि सा छाया सा आता।'[27] उसका स्वरूप स्पष्ट नहीं है, अतः वे पुकार उठती है—"तब बुला जाता मुझे उस पार जो, दूर के संगीत सा वह कौन है?'[28]

'रश्मि' में आकर महादेवी की कविताओं में दार्शनिक तत्वों का और भी समावेश हो गया है और वेद, उपनिषद आदि के अध्ययन के आधार पर वे अद्वैतवाद जैसे दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने लगती है। अद्वैतवाद के अनुसार, यह दृश्य जगत मिथ्या है। ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ भी सत्य नहीं है। आत्मा और परमात्मा की अभिन्नता स्थापित करती हुई वे कहती हैं—

मैं तुमसे हूँ एक, एक हैं जैसे रश्मि प्रकाश
मैं तुमसे हूँ भिन्न-भिन्न ज्यों घन से तड़ित विलास।[29]

एक अन्य उदाहरण भी द्रष्टव्य है—

क्षुद्र हैं मेरे बुदबुद प्राण
तुम्हीं में सृष्टि, तुम्हीं में नाश।[30]

रश्मि की कविताओं के अध्ययन के बाद विश्वम्भर मानव लिखते हैं—'रश्मि' की 35 रचनाओं में से आधी से अधिक अत्यन्त भावमयी भाषा में आत्मा, प्रकृति और परमात्मा का स्वरूप निरूपण करती है। उनमें सृष्टि, प्रलय और परिवर्तन की चर्चा है। इन सभी रचनाओं में उन्होंने अद्वैतवाद का अनुकरण किया है।"[31]

'रश्मि' में भी महादेवी विरह में ही निमग्न रहना चाहती है। वे जीवन की पूर्णता मिलन में नहीं वरन् विरह की पीड़ा में मानती है। महादेवी तृप्ति प्राप्त करने का प्रयत्न नहीं करती, वे अतृप्ति ही चाहती हैं क्योंकि तृप्ति प्राप्त कर लेने पर जीवन में निष्क्रियता आ जाती है। इसलिए वे विरह में ही प्रसन्नता प्राप्त करती हैं। वे वियोग समय को रोते-रोते बिना देना चाहती हैं और यदि संयोग का अवसर कभी मिल भी जाय तो वे उस समय छिप जाना अधिक श्रेयस्कर मानती हैं—

'काटूँ वियोग पल रोते

संयोग समय छिप जाऊँ।[32]

लेकिन विरह की वेदना में भी वे दार्शनिकता से उबर नहीं पाती और 'नीहार' में व्यक्त प्रियमिलन की तृष्णा का जब उन्हें ज्ञान हो जाता है तो वे कह उठती हैं—

पाने में तुमको खोऊँ

खोने में समझूँ पाना।[33]

'रश्मि' की कविताओं में कल्पना का सुन्दर प्रयोग मिलता है। प्रिय को प्राप्त न कर पाने की जो विवशतायें वे व्यक्त करती हैं। वे वास्तविक न होते हुए भी कल्पना के प्रयोग द्वारा अत्यन्त रमणीय बन पड़ी है, जैसे निम्नपंक्तियों में प्रियतम की कल्पना आँसू के रूप में की है—

'अलि कैसे उनको पाऊँ?

वे आँसू बनकर मेरे,

इस कारण ढुल-ढुल जाते

इन पलकों के बंधन में

मैं बाँध-बाँध पछताऊँ।[34]

'नीहार' के समान अब प्रकृति केवल एक पृथक सत्ता के रूप में ही वर्णित नहीं हुई वरन् किसी अज्ञात, अव्यक्त प्रिय का आभास भी रश्मि के गीतों में मिलने लगता है। अब प्रकृति में भी आध्यात्मिकता का समावेश हो गया है। निम्न उदाहरण में प्रकृति के वर्णन द्वारा उस अव्यक्त, अज्ञात ब्रह्म के प्रति जिज्ञासा व्यक्त की गई है—

कनक से दिन मोती सी रात,

सुनहली साँझ, गुलाबी प्रातः;

मिटाता रंगता बारम्बार,

कौन जग का यह चित्राधार?[35]

जहाँ प्रकृति का निरपेक्ष रूप से वर्णन किया गया है, वहाँ पर भी वह अत्यन्त सजीव हो उठी है। रश्मि की पहली कविता में ही महादेवी ने संसार में प्रथम रश्मि के आगमन पर मानवीय कार्य व्यापारों का बड़ा ही मनोरम चित्रण प्रस्तुत किया है—

'चुभते ही तेरा अरुण बान
बहते कन-कन से फूट-फूट
मधु के निर्झर से सजल गान।[36]

यद्यपि महादेवी के काव्य को पूर्णतः व्यक्तिगत अनुभूतियों पर आधारित काव्य कहकर आलोचना की जाती रही है लेकिन उनकी रचनाओं का गहनता से अध्ययन करने पर कई ऐसी कविताएँ दृष्टिगत होती है, जिसमें व्यक्तिगत पीड़ा का अन्तर्भाव जनसामान्य की सामाजिक पीड़ा से हो जाता है और महादेवी का भावुक मन जैसे चीत्कार कर उठता है—

कह दे माँ क्या अब देखूँ!
देखूँ खिलती कलियाँ या
प्यासे सूखे अधरों को,
तेरी चिर यौवन-सुषमा
या जर्जर जीवन देखूँ
×××
तेरा वैभव देखूँ या,
जीवन का क्रन्दन देखूँ।[37]

कुछ आलोचकों का मत है कि काव्य कला की दृष्टि से 'रश्मि' में महादेवी का काव्य सौष्ठव अपनी पूरी गरिमा के साथ उपस्थित नहीं है। भावों की भी ठीक-ठीक अभिव्यंजना नहीं हो पाई है। यद्यपि रूपक का अधिक प्रयोग किया गया है किन्तु फिर भी वर्ण्य चित्र पूरी तरह से मूर्त नहीं हो पात। धनंजय वर्मा लिखते हैं—"अभिव्यंजना में वह परिष्कार और शक्तिमत्ता नहीं, जो उनके भावों का परिवहन कर सके।[38] अभिव्यंजना शक्ति का कुशल प्रयोग न होने के कारण दार्शनिक प्रवृत्ति सर्वत्र काव्य रूप में ढल नहीं पाई है।

स्पष्ट है कि 'नीहार' के भावमय संसार से भिन्न 'रश्मि' में महादेवी अपने जीवन दर्शन को एक आकार देती है। यही जीवन दर्शन रहस्यात्मक प्रवृत्तियों का आधार लेकर रागात्मक अनुभूतियों के संस्पर्श से तन्मयता के साथ नीरजा, सांध्यगीत और दीपशिखा में अभिव्यक्त होता है। अब तक प्रकृति विरहिणी आत्मा के प्रति सहानुभूति व्यक्त करती थी, अब महादेवी ने जड़-चेतन सभी में रहस्यात्मक अनुभूतियों का आरोपण कर दिया है।'रश्मि'में भाषा और भाव भी विकसित रूप धारण करने लगे हैं। वेदना की मधुरता का स्पष्ट अनुभव रश्मि में मिलने लगता है और'रश्मि'का अन्त भी आशा और प्रसन्नता के वातावरण में हुआ है। गंगा प्रसाद पाण्डेय 'रश्मि'के सम्बन्ध में लिखते हैं—'रश्मि' में अपने आराध्य का दार्शनिक दर्शन ही महादेवी जी का आध्यात्कि विकास है और भाषा और कल्पना को उत्कृष्ट रूप देना साहित्यिक विकास है।''[39]

नीरजा –

'नीरजा' महादेवी वर्मा की काव्ययात्रा में आया हुआ तीसरा पड़ाव है। सन् 1934 में प्रकाशित इस काव्यकृति में 59 गीत संग्रहीत हैं। इसमें महादेवी की अनुभूतियाँ अपनी पिछली दोनों कृतियों की अपेक्षा अधिक सघन तथा व्यापक हो गई है। 'नीरजा' में महादेवी की विचारधारा ज्ञान और प्रेम, ब्रह्म और जगत तथा सूक्ष्म और स्थूल के बीच रही है। लेकिन यहाँ तक आते-आते महादेवी में ज्ञान के स्थान पर प्रेम का प्राधान्य हो गया है। विश्वम्भर मानव लिखते हैं कि—''नीहार'की तरनी से उत्पन्न जो विचार की लहर उठी थी, वह 'रश्मि' में ज्ञान के गिरि पर तो चढ़ी पर अपने संचार के लिए उपयुक्त भूमि न पाकर 'नीरजा' में फिर अनुभूति के पथ पर लौट आई। काव्यत्व की रक्षा के लिए यह अच्छा ही हुआ। 'नीरजा' में महादेवी जी की विचारधारा ज्ञान और प्रेम के दो फूलों के बीच ब्रह्म और जगत के दो कगारों के बीच, सूक्ष्म और स्थूल के दो पाटों के बीच बही है।''[40]'नीरजा'में महादेवी के भाव व्यापक रूप धारण कर लेते हैं और उन्हें व्यक्त करने वाली भाषा भी अधिक स्पष्ट हो गई है। गंगा प्रसाद पाण्डेय'नीरजा'के विषय में लिखते हैं कि—''भावों का सहजप्रवाह अपने में आँसुओं की स्वच्छता तथा मार्मिकता लिए है। अपनी वेदना प्रधान भावनाओं को भी उन्होंने उसमें एक स्वाभाविक श्रृंगार दे दिया है, जिससे वे दुख के नीरस आघातों के उपादानमात्र न होकर सुख का स्वप्न सा बन गए हैं।''[41]

'नीहार' के धुंधले वातावरण को चीरकर 'रश्मि' सम्पूर्ण संसार को प्रकाशित करती है और 'रश्मि' का प्रथम दर्शन प्राप्त कर 'नीरजा' आकार ग्रहण करती है। 'नीहार' और 'रश्मि' में महादेवी की भावनाएँ अस्पष्ट सी लगती हैं इसी कारण वे अनेक प्रकार के रूपकों की रचना द्वारा अपने भावों को स्पष्ट करती हैं किन्तु'नीरजा' तक आते-आते उनकी अनुभूतियाँ एवं चिन्तन अत्यन्त परिष्कृत रूप ग्रहण कर चुके हैं। यह उनके क्रमिक

विकास का अत्यन्त महत्वपूर्ण लक्षण है। महादेवी मुख्यतः अनुभूति प्रधान कवयित्री हैं, अतः अनुभूति प्रधान कविताओं में भाषा और भाव दोनों ही अत्यन्त सहज और सरल हो गए हैं। किन्तु जहाँ चिन्तन की प्रधानता है वहाँ भाषा और भाव दोनों ही गम्भीर है। महादेवी ने कल्पना का अत्यन्त मौलिक रूप में प्रयोग किया है। उनकी कल्पनाएँ इतनी मधुर एवं भावपूर्ण हैं कि वे हृदयगत् भावों को सहजरूप में अपनी ओर आकृष्ट करने में सफल रही है। निम्न पंक्तियों में कवयित्री अपने प्रिय को क्षणभर के लिए ही सही स्वप्न में बाँध लेना चाहती हैं—

"तुम्हें बाँध पाती सपने में

तो चिर जीवन प्यास बुझा

लेती उस छोटे क्षण अपने में।"[42]

'नीरजा' में दुख सुख मिश्रित अनुभूति अब व्यापक रूप ग्रहण कर लेती है। यद्यपि इसमें वेदना प्रधान तो है किन्तु उनका आराध्य, जो 'नीहार' और 'रश्मि' में पर्दे की ओट में था, अब उसकी स्पष्ट झलक मिलने लगती है। इसलिए अब उनके हृदय में पहले जैसी आकुलता नहीं रही वरन् आज तो उन्होंने वेदना के मधुरक्रय में किसी को पा लिया है—

"पा लिया मैंने किसे इस

वेदना के मधुर क्रय में?"[43]

'नीरजा' में महादेवी को अपने आराध्य का पूर्ण परिचय प्राप्त हो चुका है। वे बसन्त का आह्वान करती हैं क्योंकि वे जान चुकी हैं कि उनका 'प्रिय' आने वाला है और प्रकृति का कण कण उसके स्वागत में तत्पर है। सरिता का उर सिहरने लगा है, फूल भी सुगन्ध भर के खुल रहे हैं और प्रिय के आने की आहट सुनकर पृथ्वी भी पुलकित हो उठी है—

"सुनि प्रिय की पदचाप हो गया

पुलकित यह अवनी

सिहरती आ बसन्त रजनी!"[44]

एक अन्य कविता में वे अपने प्रिय को विद्युत बनकर अपनी पलकों में पग रखकर आने का आमन्त्रण देती हैं और प्रिय के आने की पदचाप सुनकर उनके नेत्र बार-बार भर आते हैं। वे लिखती है—

"तुम विद्युत बन आओ पाहुन!
मेरी पलकों में पग धर-धर!"
आज नयन आते क्यों भर-भर।"[45]

महादेवी ने छायावादी दर्शन का मूल 'सर्वात्मवाद' में मानकर केवल प्रकृति के प्रति ही अपने प्रेम का वर्णन नहीं किया वरन् जड़चेतन सभी के प्रति अपने प्रेम का निवेदन किया। उन्होंने अपनी कविता में रहस्यभावना के अन्तर्गत अद्वैतमत की अवहेलना नहीं की है किन्तु उनका अद्वैत काव्य में व्यक्त होकर निश्चय ही सरस हो गया है। रहस्य भावना का प्रसार चिन्तन के क्षेत्र में ही होता है किन्तु नीरजा में अनुभूति का भी आश्रय लेकर वे अपनी रहस्यभावना को समृद्ध करती हैं। ऐसी कविताओं में आत्मा-परमात्मा के बिरह का वर्णन मिलन की अपेक्षा अधिक भावप्रवण होता है। नीरजा में भी बिरह दशा के अनेक चित्र मिलते हैं। एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

"विरह काजलजात जीवन, विरह का जलजात।"[46]

नीरजा में अद्वैत भावना की अभिव्यक्ति की भी कई कविताएँ मिलती हैं। प्रिय कवयित्री में ही समा गया है अतः उससे अलग से परिचय की अपेक्षा भी नहीं है। निम्न पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

तुम मुझमें प्रिय! फिर परिचय क्या![47]

महादेवी प्रियतम और प्रिया के मध्य अद्वैत को व्यक्त करने के लिए दार्शनिकता का आश्रय तो लेती हैं लेकिन काव्य में व्यक्त करके वे दर्शन को भी सरल बना देती है। अद्वैत दर्शन से प्रभावित निम्न पंक्तियां उदाहरण के रूप में प्रस्तुत हैं—

"चित्रित तू मैं हूं रेखाक्रम
मधुर राग तू मैं स्वरसंगम।"[48]

अपनी रहस्यानुभूति को लौकिकरूपकों के माध्यम से व्यक्त करने में महादेवी को पर्याप्त सफलता मिली है। जब महादेवी अपने हृदयगत भावों की अभिव्यक्ति के लिए कहीं भी कृत्रिमता का आश्रय नहीं लेती तो वहाँ उत्तम गीत की रचना होती है। निम्न पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

"बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ।"[49]

नीरजा के कुछ गीतों में चिन्तन की प्रबलता इतनी अधिक हो गई है कि वहाँ भाव भी क्लिष्ट हो गए

हैं और भाषा भी दुर्बोध हो गई है। जैसे निम्नपंक्तियाँ उदाहरण के रूप में प्रस्तुत हैं—

"क्या यह दीप जलेगा मुझसे
भर हिम का पानी।
बताता जा रे अभिमानी।[50]

'नीहार' और 'रश्मि' में जब प्रियतम का स्वरूप स्पष्ट नहीं था तब महादेवी के काव्य में पतझड़ की प्रधानता थी किन्तु समय परिवर्तन के साथ अब उनके जीवन में भी महान परिवर्तन होने वाला है। उन्हें प्रिय के दर्शन की आशा बँधने लगी है। इसीलिए वे अपने जीवन को बसन्त की सुन्दरता से भावविभोर कर कह उठती है—

"जगा न निद्रित विश्व ढालने
विधु-प्याले से मधुर चाँदनी
आ मेरी चिर मिलन-यामिनी।"[51]

प्रियतम की स्पष्ट झलक मिलने पर महादेवी को सर्वत्र प्रकाश विकीर्ण होता दिखाई देने लगता है। वे अपने मन रूपी दीपक को हमेशा जलाये रखना चाहती है जिससे कि उनके प्रियतम का पथ प्रकाशमय बना रहे। उसके पथ को आलोकित करने के लिए वे अपने कोमल तन को मोम बनाकर गला देना चाहती है। वे कहती है—

मधुर-मधुर मेरे दीपक जल!
युग युग प्रतियुग प्रतिक्षण प्रतिपल,
प्रियतम का पथ आलोकित कर![52]

महादेवी के काव्य में वेदना की प्रधानता की आलोचकों ने भरसक निन्दा की है। अतः महादेवी कह उठती है कि—

'कहता जग दुख को प्यार न कर'[53]

इसके द्वारा महादेवी दुख के सम्बन्ध में अपनी धारणा को स्पष्ट करती हैं। नीरजा के गीतों में जहाँ कहीं भी दुखवाद प्रधान हो गया है वहाँ वह लौकिक सीमाओं से ऊपर उठकर अलौकिकता की ओर उन्मुख हो गया है। जब आराधक की आराधना पूरी हो जाती है तब आराध्य का पूजन हृदय के अन्दर ही होने लगता

है और नीरजा के अन्त तक आते-आते महादेवी भी ऐसी ही मानसिक अवस्था में पहुँच जाती है। वे कह उठती हैं—

"क्या पूजा क्या अर्चन रे!

उस असीम का सुन्दर मन्दिर मेरा लघुतम जीवन रे!"[54]

स्पष्ट है कि नीरजा में विरह, वियोग, दुख, अद्वैत भावना और मिलन से सम्बन्धित गीत इतने भावपूर्ण बन पड़े हैं कि वे हिन्दी साहित्य में उच्चकोटि का स्थान पाने के अधिकारी हैं। इनमें महादेवी ने अपनी कल्पना का मनोरम प्रयोग किया है।इन गीतों को गयता के कारण प्राण तत्व मिल गया हे। हर पद गेय बन गया है, हर पद में स्वर सामंजस्य है। ऐसा लगता है मानो भाव स्वयं ही ध्वनित हो गए हैं। रायकृष्ण दास ने ठीक ही लिखा है—" 'नीरजा' यदि अश्रुमुख वेदना के कणों से भीगी हुई है, तो साथ ही आत्मानन्द के मधु से मधुर भी है। मानो, कवि की वेदना, कवि की करुणा, अपने उपास्य के चरणस्पर्श से पूत होकर आकाश गंगा की भाँति इस छायामय जग को सींचने में ही अपनी सार्थकता समझ रही है।"[55] निश्चय ही अनुभूति की गहराई और सघन चिन्तन के द्वारा नीरजा के गीत कलात्मक दृष्टि से उच्चकोटि के बन बड़े हैं।

सान्ध्यगीत–

'सान्ध्यगीत'महादेवी की काव्ययात्रा का चतुर्थ पड़ाव है। 1936 में प्रकाशित इस कृति में 45 गीत संग्रहीत हैं। इन गीतों में महादेवी तन्मयता की उस अवस्था में पहुँच गई हैं, जहां सुख दुख मिलकर एकाकार हो गए हैं। महादेवी स्वयं स्वीकार करती हैं कि, "नीरजा और सान्ध्यगीत मेरी उस मानसिक स्थिति को व्यक्त कर सकेंगे जिसमें अनायास ही मेरा हृदय सुख-दुख में सामंजस्य का अनुभव करने लगा। पहले बाहर खिलने वाले फूल को देखकर मेरे रोम-रोम में ऐसा पुलक दौड़ जाता था मानों वह मेरे हृदय में खिला हो, परन्तु उसके अपने से भिन्न प्रत्यक्ष अनुभव में एकअव्यक्त वेदना भी थी; फिर यह सुख-दुख मिश्रित अनुभूति ही चिन्तन का विषय बनने लगी और अन्त में अब मेरे मन ने न जाने कैसे उस बाहर-भीतर में एक सामंजस्य सा ढूँढ लिया है; जिसने सुख-दुख को इस प्रकार बुन दिया कि एक के प्रत्यक्ष अनुभव के साथ दूसरे का अप्रत्यक्ष आभास मिलता रहता है।"[56] उद्धरण लम्बा अवश्य है कि लेकिन'सांध्यगीत'की रचना के समय उनकी मनःस्थित का पूर्ण परिचय देता है। 'सान्ध्यगीत'के गीत भावुकता के स्थान पर चिन्तन के सुदृढ़ आधार पर प्रतिष्ठित हैं।

प्रकृति प्रारम्भ से ही महादेवी के काव्य में मुख्य सहचरी रही है।'सान्ध्यगीत'के प्रथम गीत में ही महादेवी प्रकृति प्रदत्त उपादानों का आरोपण अपने जीवन पर करते हुए कह उठती हैं—

"प्रिय सान्ध्यगीत, मेरा जीवन।[57]

सुख-दुख मिश्रित अनुभूति का प्रत्यक्ष उदाहरण इसी गीत का अन्तिम पद है और यह सुख-दुख का सामंजस्य ही कवयित्री के जीवन में अनेक विरोधी तत्वों का समन्वय प्रस्तुत करता हुआ जान पड़ता है। वे लिखती है—

'घर आज चले सुख-दुख विहग
तम पोंछ रहा मेरा अग-जग।'[58]

यद्यपि उनके गीतों में दुख की प्रधानता है किन्तु वे कहीं भी दुख से घबड़ाती नहीं है वरन् दुख रूपी काँटों को पार करके भी ही सुख रूपी फूल प्राप्त होते हैं। उनका प्रमुख लक्ष्य पीड़ा तथा करुणा के द्वारा मानवता का कल्याण करना है। वे कहती है कि यदि वे दीपक के समान न जलती तो उनमें इतनी सजलता कहाँ से आती। निम्न पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

दीप सी जलती न तो यह
सजलता रहती कहाँ?[59]

इतना ही नहीं विश्व के करुण क्रन्दन को देखकर उनका हृदय चीत्कार कर उठता है। वे साधक को मार्ग में आने वाली कठिनाइयों को पार करके साधना मार्ग में आगे बढ़ने के लिए निम्न पंक्तियों द्वारा प्रेरित करती हैं—

चिर सजग आँखे उनींदी, आज कैसा व्यस्त बाना
जाग तुझको दूर जाना।[60]

रहस्यवाद की भी अनेक आकुल-व्याकुल अनुभूतियों के गीत भी सांध्यगीत में संकलित है। साधिका निरन्तर अपने आराध्य की आराधना में संलग्न रहती है और उस साधना की तीव्रता तथा तन्मयता ही उसे संतोष देती है। वह अपने आराध्य की साधना करते करते उस उच्चतम मनोस्थिति पर पहुँच जाती है कि वह स्वयं आराध्य हो गई हैं। निम्न पंक्तियाँ उदाहरण के रूप में प्रस्तुत हैं—

'आकुलता ही आज हो गई तन्मय राधा
विरह बना आराध्य द्वैत क्या कैसी बाधा!'[61]

इस प्रकार आराध्य की खोज में क्षण-क्षण पर भिन्न अनुभवों की आकुलता दिखाई पड़ती है। कहीं मिलन सुख का वर्णन है, कहीं वियोग पीड़ा का, कभी प्रतीक्षा का और कभी अतीत स्मृति का वर्णन मिलता है।

महादेवी का कविमन निरन्तर साधना में लीन है और सांध्यगीत त आते-आते वह सफलता के अत्यन्त निकट पहुँच गई है। आराध्य और आराधिका के हृदय की भिन्नता नष्ट होकर एक ही दिशा की ओर अग्रसर है। वे कहती हैं कि—

'हो गई आराध्यमय मैं विरह की आराधना ले।'[62]

विरह के क्षण समाप्त होने को हैं और मिलन के पल समीप है। फिर दुख-सुख में कौन तीखा हे,यह जानने और सीखने का समय उनके पास नहीं है। अब तो अपने प्रियतम की मधुर भावनाएँ लेकर विश्व की सभी वस्तुएँ मधुर हो गई हैं। वे लिखती हैं कि—

"मधुर मुझको हो गए सब मधुर प्रिय की भावना से।"[63]

महादेवी प्रतिपल अपने आराध्य से मिलने के लिए विकल हो रही हैं। उनके प्राण अत्यन्त व्याकुल हो उठे हैं। इसलिए वह कह उठती हैं कि इस क्षितिज को नष्ट कर दी जिससे मैं यह तो देखलूँ कि उस ओर क्या है? अनेक युगों से जिस पन्थ की खोज हो रही है उसका छोर क्या है? निम्न पंक्ति द्रष्टव्य है—

"तोड़ दो यह क्षितिज मैं भी देखलूँ उस ओर क्या है।"[64]

महादेवी चारों ओर दृष्टि फैलाकर अपने प्रिय को देख रही है क्योंकि न जाने कहाँ से वह आ जाये। अचानक उनकी नजर रात्रि के शान्त वातावरण में तारों पर जा पड़ती है। उसको देखकर वे निम्न पंक्तियों में कितनी मार्मिक कल्पना करती है—

'सो रहा है विश्व पर प्रिय तारकों में जागता है।'[65]

महादेवी जानती है कि प्रियमिलन के बाद यह चित्रमय क्रीड़ा अधूरी रह जाएगी परन्तु वे अपने मन को नहीं समझा पा रही है। वे तो चाहती है कि वे दूर रहकर खेलें किन्तु उनका हृदय उनका साथ नहीं दे रहा है। वे कहती हैं कि—

"दूर रहकर खेलना पर मन न मेरा मानता है।"[66]

यद्यपि महादेवी को अभी तक अपने प्रिय का सान्निध्य प्राप्त नहीं हुआ है किन्तु उन्हें उसका अलौकिक स्पर्श अवश्य ही अनुभव होता है और उनकी स्मृति के लिए यह किसी भी प्रकार से कम नहीं है। वे प्रिय

दीपशिखा–

सन् 1942 में प्रकाशित 'दीपशिखा' महादेवी वर्मा की काव्ययात्रा का अन्तिम पड़ाव है। इसके पश्चात उनकी काव्यकृतियाँ प्रकाशित तो अवश्य हुई लेकिन वे सभी अनुवादित अथवा सम्पादित हैं। डा. नगेन्द्र उस युग में 'दीपशिखा' के प्रकाशन को एक घटना मानते हैं। 'दीपशिखा' में 51 गीत संग्रहीत हैं तथा प्रत्येक गीत के साथ उसकी पृष्ठभूमि के रूप में महादेवी द्वारा बनाया गया एक भावगर्भित चित्र भी अंकित है, जो गीत के भावार्थ को समझने में मदद ही करता है। इसीलिए 'दीपशिखा' को चित्रमय काव्य अथवा काव्यमय चित्र की संज्ञा देते हुए गंगा प्रसाद पाण्डेय लिखते हैं कि—'प्रत्येक गीत की पृष्ठभूमि में एक चित्र अंकित है, जो काव्योत्कर्ष की चारुता बढ़ाने में सहज ही समर्थ है; कला एवं भाव दोनों दृष्टियों से 'दीपशिखा' अत्यन्त प्रौढ़ और अपने ढंग की अकेली काव्यकृति है।"[71]

'दीपशिखा' का प्रणयन सन् 1942 में हुआ। उससमय देश राजनीतिक दृष्टि से संक्रमणके दौर से गुजर रहा था। द्वितीय विश्वयुद्ध में अंग्रेजों की पराजय के बावजूद अंग्रेज भारत छोड़ने को तैयार नहीं थे और प्रत्येक भारतवासी महात्मा गाँधी के नेतृत्व में संगठित होकर अंग्रेजों को भारत छोड़ने के लिए और स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए प्राणपण से प्रयत्नशील था। गाँधी के सत्य, अहिंसा, असहयोग आन्दोलन, स्वदेशी आन्दोलन आदि निष्फल सिद्ध हो रहे थे। क्रान्ति की चिनगारियाँ चारों ओर सुलग रही थी, जो भभककर भीषण ज्वाला में परिवर्तित होने को बैचेन थी। ऐसे संक्रमणकालीन युग से छायावादी कवियों का अप्रभावित रहना कठिन था; अतः वे सब भी कल्पना के पंखों पर बैठकर मुक्तगगन पर विचरण करना छोड़कर यथार्थ की ठोस भावभूमि पर अवतरित हुए। राष्ट्रीय दृष्टि से जनजागरण के ऐसे महत्वपूर्ण समय में 'दीपशिखा' की रचना अपना विशेष स्थान रखती है। 'दीपशिखा' के अधिकाश गीतों का जन्म झंझावतों के ऐसे ही दौर से गुज़र कर हुआ है।

'दीपशिखा' में दीपक को आधार बनाकर लिखे गए गीत अधिक है। दीपक महादेवी का अत्यन्त प्रिय प्रतीक है। हजारी प्रसाद द्विवेदी भी लिखते हैं कि—"वस्तुतः दीपशिखा के साथ किसी कवि का नाम जोड़ना हो तो वह महादेवी वर्मा ही हो सकती है। 'दीपशिखा' उनका बहुत प्रिय बिम्ब है। इसका प्रयोग उनकी कविता में अनेक बार हुआ है। सर्वत्र वह एक ही भाव से गाढ़-सम्प्रेषण के लिए नहीं आया पर मुख्यरूप से स्वयं जलकर प्रकाश देने की महिमा उसमें व्यक्त हुई हैं।"[72] दीपक साधना की एकान्त निष्ठा का प्रतीक है। दीपक आत्मा का भी प्रतीक है जो साधना मार्ग पर आँधी-तूफानों से विचलित हुए बिना निरन्तर प्रकाशित हो रहा है और साधनामार्ग से गुजरने वाले पथिक और विहग के मार्ग और घर को प्रकाशित कर रहा है। स्वयं आँधी

प्रलय भी साधनामार्ग के प्रति उसकी आस्था को देखकर उसके लिएमंगल गान गाते हुए प्रतीत हो रहे हैं। वे दीपक से निरन्तर जलने का आह्वान निम्न पंक्तियों के द्वारा करती हैं—

"दीप मेरे जल अकम्पित,

घुल अचंचल![73]

दीपक की सार्थकता स्वयं जलकर, घुलकर भी दूसरों के लिए मार्ग प्रशस्त करने में है। 'दीपशिखा' तक आते-आते महादेवी साधना की उस उच्चतम भावभूमि पर पहुँच गई है, जहाँ पर न तो उन्हें पथ के अपरिचित होने की चिन्ता है और न ही प्राण के अकेले रहने की। उन्हें अपनी पराजय का भी डर नहीं है वरन् वे पूरी निष्ठा के साथ अपने संकल्प को पूरा करने का विश्वास निम्न पंक्तियों में व्यक्त करती है—

पंथ होने दो अपरिचित,

प्राण रहने दो अकेला![74]

महादेवी को अपनी साधना पर अटूट विश्वास है। इसीलिए वे मन्दिर के दीप को निरन्तर प्रज्ज्वलित करने की आकांक्षा व्यक्त करती है। वे दीपक को विश्व का प्रहरी बनाकर संसार के अन्धकार को दूर करने के लिए साँझ के दूत को प्रभाती तक चलने के लिए निम्न पंक्ति में आग्रह करती हैं—

'दूत साँझ का इसे प्रभात तक चलने दो!'[75]

महादेवी साधना के मार्ग पर निरन्तर अग्रसर हैं। अब चाहें कितनी भी बाधायें आ जायें कोई भी उनकी गति को रोक नहीं सकता। अब उनका रास्ता न तो रात का सघन अन्धकार रोक सकता है और न ही आँधी-तूफान उनकी गति को अवरुद्ध कर सकते हैं। वे लिखती हैं कि—

'चली मुक्त मैं ज्यों मलय की मधुर बात'[76]

महादेवी को अब विरह की घनीभूत पीड़ा, जो प्रारम्भिक रचनाओं में सालती थी, की भी चिन्ता नहीं है क्योंकि विरह के पश्चात ही मिलन के क्षण आते हैं और वे कह उठती हैं कि—

अदन में सुख की कथा है,[77]

विरह मिलने की प्रथा है,

महादेवी अब साधना में इतनी एकाग्र हो गई हैं कि उन्हें विरह में ही आनन्द आने लगा है। विरह रात्रि कितनी बाकी रही है, यह जानने की उत्कंठा भी उनमें शेष नहीं हैं। निम्नपंक्तियाँ उदाहरण के रूप में प्रस्तुत हैं—

मैं क्यों पूछूँ यह विरह निशा,

कितनी बीत क्या शेष रही?[78]

'दीपशिखा'में पहुँचकर महादेवी अपने व्यक्तित्व को विश्व के व्यापकत्व में समाहित कर देती हैं। अतः दुख का वहाँ प्रश्न ही नहीं है। गंगा प्रसाद पाण्डेय भी इसी तथ्य की ओर संकेत करते हैं हुए लिखते हैं कि— "व्यक्ति के विरह मिलन की स्थितियाँ भी इसी तथ्य की परिचायिका होती हैं। दीपशिखा का दीपक व्यापक प्रकाशपुंज (सबेरा) से मिलकर स्वयं आलोकवाही सूर्य बन बैठा है। व्यक्ति की यह चरम साधना और कवि की यही चरम सफलता है।"[79]

महादेवी के काव्य में व्यक्त रहस्यवाद मध्यकालीन सन्त कवियों के रहस्यवाद से भिन्न है। सन्तकवियों के रहस्यवाद का आदर्श साधक द्वारा अपने अस्तित्व को ब्रह्म में विलीन कर देना है, लेकिन महादेवी अपने अस्तित्व को ब्रह्म में विलीन करना नहीं चाहती, वे अपनी स्थिति को इतना व्यापक बनाना चाहती है स्वयं उसी में ब्रह्म की विराटता का अनुभव हो सके। इसी कारण महादेवी सम्पूर्ण मानवता के कल्याण के लिए निरनतर प्रयत्नशील रहती है। निम्न पंक्तियाँ उदाहरण के रूप में प्रस्तुत हैं—

अलि मैं कण कण को जान चली

सबका क्रन्दन पहचान चली![80]

स्पष्ट है कि 'दीपशिखा' में साधना के अनेक सोपानों से गुजरते हुए लक्ष्य की प्राप्ति तक की मनः स्थितियों का बड़ा ही मार्मिक एवं भावपूर्ण अंकन किया गया है। 'दीपशिखा' के अन्त तक आते-आते विरहरूपी रात्रि समाप्ति होने को है और रात्रि के समाप्ति हो जाने पर दीपक का बुझ जाना स्वाभाविक है। इस कल्पना का बड़ा ही मनमाहेक चित्र महादेवी निम्न शब्दों में खींचती हैं—

"कल्पना निज देखकर साकार होते

और उसमे प्राण का संचार होते

सो गया रख तूलिका दीपक चितेरा।"[81]

'दीपशिखा' में महादेवी ने 'चिन्तन के कुछ क्षण' नाम से एक लम्बी भूमिका लिखी है जिसमें काव्य से सम्बन्धित अनेक प्रश्नों द्वारा जैसे—क्काव्य का स्वरूप, सत्य और काव्य, उपयोगी कलाएँ, ललित कलाएँ, रहस्यवाद, छायावाद का समर्थन,यथार्थवाद और गीत आदि के सम्बन्ध में अपने पाठकों की जिज्ञासा को शान्त करने का प्रयास किया गया है। 'दीपशिखा' के गीतों में अनुभूति की गहराई और व्यापकता तो है ही,

साथ ही अभिव्यंजना पक्ष भी अत्यन्त समृद्ध बन पड़ा है। 'दीपशिखा' में महादेवी नेसाधना की उच्चतम भावस्थिति प्राप्त कर ली है और वे अपने जीवन को विश्वजीवन के साथ एकाकार करके समस्त प्राणिमात्र के प्रति संवेदना और सहानुभूति का अनुभव करती है। स्वयं को निस्वार्थ भाव से दूसरे के सुख के लिए मिटा देने वाले बादलों के साथ महादेवी के जीवन का साम्य आसानी से खोजा जा सकता है। डा. धनंजय वर्मा दीपशिखा में लोकहृदय से एकाकार होने की इच्छा प्रमुख मानते हैं। वे लिखते है कि—"आत्मदुख के साथ व्यापक जीवन के दुख को प्रबोधने की शक्ति उनमें है और सुख-दुख का सामंजस्य-समरस दृष्टिकोण इनके गीतों का मूल आत्मनिवेदन है और दीपशिखा उनके मन का प्रतीक होकर आयी है।"[82] वस्तुतः तत्कालीन परिस्थितियों को अभिव्यक्त करने और सामान्य जन को प्रेरित करने में 'दीपशिखा' के गीतों की महती भूमिका रही है। प्रत्येक गीत के साथ एक चित्र बनाकर महादेवी ने 'दीपशिखा' को एक नये कलेवर में प्रस्तुत किया है।

बंग-दर्शन–

यद्यपि महादेवी वर्मा पर हमेशा कल्पना लोक की निवासिनी होने का आरोप लगाया जाता रहा है। लेकिन 1943-44 में बंगाल में आए हुए भीषण अकाल से द्रवित होकर महादेवी द्वारा'बंग दर्शन'की रचना इस आरोप का पूर्णतया नकार देता है।'बंग दर्शन'के प्रकाशन के समय 'विशाल भारत' पत्रिका में एक टिप्पणी प्रकाशित होती हैं—"पर सन्तोष का विषय है कि श्रीमती महादेवी वर्मा ने बंगदर्शन के प्रकाशन के रूप में न सिर्फ इस दिशा में सबका मार्ग प्रदर्शन ही किया है, बल्कि हिन्दी और हिन्दी वालों की नाक भी रख ली है। इसके लिए समस्त हिन्दी-भाषा-भाषियों को हृदय से उनका कृतज्ञ होना चाहिए।"[83] बंगाल के अकाल को लेकर हिन्दी साहित्यकारों में उतनी व्यापक प्रतिक्रिया नहीं हुई जितनी कि उनसे अपेक्षा की जा रही थी। और जो कुछ प्रयत्न किए भी गए तो उनकी भी आलोचना हुई। एक पत्रिका लिखती है—"यदि ईमानदारी से देखा जाय, तो ड्राइंग रूप में बैंठकर किसान-मजदूरों की तरह ही बंगाल के अकाल पर लिखी गई इनी-गिनी रचनाओं में भी यथार्थता की अपेक्षा कवि-कल्पना का पुट ही अधिक है। इससे स्पष्ट है कि हिन्दी के आज के अधिकांश साहित्यकार देश, काल अथवा समाज के कितने निकट अथवा साथ है।"[84]

'बंगदर्शन'की भूमिका लिखते हुए महादेवी हिन्दी साहित्यकारों का इस विपरीत परिस्थिति में बंगाल की जनता की पीड़ा को समझने का आह्वान करती हैं। उसके पुनर्निर्माण में प्रत्येक व्यक्ति के सहयोग की आकांक्षा व्यक्त करती हैं। साहित्यकारों और कलाकारों से उनकी अपेक्षायें और भी बढ़ जाती हैं क्योंकि वे राजनीतिक वादविवादों से भी दूर रहते हैं और संकीर्ण स्वार्थों से भी शून्य हैं। वे लिखती हैं—"आज के विराट

मानव की व्यथा का समुद्र आज के लेखक को जीवन का कोई महान तथ्य, अमूल्य सत्य न दे सकेगा, ऐसा विश्वास कठिन है। इस दुर्भिक्ष की ज्वाला का स्पर्श करके हमारे कलाकारों की लेखनी-तूली यदि स्वर्ण न बन सकी, तो उसे राख हो जाना पड़ेगा। किन्तु ऐसी कल्पना करना भी सच्चे कलाकार का अपमान करना है।...जिस बंगभूमि के पुत्र भारतीय ज्ञान-विज्ञान तथा संस्कृति के प्रहरी रहे, वह तो हमारे आदर्शों की सजीव प्रतिमा है। उसे जिस व्यवस्था के कारण इतना असहाय होना पड़ा है, उसके प्रति हमारा जितना सक्रिय विरोध हो, थोड़ा है। बंग की जो संतति इस दुर्भिक्ष की बलि हो गई, उसकी स्मृति हमारे भविष्य का आलोक रहेगी। उसकी जो सन्तान आज विपन्न है, उसके प्रति हमारा स्नेह स्थायी और सहयोग निश्चित है।''[85]

'बंगदर्शन' में ग्यारह चित्र और नौ कविताएँ संकलित हैं। चित्रों में महादेवी वर्मा, शम्भूनाथ मिश्र, मीना अनद और वनलता बनर्जी के चित्र प्रमुख है। मुखपृष्ठ पर महादेवी का बनाया हुआ 'अन्नपूर्णा' नामक चित्र है, जिसमें अकाल की विभीषिका को दर्शाया गया है। उनके एक हाथ में अमृत का पात्र है और दूसरे में अन्न भण्डार को दिखाया गया है और नीचे चारों ओर पीड़ित जनसमाज अन्न के लिए हाथ पसारे हुए हैं ओर ऊपर से काल अन्नपूर्णा के हाथ का अन्न भण्डार उठा रहा है। अन्नपूर्णा की मुखमुद्रा में इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप होने वाली विरक्ति, क्षोभ, ग्लानि, कुण्ठा, और विवशता को स्पष्ट व्यक्त कर देती है।

कविताओं में सबसे पहले महादेवी वर्मा द्वारा अथर्ववेद के पृथ्वीसूक्त के कतिपय अंशों का अनुवाद किया गया है और इस अनुवाद को 'भूवन्दना' शीर्षक दिया गया है। महादेवी द्वारा किये गये अनुवाद के सम्बन्ध मोहनसिंह सेंगर लिखते है—'अनुवाद के विषय में कुछ कहना छोटे मुँह बड़ी बात होगी। इससे अधिक पृथ्वी-सूक्त के अर्थ ओर छन्द की रक्षा शायद ही कोई कर पाता।''[86]

'बंगदर्शन'के अन्तर्गत पहली कविता माखनलाल चतुर्वेदी की 'बंगजननी' है। जिसमें उन्होंने पहले तो बंगाल की स्वर्णिम देन का वर्णन किया गया है और फिर अकाल के परिणाम स्वरूप बंगाल की हीनावस्था का मार्मिक चित्र खींचा है—

उसी बंग को आज समय क्या भूखा मारे?
वही बंग क्या आज दरबदर हाथ पसारे?

उसी बंग के बेटे-बेटी बेचें जावें?
महतर की गाड़ियाँ मृतक शव खेचे जावें?[87]

इसके बाद मैथिलीशरण गुप्त की कविता है जिसका शीर्षक है—'संसार' इस कविता में उन्होंने अकाल के पश्चात जनता को उचित सुविधा न देने वाले व्यक्तियों की कटु आलोचना निम्न शब्दों में की है—

"मृत्यु के बदले जहाँ जन ही जनों को मारते हैं,
आप अपनी-सी पराई पीर कौन विचारते हैं।
स्वर्ण मृग-सा रक्षकों का रूप भक्षक धारते हैं,
दुरित घी पर-घन-घरा पर हाथ पैर पसारते हैं।
शान्ति पर डाले खड़ा है शस्त्र शासन सघन घेरा।"[88]

तीसरी कविता सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला की 'पाँचक' कविता है और उसके बाद रामकुमार वर्मा की कविता है—'मानवजीवन की रेखा।' उन्होंने भी बंगाल के अकाल से त्रस्त मानव की करुण और मार्मिक चित्र कविता के माध्यम से खींचे है—

यह है अपना देश,यही है अपना प्रिय के बंगाल
जाग रहे हैं जहाँ प्राण, पर देह बनी कंकाल।[89]

इसके पश्चात 'हरिवंशराय बच्चन' की कविता है, जिसका नाम है—बंगाल का अकाल। इलाचन्द्र जोशी की कविता 'विजनवती' में प्रकाशित हो चुकी हैं। उसी को इसमें भी स्थान मिलता है। सातवीं कविता का शीर्शक है—'रासमणि' जिसके रचयिता सियारामशरण गुप्त है। इसमें अकाल से त्रस्त एक ग्रामीण महिला के जीवन की मर्मस्पर्शा कहानी व्यक्त की गई है। इसकी भूख के कारण ही मृत्यु हो जाती है। इसकी निम्नपंक्तियाँ तो मानों हृदय को चीर ही देती है—

सहसा अभय-ओज ज्यों फैला उस सूखे आनन पर
लड़ सकती है प्रेतों से वह स्वयं प्रेत ही बनकर![90]

- 'उद्बोधन' शीर्षक कविता गंगा प्रसाद पाण्डेय की हे जो अपनी भावव्यंजना में पूर्ण समर्थ है। इस संकलन का अंत में पूर्ण समर्थ है। इस संकलन का अंत महादेवी वर्मा की 'बंगवन्दना' नामक कविता किया गया है। इसे 'भव्य भारत की अमर कविता' कहकर बंग-भू की वंदना की गई है। वे बंगाल की अंतर्निहित शक्तियों को जागृत करते हुए कहती हैं—

शक्ति की निधि अश्रु से क्या श्वास तेरे तोलते हैं?
आह तेरे स्वप्न क्या कंकाल बन-बन डोलते हैं?

अस्थियों की ढेरियाँ हैं

जम्बुकों की फेरियाँ हैं,

'मरण केवल मरण' क्या संकल्प तेरे बोलते हैं

भेंट में तू आज अपनी शक्तियों की चेतना ले![91]

'बंग दर्शन' की विषय वस्तु का उपर्युक्त वर्णन स्पष्ट करता है कि तत्कालीन कवियों पर समसामयिक न होने का आरोप कितना निराधार है। ये सभी कवि बंगाल के अकाल से पीड़ित लोगों के प्रति सहानुभूति एवं संवेदना ही व्यक्त नहीं करते वरन् उत्तेजित होकर आक्रोश में भरकर ज़िम्मेदार व्यक्तियों की कटु आलोचना भी करते हैं। यह संकलन और उसमें व्यक्त यह दृढ़ स्वर—उस दूषित व्यवस्था के प्रति—जिसके कारण लाखों लोग काल का ग्रास बन गए—विरोध और विद्रोह की तीव्र व्यंजना करता है। महादेवी इस अकाल को दैव पर निर्भर न करके मनुष्य कृत मानती हैं और उन लोगों का चेहरा उजाकर करने का प्रयत्न करती है जिसके कारण बंगदेश की ऐसी दुर्दशा हुई है। 'बंगदर्शन' में व्यर्थ की करुणा प्रदर्शित नहीं की गई है बल्कि इन सबकी कविताओं में बंग प्रदेश की जनता के साथ सहानुभूति व्यक्त करते हुए शेष का भी उचित सम्मिश्रण है। 'विशालभारत' में रामविलास शर्मा द्वारा की गई 'बंगदर्शन' पर निम्न टिप्पणी इसके महत्व को रेखांकित करती है—"इस पुस्तक का विशेष महत्व यह है कि उसने 'कला-कला के लिए,' वाले सिद्धान्त को सदा के लिए दफना दिया है। यहाँ पर भारत-भारती की राष्ट्रीय परम्परा और छायावाद की विद्रोही धारा एक साथ बंगाल की पीड़ा से द्रवित होकर गंगा-यमुना की भाँति प्रगतिवादकी सरस्वती से मिल गई है। कोई भी साहित्य युग से दूर रहकर जीवित नहीं रह सकता। महादेवी जी ने बंगदर्शन की भूमिका लिखकर हिन्दी के नये पुराने सभी साहित्यिकों के लिए एक घोषणापत्र तैयार कर दिया है। नयी कविता उसके जितना ही अनुकूल होगी, उतना ही वह हमारी भाषा और साहित्य का माथा ऊँचा करेगी।"[92] निश्चय ही, 'बंगदर्शन' महादेवी की रचनायात्रा में नये आयाम जोड़ता है।

सप्तपर्णा–

'सप्तपर्णा'महादेवी द्वारा किए गए अनुवादों का संकलन है जिसका प्रकाशन सन् 1960 में हुआ है। इसमें महादेवी ने संस्कृत कवियों की प्रतिनिधि कवितओं को हिन्दी में काव्यरूप में प्रस्तुत किया है। अनुवाद तो वैसे ही अत्यन्त दुष्कर कार्य माना जाता रहा है क्योंकि अनुवाद अंतत अपूर्ण ही रहता है। इसमें मूल रचना की आत्मा को सुरक्षित रखना आसान नहीं है। महादेवी स्वयं 'अपनी बात' के अन्तर्गत

स्वीकार करती हैं—"भाषा विचारों एवं मनोभावों का परिधान है और इस दृष्टि से एक विचारक या कवि की उपलब्धियाँ जिस भाषा में व्यक्त हुई है; उसमें उन्हें दूसरी वेशभूषा में लाना असंभव नहीं तो दुष्कर अवश्य रहता है।"[93] किसी भी कवि के लिए अपनी ही अनुभूतियों की पुनः आवृत्ति करना कठिन होता है और उस पर युगों पीछे होने वाले कवियों की अनुभूतियों की पुनरावृत्ति तो निश्चय ही आसान नहीं है लेकिन फिर भी महादेवी वर्मा के सुयोग्य हाथों में पड़कर यह अनुवाद कार्य अत्यन्त प्रशंसनीय बन पड़ा है। यद्यपि महादेवी ने सप्तपर्णा के अन्तर्गत जिन अंशों को अनुवाद के लिए लिया है, पुस्तक में उनके मूल अंशों को उद्धृत नहीं किया है। उन्हें मूल अंशों को उद्धृत करने की कोई आवश्यकता भी प्रतीत नहीं होती। उन्होंने अपनी बात के अन्तर्गत स्वीकार किया है—"जिनका संस्कृत मूल से परिचय है, उनके निकट अनुवाद पढ़ने का आयास चले हुए राजमार्ग की ओर पगडंडियों से लौटने के समान है। और जो संस्कृत से अपरिचित और उसकी दुरूहता सम्बन्धी किंवदंतियों से अतिपरिचित है, वे संस्कृत के साथ मुद्रित हिन्दी की पुस्तक से भी सभीत रहते हैं। [94]

'सप्तपर्णा' में महादेवी ने आर्षवाणी से लेकर वाल्मीकि, थेरगाथा, अश्वघोष, कालिदास, भवभूति, तथा जयदेव की रचनाओं के कतिपय मधुर अंशों को अनुवाद रूप में प्रस्तुत किया है। आज के व्यस्तता और कोलाहल से भरे हुए जीवन में यह अत्यन्त आवश्यक हे कि हमें अपने स्वर्णिम अतीत का भी ज्ञान होता रह क्योंकि जीवन में विद्यमान विविध विरोधात्मक परिस्थितियों के बीच और जीवन में प्रगति तथा अपनी मानसिक वृत्तियों के समुचित विकास के लिए अतीत का महत्व अत्यन्त बढ़ जाता है। इसीलिए महादेवी द्वारा किया गया संस्कृत न जानने वाले व्यक्तियों को संस्कृत साहित्य से परिचित कराने का कार्य अत्यन्त महत्वपूर्ण बन पड़ा है।

'सप्तपर्णा' का प्रारम्भ आर्षवाणी के अनुवाद से हुआ है। निम्न पंक्तियों में प्रातःकालीन उषा की सुन्दरता को मनोहारी ढंग से व्यंजित किया गया हैं

आ रही उषा ज्योति स्मित।

प्रज्ज्वलित अग्नि है लहराती आभा सित।[95]

उषा, ज्योतिष्मती, जागरण, बोध, अग्निगान, प्रश्न, वन्दना, शांति स्वप्न, साम्यमन्त्र, अभय, गृहप्रवेश, स्वस्ति के बाद वेदों के अंशों का अनुवाद प्रस्तुत किया गया है। वेदों के अंशों का अनुवाद प्रस्तुत किया गया। फिर वाल्मीकि, रामायण, थेरगाथा, अश्वघोश, कालिदास के रघुवंश, मेघदूत, ऋतुसंहार, अभिज्ञान शाकुन्तल का अनुवाद है। निम्न पंक्तियाँ अत्यन्त हृदयस्पर्शी बन पड़ी हैं जिसमें शकुन्तला को विदा

करते समय उसके पिता ऋषि कण्व जब इतने व्यथित हो गए हैं तो फिर सामान्य व्यक्तियों की तो बात ही क्या है—

जब ममता से इतना विचलित,
व्यथित हुआ वनवासी का मन,
तब दुहिता विछोह नूतन से,
पाते कितनी व्यथा गृहीजन![96]

सम्पूर्ण सप्तपर्णा ऐसे ही मार्मिक उद्गारों से भरी हुई है। महादेवी की प्रतिभा का दर्शन इसमें हमें पग-पग पर होते हैं।

लेकिन जयशंकर त्रिपाठी महादेवी वर्मा द्वारा किए गए अनुवाद में कुछ दोष भी गिनाते हैं। उन्होंने कुछ उदाहरणों द्वारा स्पष्ट किया है कि अनुवाद में प्राचीन कवि द्वारा अभिप्रेत अर्थ छूट गया है और महादेवी ने उसपर गलत अर्थ का आरोपण कर दिया है। वे कालिदास के कुमार-सम्भव के एक छंद का मूल उद्धृत करते हुए अर्थ वैषम्य की ओर दृष्टिपात करते हुए लिखते हैं—

अस्त्युत्तरस्या दिशि देवतात्मा
हिमालयो नाम नगाधिराजः
पूर्वा परौ तोयनिधि अवगाह्य
स्थितः प्रथिव्या इव मानदण्डः।

महादेवी द्वारा किया गया इसका अनुवाद इस प्रकार है—

पूर्व और पश्चिम सागर तक
भू के मानदण्ड सा विस्तृत
उत्तरदिशि में दिव्य हिमालय
गिरियो का अधिपति है शोभित।[97]

उपर्युक्त पद्यांश में जयशंकर त्रिपाठी चार शब्दों के अर्थ में महादेवी के मत से भिन्न मत व्यक्त करते हैं। ये शब्द है—देवतात्मा, अवगाह्य, स्थितः, मानदण्डः।मूल में देवतात्मा हिमालय के लिए प्रयुक्त किया गया

है और आत्मा चेतन है जबकि महादेवी ने अनुवाद में इसके लिए दिव्य शब्द का प्रयोग किया गया है, जो अचेतन का द्योतक है। मूल में अवगाह्य शब्द का अर्थ है—पूर्वी तथा पश्चिमी समुद्रों में घुसकर आलोड़न करने वाला हिमालय। जबकि महादेवी ने इसे विस्तृत के अर्थ में प्रयुक्त किया है। स्थितः शब्द मूल में हढ चेतन आत्मा की सावधान स्थिति का संकेतक है जबकि महादेवी ने इसे विस्तृत के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है। मानदण्ड का अर्थ कालिदास ने पृथ्वी के विस्तार को एक बार में ही माप देने वाला मापक माना है जबकि महादेवी ने इसे विस्तृत के अर्थ में ही समाहित कर दिया है। इसी प्रकार अन्य उदाहरणों द्वारा भी उन्होंने मूल रचना से महादेवी के अनुवाद की भिन्नता सिद्ध की है।

महादेवी द्वारा पुस्तक में भू अनुवाद के साथ मूल न दिए जाने को भी वे उचित नहीं मानते क्योंकि, "मूल न रहने से विज्ञ पाठक उनके भ्रष्ट अनुवाद का अनुमान नहीं कर पाएँगा।[98]

स्पष्ट है कि आलोचना अथवा वाद-विवाद प्रत्येक रचना के साथ अनिवार्य रूप से जुड़ी हुई है लेकिन इससे रचना का महत्व कम नहीं हो जाता। निश्चय ही'सप्तपर्णा'इन आलोचनाओं के बावजूद भी हिन्दी के पाठकों को संस्कृत साहित्य की धारा में अवगाहन कराने में सफल रही है। महादेवी वर्मा द्वारा किया गया यह प्रयास प्रशंसनीय है।

हिमालय–(1966)

'हिमालय'का प्रकाशन उस समय हुआ जब भारत की उत्तरी सीमा से चीन ने आक्रमण कर दिया था तो सभी साहित्यकार एक बार फिर एक ही झण्डे के नीचे एकत्रित हुए और महादेवी वर्मा ने इनका नेतृत्व किया। देश के स्वाभिमान और साहस को जागृत करने के लिए उन्होंने आर्षवाणी से लेकर अब तक के कवियों द्वारा हिमालय पर जो भी कविताएँ लिखी गई थी, उस सबका संकलन करके पुस्तक के आकार में प्रकाशित करवाया। इसके विषय में महादेवी लिखती हैं—"हमारे राष्ट्र के उन्नत शुभ्रमस्तक हिमालय पर जब संघर्ष की नील लोहित आग्नेय घटाएँ छा गई, तब देश के चेतना केन्द्र ने आसन्न संकट की तीव्रानुभूति देश के कोने-कोने में पहुँचा दी।"[99] स्पष्ट है कि साहित्यकारों और चिन्तक वर्ग ने जब-जब भी देश के सामने संकट के बादल छाए है, उन्होंने एकजुट होकर इन समस्याओं के समाधान का प्रयत्न किया है। महादेवी लिखती हैं—"इसी से हिमालय के आसन्न संकट ने उसकी लेखनी को ओज के शंख और आस्था की बंशी के स्वर दिए हैं।"[100] महादेवी ने आर्षवाणी, स्मृत्यार्चन, हिमवान, श्री महाशिवपुराण, मत्स्यपुराण, वाल्मीकि रामायण, महाभारत, कुमार सम्भव, मेघदूत, किरातार्जुनीयम् जैसे संस्कृत ग्रन्थों में हिमालय पर जो पंक्तियाँ है, उनका महादेवी ने हिन्दी में अनुवाद किया है। निश्चय ही यह अनुवाद अत्यन्त उत्कृष्ट कोटि का बन पड़ा है। इसे

पश्चात तुलसीदास, टैगोर की कविताओं को लेते हुए नये कवियों की कविताओं को इस संग्रह में स्थान मिला है। सबसे अन्त में महादेवी की हिमालय पर लिखी हुई रचना को स्थान मिला है। 'हिमालय' और 'बंगदर्शन' की रचना महादेवी को यथार्थ की भूमि से जोड़ता है और सिद्ध करता है कि व्यक्तिगत अनुभूतियों वाली कवयित्री ने जब भी आवश्यकता हुई अपनी लेखनी और सामाजिक कार्यकलाओं द्वारा विद्रोह को मुखर किया है।

महादेवी की समस्त काव्यकृतियों से इस संक्षिप्त अध्ययन से स्पष्ट है कि उनकी अनुभूतियाँ वयस्कता के साथ-साथ गंभीर से गम्भीरतम होती गई हैं।'नीहार'में जहाँ भावुकता का प्राधान्य है और अलंकरण की प्रवृत्ति अधिक है। वहीं'रश्मि' में यद्यपि'नीहार'की तुलना में कोई गुणातमक विकास तो अवश्य दृष्टिगत नहीं होता। फिर भी इसमें अनुभूति के स्थान पर चिन्तन प्रधान कविताएँ अधिक हैं। नीहार में महादेवी अन्तर्मुखी रही हैं लेकिन 'नीरजा' में पहुँचकर वह अपने भावों को अधिक सूक्ष्मता के साथ व्यक्त कर सकी हैं। कलात्मक दृष्टि से नीरजा के गीत उत्कृष्ट कोटि के हैं।'नीरजा'में भावनाओं पर संयम का आवरण है और भाषा में भी गरिमा के दर्शन होते हैं।'सान्ध्यगीत' में महादेवी ने वैयक्तिक सुख-दुख की सीमा को पार कर लिया है। इन गीतों में करुणा एवं वेदना की प्रमुखता होते हुए भी मधुरता का समावेश है।'दीपशिखा'के गीतों में साधना के प्रति आस्था निष्ठा एवं अडिग विश्वास प्रकट होता है। वे विश्व की अंधकारमयी स्थिति में अपनी साधना के दीप को निरन्तर प्रज्ज्वलित रखती हैं।'दीपशिखा' के बाद महादेवी काव्य क्षेत्र से विमुख होकर गद्य क्षेत्र की ओर उन्मुख हो जाती है। यद्यपि'बंगदर्शन'के और'हिमालय'के सम्पादन द्वारा वे उन आलोचकों को जवाब देती है जो उनपर निरन्तर वेदना में ही डूबी रहने का आरोप लगाते हैं।'सप्तपर्णा'द्वारा महादेवी अनुवाद कार्य को भी सफलतापूर्वक सम्पन्न करती है।'नीहार'से लेकर'सप्तपर्णा'तक के इस अध्ययन से महादेवी की मनोस्थिति में आए क्रमिक विकास पर भी पर्याप्त प्रकाश पड़ता है।

* * *

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

1. काव्यधारा, 1955, सं. शिवदान सिंह चौहान, पृ. सं. 19
2. राग-विराग, सं-रामविलास शर्मा, पृ. सं. 66
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल पृ. सं. 445
4. काव्यधारा, 1955 सं.—शिवदान सिंह चौहान, पृ. सं. 21
5. महादेवी साहित्य समग्र—9, सं. निर्मला जैन, पृ. सं. 423
6. महादेवी साहित्य समग्र—3 सं. निर्मला जैन पृ. सं. 410
7. महादेवी साहित्य समग्र—3 सं. निर्मला जैन पृ. सं. 410
8. महादेवी साहित्य समग्र—3 सं. निर्मला जैन, पृ. सं. 410
9. नीहार, 'परिचय', महादेवी वर्मा, पृ. सं. 5
10. नीहार, 'परिचय', महादेवी वर्मा, पृ. सं. 6
11. महादेवी का काव्य वैभव सं. रमेश चन्द्र गुप्त पृ. सं. 219
12. सांध्यगीत, महादेवी वर्मा, पृ. सं. 9
13. नीहार, महादेवी वर्मा,पृ. सं. 76
14. नीहार, महादेवी वर्मा पृ. सं. 18
15. नीहार, महादेवी वर्मा पृ. सं. 29
16. नीहार, महादेवी वर्मा, पृ. सं. 17
17. सुधा, दिसम्बर—1934 पृ. सं. 396
18. नीहार, महादेवी वर्मा, पृ.सं. 66
19. नीहार, महादेवी वर्मा, पृ. सं. 45

20. नीहार, महादेवी वर्मा पृ. सं. 41

21. महादेवी, संत्र शचीरानी गुर्दू, पृत्र सं. 69

22. सान्ध्यगीत, महादेवी वर्मा, पृ. सं. 9

23. महादेवी साहित्य समग्र—9 सं. निर्मला जैन, पृ. सं. 583

24. सांध्यगीत, महादेवी वर्मा, पृ. सं. 65

25. महादेवी, सं. इन्द्रनाथ मदान, पृ. सं. 94

26. महादेवी साहित्य समग्र—9 सं. निर्मला जैन पृ. सं. 108

27. महादेवी साहित्य समग्र—9 सं. निर्मला जैन पृ. सं. 131

28. महादेवी साहित्य समग्र—9 सं. निर्मला जैन पृ. सं. 113

29. महादेवी साहित्य समग्र—9 सं. निर्मला जैन पृ. सं. 136

30. रश्मि, महादेवी वर्मा, पृ. सं. 44

31. महादेवी अभिनंदन ग्रन्थ, सं. देवदत्त शास्त्री पृ. सं. 102

32. रश्मि, महादेवी वर्मा, पृ. सं. 24

33. रश्मि, महादेवी वर्मा, पृ. सं. 24

34. रश्मि, महादेवी वर्मा, पृ. सं. 65

35. रश्मि, महादेवी वर्मा, पृ. सं. 16

36. रश्मि, महादेवी वर्मा, पृ. सं. 13

37. रश्मि, महादेवी वर्मा, पृ. सं. 52

38. महादेवी, सं. इन्द्रनाथ मदान पृ. सं. 94

39. महीयसी महादेवी, ले. गंगा प्रसाद पाण्डेय, पृ. सं. 277

40. महादेवी अभिनंदन ग्रन्थ, सं. देवदत्त शास्त्री पृ. सं. 104

41. महीयसी महादेवी, गंगा प्रसाद पाण्डेय, पृ. सं. 278

42. नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ. सं. 16

43. नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ. सं. 21

44. नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ. सं. 13

45. नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ. सं. 15

46. नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ. सं. 26

47. नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ. सं. 30

48. नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ. सं. 31

49. नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ. सं. 27

50. नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ. सं. 32

51. नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ. सं. 45

52. नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ. सं. 33

53. नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ. सं. 86

54. नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ. सं. 99

55. नीरजा 'वक्तव्य', महादेवी वर्मा पृ. सं. 8

56. सांध्यगीत महादेवी वर्मा, पृ. सं. 9-10

57. सांध्यगीत महादेवी वर्मा, पृ. सं. 9

58. सांध्यगीत महादेवी वर्मा, पृ. सं. 10

59. सांध्यगीत महादेवी वर्मा, पृ. सं. 26

60. सांध्यगीत महादेवी वर्मा, पृ. सं. 50

61. सांध्यगीत महादेवी वर्मा, पृ. सं. 23

62. सांध्यगीत महादेवी वर्मा, पृ. सं. 35

63. सांध्यगीत महादेवी वर्मा, पृ. सं. 35

64. सांध्यगीत महादेवी वर्मा, पृ. सं. 48

65. सांध्यगीत महादेवी वर्मा, पृ. सं. 39

66. सांध्यगीत महादेवी वर्मा, पृ. सं. 39
67. सांध्यगीत महादेवी वर्मा, पृ. सं. 31
68. सांध्यगीत महादेवी वर्मा, पृ. सं. 79
69. सांध्यगीत महादेवी वर्मा, पृ. सं. 42
70. महायसी महादेवी, गंगा प्रसाद पाण्डेय पृ. सं. 298
71. महायसी महादेवी, गंगा प्रसाद पाण्डेय पृ. सं. 35
72. महादेवी संस्मरण ग्रन्थ सं. सुमित्रानन्दन पंत, पृ. सं. 130
73. दीपशिखा, महादेवी वर्मा, पृ. सं. 61
74. दीपशिखा, महादेवी वर्मा, पृ. सं. 63
75. दीपशिखा, महादेवी वर्मा, पृ. सं. 84
76. दीपशिखा, महादेवी वर्मा, पृ. सं. 138
77. दीपशिखा, महादेवी वर्मा, पृ. सं. 90
78. दीपशिखा, महादेवी वर्मा, पृ. सं. 109
79. महायसी महादेवी, गंगा प्रसाद पाण्डेय पृ. सं. 315
80. दीपशिखा, महादेवी वर्मा, पृ. सं. 147
81. दीपशिखा, महादेवी वर्मा, पृ. सं. 145
82. महादेवी, सं. इन्द्रनाथ मदान पृ. सं. 96
83. विशालभारत, मई 1944, पृ. सं. 343
84. विशालभारत, मई 1944, पृ. सं. 343
85. विशालभारत, मई 1944, पृ. सं. 343
86. विशालभारत, मई 1944, पृ. सं. 344
87. विशालभारत, मई 1944, पृ. सं. 344
88. विशालभारत, मई 1944, पृ. सं. 344

89. विशालभारत, मई 1944, पृ. सं. 344

90. विशालभारत, मई 1944, पृ. सं. 345

91. विशालभारत, मई 1944, पृ. सं. 345

92. विशालभारत, मई 1944, पृ. सं. 344

93. महादेवी साहित्य समग्र—9 सं. निर्मला जैन पृ. सं. 487

94. महादेवी साहित्य समग्र—9 सं. निर्मला जैन पृ. सं. 488

95. महादेवी साहित्य समग्र—9 सं. निर्मला जैन पृ. सं. 490

96. महादेवी साहित्य समग्र—9 सं. निर्मला जैन पृ. सं. 568

97. महादेवी साहित्य समग्र—9 सं. निर्मला जैन पृ. सं. 538

98. महादेवी साहित्य अभिनन्दन ग्रन्थ, सं. देवव्रत शास्त्री, पृ. सं.—93

99. हिमालय, महादेवी वर्मा, पृ. सं. 30

100. हिमालय, महादेवी वर्मा, पृ. सं.—30

* * *

चतुर्थ अध्याय

महादेवी के काव्य में अनुभूति एवं अभिव्यक्ति पक्ष

●

1. अनुभूति पक्ष

    1.1. वेदना

    1.2. करुणा

    1.3. रहस्य

    1.4. प्रकृति

2. अभिव्यक्ति पक्ष

    2.1. गेयतत्व

    2.2. भाषाा

    2.3. बिम्ब

    2.4. प्रतीक

3. महादेवी के काव्य को लेकर उठाए गए विवाद

कविता का जन्म मानवमन में उठने वाले विभिन्न भावों एवं मनोविकारों से होता है। यद्यपि मानव मन में निरन्तर भाव की लहरें उठती गिरती रहती हैं लेकिन तन्मयता के कुछ विशेष क्षणों को ही कवि शब्दबद्ध कर पाता है। इन विशेषः क्षणों को शब्दबद्ध करने में उसका परिवेश और वातावरण भी सहायता प्रदान करता है और उसके भावजगत का निर्माण करने में देशकाल, परम्परा, संस्कार तथा कवि की निजी प्रकृति और विशिष्ट अभिरुचि भी सहायक सिद्ध होती है। इस विशिष्ट भावभूमि के आधार पर ही वह अपने काव्य सत्य को प्रकट कर पाता है। इस प्रकार उसकी नितान्त आत्मपरक विशेषतायें उसके काव्य में दृष्टिगोचर होती हैं। कवि जिस किसी भी भाव का वर्णन करता है, उसके व्यक्तित्व की छाया उसके प्रत्येक वर्णन में छायी रहती है। यही काव्य का प्राणतत्व है, जो उसे अन्य समान धर्माओं से विशिष्ट बना देता है।

आदिकाल से ही अनुभव और शास्त्र के मध्य संवाद की स्थिति रही है। कविता में एक ओर तो व्यक्तिगत निष्ठा का प्राधान्य रहता है तो दूसरी ओर शास्त्र जनित ज्ञान भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसके साथ ही कविपर समाज, संस्कृति, दर्शन, साहित्य और धर्म जैसे बाह्य दबाव भी बार-बार पड़ते हैं। दूसरी ओर उसके निजी अनुभव भी अन्तर्दबाव के रूप में महत्वपूर्ण हो जाते हैं। प्राचीन साहित्य से ही काव्य में हम निजी अनुभव और शास्त्र का यह द्वन्द्व देख रहे हैं। कबीर को ही लें, कबीर यदि अपने काव्य में निजी अनुभव को ही सत्य मानते हैं, तो वहीं तुलसी शास्त्र ज्ञान को अपने काव्य रचना का आधार बनाते है। लेकिन विनयपत्रिका की रचना करते समय शास्त्रीय मर्यादा में जकड़े हुए तुलसीदास भी नितान्त निजी सुख दुखों की अभिव्यक्ति करने लगते हैं। इस प्रकार काव्य जीवन से लेकर जगत तक से सम्बन्धित व्यक्तिगत अनुभवों तथा परिवेश और परम्परा से अनुप्राणित होता है। हम महादेवी वर्मा के काव्य में भी शास्त्र और नितान्त वैयक्तिक अनुभवों—दोनों की प्रधानता पाते हैं। जिन्हें व्यक्त करने के लिए वे रहस्यात्मकता का भी आश्रय ग्रहण करती है और प्रकृति का भी सहारा लेती है और साथ ही इन भावों की अभिव्यक्ति में उत्कृष्ट कोटि के कला साधनों का प्रयोग करती है।

अनुभूति पक्ष–वेदना

प्राचीनकाल से ही वेदना को काव्य के जन्म का मूल कारक तत्व माना जाता रहा है। संसार में प्रथम

कविता का जन्म आदि कवि वाल्मीकि द्वारा क्रौंच पक्षी की मृत्यु से व्यथित होकर अनायास ही हो गया था और उनके हृदय से प्रथम श्लोक फूट पड़ा था—

"मा निषाद प्रतिष्ठात्वमगम शाश्वतीसमाः।
यत्क्रौञ्च मिथुनादेकमवधीः काममोहितम्।।" [1]

संस्कृत कवि भवभूति भी काव्य का एकमात्र रस करुणरस को ही स्वीकार करते हैं। कवि रवीन्द्र भी अपने अंतःस्थल में एक विरहिणी आत्मा की उपस्थिति को स्वीकार करते हैं जो समय-समय पर उनसे कुछ कहलाती रहती हैं। आधुनिक कवि सुमित्रानंदन पंत कविता का जन्म 'आह' की पीड़ा से मानते हैं। लिखते हैं—

"वियोगी होगा पहला कवि,
आह से उपजा होगा गान,
उमड़कर आँखों से चुपचाप,
बही होगी कविता अनजान।"[2]

महादेवी वर्मा ने भी वेदना का महत्व स्वीकार करते हुए लिखा है—'मनुष्य सुख को अकेले भोगना चाहता है और दुख सबको बाँटकर—विश्वजीवन में अपने जीवन को, विश्ववेदना में अपनी वेदना को इस प्रकार मिला देना, जिस प्रकार एक जल बिन्दु समुद्र में मिल जाता है, कवि का मोक्ष है।"[3] स्पष्ट है कि प्राचीनकाल से लेकर आधुनिक काल तक काव्य में वेदना का महत्व सर्वस्वीकृत रहा है।

महादेवी वर्मा अपने समर्थकों और आलोचकों के मध्य वेदना की कवयित्री के रूप में प्रसिद्ध रही हैं। उनका काव्य पीड़ा का काव्य है। वेदना से तात्पर्य यहाँ विरह वेदना से हैं। प्रिय की प्रतिमा को निरन्तर अपने हृदय में धारण किए हुए और आंसुओं से उसका अभिषेक करने वाली महादेवी के काव्य ने भला किस सहृदय को अपनी ओर आकृष्ट नहीं किया। उनका काव्य सम्पूर्ण लोक की वेदना को धारण करने पर भी भावमय है, अभाव का वहाँ कोई स्थान नहीं है। महादेवी को यह वेदना अत्यन्त प्रिय है और इस वेदना के परिणाम स्वरूप प्राप्त पीड़ा से अलग वे अपने जीवन का कोई महत्व स्वीकार नहीं करती है। इसीलिए वे निरन्तर इस पीड़ा को अपने हृदय में धारण किए हुए हैं। वे अपने प्रिय को पीड़ा में ढूँढ़ना चाहती है। वे लिखती हैं कि—

'तुमको पीड़ा में ढूँढ़ा

तुममे ढूँढूँगी पीड़ा।'[4]

महादेवी के मन में यद्यपि प्रियतम से मिलने के लिए अतिशय व्याकुलता है, किन्तु उनके दूर रहने पर जो वियोग है उसी में उन्हें आनन्द मिलता है। इसीलिए वे विरह को ही सर्वस्व मानकर अपना और अपने प्रिय का मिलन नहीं चाहती और कह उठती हैं—

'मिलन का मत नाम ले

मैं विरह में चिर हूँ।'[5]

सुख और दुख मानवमन की सहज प्रवृत्तियाँ है। मानवमन सुख का तो उपभोग अकेले भी कर सकता है। लेकिन दुख में वह सबको सम्मिलित करता है। यही कारण है कि वेदना से परिपूर्ण काव्य सभी के हृदय को प्रभावित करने की सामर्थ्य रखता है। महादेवी का हृदय दुख में भी सुख का अनुभव करता है और वह दुख के माध्यम से सम्पूर्ण विश्व का कल्याण करना चाहती है। वे कहती है—

'प्रिय! जिसने दुख पाला हो।

जिन प्राणों से लिपटी हो

पीड़ा सुरभित चन्दन सी,

तूफानों की छाया हो,

जिसको प्रिय-आलिंगन सी

वर दो यह मेरा आँसू,

उसके उर की माला हो।।''[6]

पी. वी. नरसिंहराव का महादेवी की वेदना के सम्बन्ध में विचार है कि ''उन्होंने दुख का सर्वव्यापी स्वरूप निरूपित किया; नश्वरता की सराहना की; अमरता के प्रति उदासीनता प्रकट की; मृत्यु को उत्सुकता से आमन्त्रण दिया—यह सब कुछ किया पर निराशावश नहीं, बल्कि एक विशिष्ट तथा अलौकिक आशा से प्रेरित होकर, वहआशा थी— अनन्त मिलन की' यहाँ आकर उनके मिलन सिद्धान्त का प्रयोजन और महत्व स्पष्ट विदित हो जाता है। अतः उनके दुखवाद की ओट में एक महान ध्येय से अनुप्राणित अजेय आशावाद कार्यशील पाया जाता है।'' [7]

संसार में वेदना का अस्तित्व दो रूपों में पाया जाता है—1. आध्यात्मिक वेदना 2. सांसारिक वेदना। सांसारिक वेदना भी दो प्रकार की मानी गई है—1. व्यक्तिगत वेदना 2. दूसरे प्राणी की पीड़ा से संवेदित एवं सहानुभूति से उत्पन्न वेदना। महादेवी की वेदना में सांसारिक पीड़ा से उत्पन्न संवेदना और आध्यात्मिक पीड़ा—दोनों का ही समन्वय हुआ है। इसलिए उनकी वेदना में व्यक्तिगत अभावों से उत्पन्न पीड़ा का अभाव है। उनकी वेदना में करुणा और त्याग का समावेश है। श्री गंगा प्रसाद पाण्डेय का विचार है कि, "महादेवी जी की यह व्यापक वेदनानुभूति विश्वकल्याण से अनुप्राणित अपराजेय आशा और उल्लास से संचारित होती हुई अदम्य कर्मशीलता तथा अडिग आस्था का आह्वान करने में सहज ही सक्षम एवं अत्यन्त उच्चाशयी है, इसमें सन्देह नहीं।" उनकी निम्न पंक्तियाँ वेदना की सार्थकता को स्पष्ट करती है—

एक घड़ी गा लूँ प्रिय मैं भी

मधुर वेदना से भर अन्तर

दुख हो सुखमय सुख हो दुखमय,

उपल बने पुलकित से निर्झर

मरु हो जावे उर्वर गायक।[9]

महादेवी की विरह वेदना में आध्यात्मिकता का भी समावेश हो गया है। इस आध्यात्मिक विरह वेदना की अग्नि में उनका जीवन स्वयं के लिए भी भार बन गया है और वे अपने प्रिय से अपनी शिथिल अवस्था का वर्णन करती हैं और उनसे अपनी झन्कार को भी विश्ववीणा में मिलाने के लिए आग्रह करती है—

विश्ववीणा में अपनी आज

मिला को यह अस्फुट झंकार![10]

महादेवी की विरह वेदना प्रारम्भ से ही विवाद के अनतर्गत रही है। विद्वानों का एक वर्ग इसे लौकिक मानता है जबकि दूसरा वर्ग इसे अलौकिक स्वीकार करता है। प्रथम के अन्तर्गत डा. नगेन्द्र, विनयमोहन शर्मा, शचीरानी गुर्टू आदि आते हैं और दूसरे में गंगा प्रसाद पाण्डेय, प्रकाश चन्द्र गुप्त, शांति प्रिय द्विवेदी आदि आते हैं। जबकि नन्ददुलारे बाजपेई का विचार है—'महादेवी जी की वेदना पहले व्यक्तिगत भावुकता अथवा दृढ़ भक्तिभावना के रूप में रही है, जो क्रमशः निखरती गई है।"[11] शचीरानी गुर्टू भी महादेवी

के काव्य में पीड़ा की प्रधानता का कारण उनके विफल प्रेम को मानती है। वे लिखती हैं—'यौवन के तूफानी क्षणों में जब उनका अल्हड़ हृदय किसी प्रणयी के स्वागत को मचल रहा था और जीवन-गगन के रक्ताभ-पट पर स्नेह-ज्योत्सना छिटकी पड़ रही थी, तभी अकस्मात विफल प्रेम की धूप खिलखिला पड़ी और प्राणों की धूमिलिका में अस्पष्ट रेखाएँ सी अंकित कर गई। आत्मसंयम का व्रत लिए हुए उन्होंने जिस लौकिक-प्रेम को ठुकराकर पीड़ा को गले लगाया—वह कालांतर में आंतरिक शीतलता से स्नात होकर बहुत कुछ निखर तो गई, किन्तु उनके हठीले मन का उससे कभी लगाव न छूटा।"[12] इसी प्रकार शचीरानी गुर्टू से मिलता-जुलता डा. नगेन्द्र का विचार है—"महादेवी का एकाकी जीवन उनके काव्य में स्पष्ट रूप से प्रतिबिम्बित है। किसी अभाव ने ही उनके जीवन को एकाकिनी बरसात बना दिया है, सुख और दुलार के आधिक्य ने नहीं।"[13] लौकिक अलौकिक के विवाद में पड़े बिना इतना तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि लौकिकता और अलौकिकता को उनके काव्य से अलग नहीं किया जा सकता। यदि उनका प्रिय 'अलौकिक' है तो प्रकाशचन्द्र गुप्त के अनुसार, "साधक की चिर खोज से निरन्तर उनका काव्य आप्लावित है—

पथ देख बिना दी रैन

मैं प्रिय पहचानी नहीं।"[14]

और यदि वह 'लौकिक' है तो विनय मोहन शर्मा के शब्दों में कह सकते हैं कि—"प्रिय और प्रियतम की इस कल्पित आँख-मिचौनी से उनका काव्य क्रीड़ामय हो उठा है—

"प्रिय चिरन्तन है सजनि

क्षण-क्षण नवीन सुहागिनी मैं।"[15]

महादेवी ने अपने काव्य में पीड़ा को प्रयास पूर्वक स्थान नहीं दिया है, वरन् इस पीड़ा ने उनके जाने बिना ही काव्य में स्थान बना लिया है और अब यह पीड़ा अथवा वेदना इतनी व्यापक हो गई कि महादेवी स्वयं अपना परिचय - 'नीरभरी दुख की बदली' के रूप में देती है। जिस प्रकार बदली बरसकर सम्पूर्ण संसार को सुख प्रदान करती है उसी प्रकार महादेवी के अन्तःकरण में दुखवाद का वही व्यापक रूप मिलता है जो सर्वत्र उनके काव्य में छाया हुआ है।

महादेवी के प्रथम काव्य ग्रन्थ 'नीहार' से ही पीड़ा और वेदना के दर्शन होने लगते हैं—

पीड़ा का साम्राज्य बस गया

उस दिन दूर क्षितिज के पार।[16]

और पीड़ा निरन्तर गीले कपड़ों के समान उनसे लिपटी रहती है—

पीड़ा मेरे मानस से

भीगे पट सी लिपटी है।[17]

महादेवी पर दुखवाद इस तरह छाया हुआ है कि वे संसार के सुन्दर तथा रमणीय पदार्थों में भी असुन्दरता के दर्शन करती हैं। फूल मुरझा जाते हैं, चन्द्रमा छिपने के लिए उदय होता है, मेघ पानी बरसा कर रिक्त हो जाते हैं, दीप जलकर मन्द पड़ जाता है और इस प्रकार यह सम्पूर्ण जीवन ही अस्थिरता से परिपूर्ण है और अस्थिरता के कारण ही वे इस संसार को माया का देश समझती है। उन्हें इस संसार में सर्वत्र पीड़ा के ही दर्शन होते हैं लेकिन इस पीड़ा से प्रेम के कारण यह महादेवी को प्रिय है। वे लिखती हैं—

'इस मीठी सी पीड़ा में

डूबा जीवन का प्याला'[18]

महादेवी ने 'रश्मि' की भूमिका में अपने दुखवाद पर बौद्धदर्शन के प्रभाव का स्पष्ट उल्लेख किया है और इन शब्दों को सभी आलोचकों ने अपना आधार बनाया है। महादेवी लिखती हैं—"बचपन से ही भगवान बुद्ध के प्रति एक भक्तिमय अनुराग होने के कारण उनकी संसार को दुखात्मक समझने वाली फिलॉसफी से मेरा असमय ही परिचय हो गया था। अवश्य ही उस दुखवाद को मेरे हृदय में एक नया जन्म लेना पड़ा।"[19] इसी आधार रामकृष्ण भारती महादेवी की वेदना को आध्यात्मिक मानते हैं वे महादेवी के दुखवाद को संसार के साधारण दुखवाद से भिन्न मानते हैं। वे महादेवी के काव्य में करुणा का वह अंश नहीं पाते जिससे प्रेरित होकर वाल्मीकि ने आदिकाव्य की रचना की थी। रामकृष्ण भारती लिखते हैं— "महादेवी की वेदना केवल इस संसार की ही वस्तु नहीं उसका आध्यात्मजगत से गहरा संबंध है और इसी कारण वह स्थायी है। उसका झुकाव वैराग्य की और अधिक है क्योंकि महात्मा बुद्ध की फिलॉसफी का प्रभाव उन पर अधिक पड़ा मालूम होता है और इसे वे स्वयं स्वीकार करती है।"[20] नन्ददुलारे बाजपेई भी महादेवी के काव्य में वैराग्य भावना का प्राधान्य मानते हैं। वे लिखते हैं—"महात्मा बुद्ध की भाँति नहीं (बुद्ध की मूर्तियों में दुख की मुद्रा नहीं मिलती) किन्तु बौद्ध संन्यासियों और संन्यासियों सरीखी एक चिन्ता मुद्रा, एक विरक्ति एक तड़प; शान्ति के प्रति एक अशान्ति महादेवी जी की कविता में सब जगह देखी जा सकती हैं।"[21]

यद्यपि महादेवी ने भगवान बुद्ध की वेदना की ओर उन्मुख फिलॉसफी को लौकिक रूपकों के माध्यम से सम्प्रेषणीय बनाया है और इसे श्रृंगार रस के दो भागों में से एक विप्रलम्भ श्रृंगार के अन्तर्गत

स्वीकार किया है। लेकिन श्याम नारायण वैजल इसे वैराग्य नाम दिए जाने को अस्वीकार करते हैं। वे लिखते हैं कि—"पर मैं इसे वैराग्य का नाम न देकर विप्रलम्भ ही का नाम दिया चाहता हूँ, क्योंकि इनके गीत 'रति' नामक स्थायी भाव के चारों तरफ प्रस्फुटित हुए हैं। उनसे वियोग प्रकट होता है। रहस्योन्मुख होने के कारण हमें वैराग्य नाम न देना चाहिए, क्योंकि ज्ञान-क्षेत्र का वैराग्य ही काव्यक्षेत्र में विप्रलम्भ-रस-प्रधान है। मिलन का अस्फुट आभास इनके गीतों में अंतर्निहित अवश्य है, पर इन 'स्वप्निल' मिलन की घड़ियों को अपनी आंतरिक वेदना के कारण विरह के अंतर्गत ही समझना चाहिए।"[22]

महादेवी की विरह वेदना अत्यन्त गम्भीर और व्यापक है। वह बिहारी की नायिका के सामन लौकिक नायक के विरह में नहीं तड़प रही है वरन् वह तो अलौकिक जगत से अपनी वेदना को जोड़ती है। इसी कारण उनकी वेदना में गम्भीरता की अजस्रधारा सदैव प्रवाहित हो रही है। इसमें उर्दू के दीवानों के समान आँधी और तूफानी विरह-वर्णन का सर्वत्र अभाव है। बादल के रूपक द्वारा महादेवी ने अपनी विरह वेदना को व्यक्त किया है—

क्या नयी मेरी कहानी्
विश्व का कण-कण सुनाता
प्रिय वही गाथा पुरानी!
सजल बादल का हृदय-कण
चू पड़ा जब पिघल भू पर
पी गया उसको अपरिचित
तृषित दरक पंक का उर,
मिट गयी उससे तड़ित सी
हाय वारिद की निशानी!
करुण यह मेरी कहानी।[23]

इसमें 'विश्व के कण-कण' ने उनके विरह को व्यापक बना दिया है। महादेवी के काव्य में व्यक्त वेदना में केवल गम्भीरता ही नहीं है वरन् उमसें पर्याप्त व्यापकता भी है। वह आकाश में रहने वाली बदली के समान विस्तीर्ण है। उनकी वेदना इतनी व्यापक है कि वह समस्त संसार को अपने रंग में रंग देने की सामर्थ्य रखती है। निम्न पंक्तियाँ उदाहरण के रूप में प्रस्तुत है—

मैं नीर भरी दुख की बदली,

स्पन्दन में चिर निस्पन्द बसा

क्रन्दन में आहत विश्व हंसा।[24]

गम्भीरता और व्यापकता के साथ महादेवी की विरह वेदना में तीव्रता की मात्रा भी है। यद्यपि इनके विरह में तीव्रता की मात्रा मीरा के समान नहीं हैं। जो अपने प्रिय के विरह में व्याकुल होकर गृह नगर तज कर जंगल-जंगल घूमी थी, जिन्होंने सामाजिक मर्यादा के सारे बंधन तोड़ दिए थे और गा उठी थी—मैं तो सांवरे के रंग रांची रे, अथवा हेरी मैं तो प्रेमदीवाणी मेरा दरद न जाणै कोय। परन्तु फिर भी आराम कुर्सी पर बैठकर संसार के दुख, वेदना और ईश्वरीय वियोग को देखने वाली महादेवी की आंखों ने भी विरह की अनुभूति के वर्णन में धोखा नहीं खाया है। श्याम नारायण वैजल लिखते हैं—"इनका वर्णन आराम कुर्सी से संबंध रखने के कारण मीरा जैसी कसक और पीड़ा को हमारे हृदय के सम्मुख लाकर नहीं खड़ा करता है, पर तो भी उसमें वैसी तीव्रता मौजूद है, जैसी हमें उन लेखकों के सत्काव्यों में प्राप्त होती है, जो अपनी लेखनी की सशक्तता के कारण अनुभवहीन बातों का भी अत्यन्त प्राकृतिक वर्णन कर जाते हैं।[25]

'रश्मि' काव्य ग्रन्थ में 'अपनी बात' के अन्तर्गत महादेवी स्वयं स्वीकार करती है—'संसार जिसे दुख और अभाव के नाम से जानता है वह मेरे पास नहीं है। जीवन में मुझे बहुत दुलार बहुत आदर और बहुत मात्रा में सब कुछ मिला है, परन्तु उस पर पार्थिव दुख की छाया नहीं पड़ सकी। कदाचित् यह उसी की प्रतिक्रिया है कि वेदना मुझे इतनी मधुर लगने ली है।"[26]

इलाचन्द्र जोशी भी महादेवी के शब्दों को ही आधार बनाकर कहते हैं कि महादेवी ने जब दुख की कठोरता का अनुभव ही नहीं किया तो उनके काव्य में व्यक्त वेदना सारहीन प्रतीत होती है। जैनेन्द्र का भी मानना है—"महादेवी जी की पीड़ा चाहकर अपनाई गई है, मीरा की अनिवार्य। मीरा अपने में बेबस और अपनी पीड़ा से छुटकारा पाने के लिए विकल हैं। वह प्यासी हैं, इसलिए उनमें पानी की पुकार है। महादेवी प्यास को ही चाहती मालूम होती है; इससे अनुमान होता है प्यास को उन्होंने जाना नहीं है। घायल घाव नहीं चाहता। जो अभी घाव ही चाहता है; मालूम होता है उसकी गति घायल की है नहीं। महादेवी विरह और वियोग में रस अधिक ढूँढ़ती है। इसका अर्थ है, कि विकलता उतनी अनुभव नहीं करती।"[27]

यद्यपि कई आलोचकों ने महादेवी की विरह वेदना को वास्तविक न मानते हुए उस पर अनेक आक्षेप किए हैं पर तत्वतः ऐसा नहीं हैं। जो दुख स्वार्थ की सीमा को स्पर्श नहीं करता, जो आत्मा में

विद्यमान रहता है, वह सांसारिक दृष्टि से भले ही वास्तविक न माना जाय परन्तु काव्य की दृष्टि से यथार्थतः वही परम सत्य है।

महादेवी की वेदना इतना तीव्र और हृदयस्पर्शी है कि वह वेदना का अनुभव न करते हुए भी वेदना के सागर में ही डूबी हुई नजर आती है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

शलभ मैं शापमय वर हूँ
किसी का दीप निष्ठर हूँ।[28]

अपनी विरह वेदना को तीव्र बनाने के लिए महादेवी ने प्रायः सभी संचारी भावों का प्रयोग किया है। जैसे प्रिय की स्मृति, उसका स्वप्न, उसकी आशा, उत्सुकता, प्रतीक्षा, व्याकुलता आदि का वर्णन बिलकुल लौकिक ढंग से हुआ है। निम्न पंकित्यों में स्वप्न संचारी भाव का हृदयस्पर्शी वर्णन है जिसमें नायिका का स्वप्न में प्रिय से मिलन हुआ है और मिलन का प्रत्यक्ष प्रभाव फूलों पर दिखाई पड़ता है। जिसमें अभी तक नायिका के आँसू और नायक के हास भरे हुए हैं। वे लिखती हैं कि—

कैसे कहती हो सपना है
अलि! उस मूक मिलन की बात
भरे हुए अब तक फूलों में
मेरे आँसू उनके हास।[29]

व्याकुलता संचारी भाव का उदाहरण निम्नपंक्तियां है जिसमें कवियत्री ने प्रिय की कल्पना आँसू के रूप में की है जो बार-बार नायिका की आँखों से गिर पड़ते हैं। वह कह उठती है—

वे आँसू बनकर मेरे
इस कारण ढुल-ढुल जाते
इन पलकों के बंधन में
मैं बाँध-बाँध पछताऊँ [30]

नायिका विरह में राधा की भाँति तन्मय हो जाती है है और विरह ही उसका आराध्य बन जाता है। विरह के आराध्य बनते ही द्वैत भावना समाप्त हो जाती है। तन्मय संचारी भाव का एक उदाहरण द्रष्टण्य है—

'आकुलता ही आज हो गई तन्मय राधा

विरह बना आराध्य द्वैत क्या कैसी बाधा।[31]

महादेवी के काव्य की नायिका में उसका प्रिय स्मृति बनकर खटका करता है और वे कह उठती हैं—

वे स्मृति बनकर मानस में

खटका करते हैं निशिदिन [31]

प्रतीक्षा संचारीभाव का भी वर्णन उनके काव्य में एक से अधिक स्थलों पर मिलता ही निम्न पंक्तियों में महादेवी अपनी पीड़ा को तब तक छूने नहीं देना चाहती, जब तक कि उनका प्रिय न आ जाए—

ठहरो बेसुध पीड़ा को

मेरी न कहीं छू लेना

जब तक वे आ न जगावें

बस सोती रहने देना।[33]

महादेवी के काव्य में पीड़ा का स्वरूप अपनी चरम सीमा तक पहुँचा हुआ है किन्तु उसमें कहीं भी निराशावाद नहीं है। यद्यपि उपर्युक्त संचारीं भावों में निराशा का आवरण मिलता तो है परन्तु उसका अंत दुख में सुख की संभावना के साथ हो जाता है। स्पष्ट है कि चाहे सुख के रास्ते पर चला जाय, चाहे दुख के रास्ते पर चला जाय परन्तु सीमा पर पहुँचकर न दुख रह जाता है और न सुख ही। दुख सुख की उपयोगिता मार्ग में ही है विरोधी भावनाओं की सीमाएँ एक ही स्थान पर मिलती हैं। महादेवी लिखती हैं—

है पीड़ा की सीमा यह

दुख का चिर सुख हो जाना [34]

महादेवी वेदना से कहीं भी निराशा नहीं होती वरन् वे अपनी आत्मा को दुख का स्वागत करने के लिए और अधिक दृढ़ बना लेती है। प्रियतम के पथ में आने वाले शूलों का अब उन्हें भय नहीं है। वह लिखती है—

प्रिय के सन्देशों के वाहक

में सुख-दुख भेटूँगी भुजभर।[35]

महादेवी की वेदना पर निराशावाद का आरोप लगाए जाने के सम्बन्ध में तत्कालीन पत्रिका 'विशाल भारत' में मुंशी रामनाथ सुमन लिखते हैं कि—"उनके काव्य का दुखवाद, समालोचकों द्वारा उपहसित निराशावाद का यही रहस्य है—कठोर हृदय समालोचक शायद यह नही समझ सकते कि दुखी होने में जो शान्ति मिलती है तथा जो सन्तोष और सुख है। वह दुनिया के शब्द 'सुख' में नहीं है।"[36]

स्पष्ट है कि महादेवी की वेदना साधारण घात-प्रतिघातों से प्रभावित होने वाली नहीं हैं। वह जीवन की समग्रता की स्वीकृति है। उनकी वेदना अत्यन्त व्यापक, गम्भीर और तीव्र है। गंगाप्रसाद पाण्डेय का विचार है—"यह वेदना जीवन में आस्था, आनन्द और सौन्दर्य तथा साहस की विधायिका है, किसी निराशा, पराजय और पलायन की कदापि नहीं, कयोंकि इसका उत्साह जीवन की अपूर्णता को देखकर उत्पन्न सहज संवेदना है, जो व्यक्ति सीमित न होकर समष्टि व्यापक है।"[37]

करुणा–महादेवी के काव्य में वेदना के साथ-साथ करुणा की अजस्र धारा भी निरन्तर प्रवाहित हो रही है। वेदना से यदि उनके काव्य का आरम्भ हुआ है तो उसका अन्त करुणा में हुआ है। महादेवी की रचनाओं के गहन अध्ययन-मनन के पश्चात उनके काव्य में करुणा की प्रधानता के निम्नलिखित कारण दृष्टिगत होते हैं—छायावाद की प्रमुख विशेषता के रूप में वेदना का स्वीकार्य प्राचीन काल से ही करुणरस का सर्वस्वीकृत महत्व, बौद्ध र्शन में व्याप्त करुणा का महादेवी पर प्रभाव, व्यक्तिगत रुचि तथा आस-पास का परिवेश। एक अन्य कारण पर भी आलोचकों ने ध्यान आकृष्ट किया है—वह है—असफल दाम्पत्य। लेकिन इससे सभी विद्वान सहमत नहीं है।

छायावादी काव्य में प्रारम्भ से ही वेदना का साम्राज्य रहा है। इस वेदना के दो रूप हैं—दुख और आँसू। सभी छायावादी कवियों के काव्य में दुख की अधिकता रही है जिसमें व्यक्तिगत पीड़ा से उत्पन्न दुख भी शामिल है और सामाजिक पीड़ा से उत्पन्न दुख भी समाविष्ट है। नन्द कुमार राय छायावादी कवियों में करुणा के जन्म के कारण को क्रांति की असफलता से जोड़ते हैं। वे लिखते हैं कि—'छायावादी कवियों ने अपने जीवन में बहुत से युद्ध और क्रान्तियाँ देखी हैं। क्रान्ति की विफलता ने ही उनके मानस को करुणा की भावना से अभिसिक्त किया।"[38] समसामयिक प्रवृत्तियों से प्रभावित होकर प्रायः सभी कवियों ने आँसू पर कविताएँ लिखी। सुमित्रानन्दन पंत लिखते हैं—

बिना दुख के सब सुख निस्सार,

बिना आँसू के जीवन भार;'[39]

और जयशंकर प्रसाद तो आँसू से इतना प्रभावित हो गए कि उन्होंने आँसू नामक एक ग्रन्थ ही लिख डाला—

जो घनीभूत पीड़ा थी

मस्तक में स्मृति सी छायी

दुर्दिन में आँसू बनकर

वह आज बरसने आई।[40]

इस प्रकार महादेवी पर भी अपने युगीन साहित्यकारों का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था और वह कह उठती है—

आँसुओं का कोष उर

दृग अश्रु की टकसाल।[41]

अश्रु को केवल छायावाद में ही प्रधानता नहीं मिली थी वरन् प्राचीन साहित्य में भी इसका उल्लेख मिलता है। सूरदास ने कृष्ण के वियोग में दुखी गोपियों की दशा का वर्णन करते हुए लिखा है—

निशि दिन बरसत नैन हमारे,

सदा रहति पावस ऋतु हमपैं, जब तें स्याम सिधारे।[42]

वेदना की इसी प्रधानता ने महादेवी के काव्य में करुणा को जन्म दिया है क्योंकि करुणा ही वेदना का अन्तिम चरण है।

करुणा प्राचीनकाल से ही साहित्य में स्थान पाती रही है। वाल्मीकि द्वारा प्रथम श्लोक का सृजन उनके हृदय में विद्यमान करुणा की भावना द्वारा ही सम्भव हो सका था। भवभूति ने तो उत्तर रामचरित नामक ग्रन्थ की रचना करुण रस में ही की थी और उन्होंने करुण रस को ही प्रमुख रस के रूप में मान्यता दी है और कहा भी गया— 'कारुण्य भवभूतिरेतनुते'। महादेवी भी करुणा को महत्व देते हुए छायावाद नामक निबन्ध के अन्तर्गत स्वीकार करती है कि—"करुणा हमारे जीवन और काव्य से बहुत गहरा सम्बन्ध रखती है। वैदिक काल में ही एक ओर आनन्द, उल्लास की उपासना होती थी और दूसरी ओर इस प्रवृत्ति के विरुद्ध एक करुण भाव भी विकास पा रहा था। एक ओर यज्ञ सम्बन्धी पशुबलि प्रचलित थी और दूसरी ओर 'मां हिस्यात् सर्वभूतानि' का प्रचार हो रहा था। इस प्रवृत्ति ने आगे विकास पाकर जैन धर्म के मूल

सिद्धान्तों को रूपरेखा दी। बुद्ध द्वारा स्थापित संसार का सबसे बड़ा करुणा का धर्म भी इसी प्रवृत्ति का परिष्कृत फल कहा जाएगा।''[43]

आधुनिक काल में भी करुणा का व्यापक प्रचार-प्रसार हुआ। भारतेन्दु युग में पौराणिक चरित्रों को काव्य का विषय बनाया जाना करुण भावना की सामान्यता को ही व्यक्त करता हैं द्विवेदी काल के कवियों ने भी संस्कृत साहित्य से उपेक्षित पात्रों को अपनी रचना का विषय बनाया। अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध द्वारा 'प्रिय प्रवास' की राधा के चरित्र को विस्तार दिया जाना और मैथिलीशरण गुप्त द्वारा 'साकेत' की उर्मिला का नये रूप में वर्णन करुणा की प्रेरणा के परिणाम स्वरूप हुआ है। स्वानुभूति के अन्तर्गत करुण भाव और व्यक्तिगत दुख की रेखा ही अस्पष्ट रहती है। करुण भाव और व्यक्तिगत दुख से समन्वित गीत का साधारणीकरण सभी के साथ हो जाता है। छायावाद के सभी कवियों में करुणा की प्रधानता रही है। इसी को लक्ष्य करके महादेवी लिखती है कि—''करुण भाव के प्रति कवियों का झुकाव भारतीय संस्कार के कारण है, पर उसे और अधिक बल सामयिक परिस्थितियों से मिल सका।''[44] महादेवी छायावाद के दुख से भरे हुए गीतों में शाश्वत करुणा का तत्व विद्यमान पाती है जो जीवन को उज्ज्वलता देता है।

महादेवी में विद्यमान करुणा की धारा पर बौद्धदर्शन का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। अपने निबन्ध में उन्होंने बोधिसत्व के दो गुण आवश्यक माने हैं—महामैत्री और महाकरुणा। महादेवी लिखती हैं कि—''महामैत्री उसे अन्य प्राणियों के लाभ के लिए अपना सर्वस्व त्यागने की शक्ति देतीं है और महाकरुणा के कारण वह सबको दुख से विमुक्त करने के लिए प्रयत्नशील रहता है।''[45] महादेवी बचपन से ही भगवान बुद्ध के करुणापूर्ण दर्शन से प्रभावित थी। करुणा की प्रधानता के दर्शन उनके काव्य में पग-पग पर होते हैं।

महादेवी के काव्य में करुणा की प्रधानता के कारण स्वरूप कुछ आलोचकों ने असफल दाम्पत्य को भी गिना है लेकिन यह कारण उचित नहीं प्रतीत होता क्योंकि काव्य में प्राचीन समय से ही करुणा को महत्व मिलता रहा है। छायावाद के तो प्रायः सभी कवियों ने करुणा को अपनाया है। इसीलिए महादेवी के काव्य में करुणा की प्रधानता के कारण स्वरूप उनका युगीन परिवेश और मानसिक बुनावट को उत्तरदायी ठहराया जा सकता है, किसी प्रकार की दमित काम वासना अथवा असफल दाम्पत्य को नहीं।

महादेवी के काव्य में करुणा का व्यापक प्रसार हुआ है। यहाँ तक कि वे स्वयं को 'करुणा का अभिनव वाहक' घोषित करते हुए लिखती है—

मैं गति विह्वल

पाथेय रहे तेरा दृगजल,

आवास मिले भू का अंचल,

मैं करुणा की वाहक अभिनव![46]

करुणा का जन्म मानव के ह्रदय में तब होता है, जब वह किसी दूसरे की पीड़ा को इतनी तीव्रता से अनुभव करता है कि उसमें स्व-पर का भेद मिट जाता है; दोनों एक हो जाते हैं और यदि मनुष्य भावनाओं में इस स्तर तक नहीं पहुँचता तो वह दूसरों के दुख को दूर करने के लिए प्रयत्नशील भी नहीं रहता। मानवजीवन में करुणा सबसे अधिक सबल लोक-मंगल विधायक भाव है। महादेवी ने अपने काव्य में करुणा के प्रतीक बुद्ध को स्मरण करते हुए लिखा है—

जाग बेसुध जाग।

अश्रु कण से उर सजया, त्याग हीरक हार,

भीख दुख की माँगने फिर जो गया प्रतिहार;

करुणा के दुलारे जाग![47]

यहाँ पर महादेवी ने बुद्ध के माध्यम से करुणा की व्याख्या की है। उनकी वेदना संवेदना में माध्यम से होती हुई करुणा का स्वरूप धारण करती हुई आत्मत्याग द्वारा दूसरों की पीड़ा को दूर करने के लिए उत्सुक है। उनकी वेदना के मूल में करुणा ही है। महादेवी के काव्य में करुणा आत्मविस्तार का साधन बन जाती है। करुणा का सबसे उपयुक्त आलम्बन मेघ प्राचीनकाल से ही रहे हैं। जो दूसरों को हितार्थ जल बरसा कर स्वयं रिक्त हो जाते हैं। महादेवी ने इसीलिए कई गीतों में मेघ को रूपक बना कर लिखा है—

मेघ सी घिर झर चली मैं!'[48]

अथवा

वे मेघ के समान मिट जाने का संकल्प लेती हैं—

"मैं मिटूँ ज्यों मिट गया घन।'[49]

जिस प्रकार बादल घिर कर बरसते हैं उसी प्रकार महादेवी संसार में चारों ओर व्याप्त वेदना की धरोहर को करुणा के रूप में परिवर्तित करके संसार में चारों ओर व्याप्त वेदना की धरोहर को करुणा के

रूप में परिवर्तित करके संसार में वितरित कर रही हैं। जिस प्रकार आकाश में छाया रहने वाली घटा स्वयं मिटकर पृथ्वी को हराभरा कर जाती है उसी प्रकार महादेवी भी स्वयं मिटकर संसार की समस्याओं को करुणा के द्वारा सुलझाना चाहती है। महादेवी की वेदना और उससे उत्पन्न करुणा के सम्बन्ध में गंगा प्रसाद पाण्डेय लिखते हैं—"यदि उनकी वेदना उनके व्यक्ति जीवन की पीड़ा की ही प्रतीक होती तो उसकी परिणति करुणा में न होकर ग्लानि में होती किन्तु उनकी वेदना में ग्लानि का कोई भाव नहीं मिलता।"[50]

फूल भी करुण भावना का आलम्बन रहा है, जो दूसरों को सौरभदान देकर स्वयं मुरझा जाते हैं। यद्यपि यह निष्ठुर संसार उसके महत्व को नहीं समझता और सूखने पर उसे जमीन पर फेंक देते हैं। महादेवी लिखती हैं—

कर दिया मधु और सौरभ
दान सारा एक दिन,
किन्तु रोता कौन है,
तेरे लिए दानी सुमन।[51]

यद्यपि यहाँ प्रत्यक्षतः संसार की स्वार्थपरता की ओर संकेत किया गया है लेकिन फिर भी फूल की यौवनकालीन सुखद स्थिति से उसकी अन्तिम दुखद परिणति की तुलना करते हुए करुण भाव की अभिव्यक्ति भी की गई है। महादेवी के व्यक्तित्व में दार्शनिक तथ्यों एवं सत्यों का इस प्रकार समावेश हुआ है कि उनकी अधिकांश रचनाओं में करुणा के साथ बौद्धिकता का आवरण भी अवश्य मिल जाता है। गणपति चन्द्र गुप्त महादेवी की उपर्युक्त कविता को करुण भाव की अभिव्यक्ति की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ कविता स्वीकार करते हैं। 'वीणा' में प्रकाशित अपने लेख में ब्रज किशोर चतुर्वेदी स्वीकार करते हैं—"वेदना की गहरी रेखाओं की विविधता, करुणा के अतल गाम्भीर्य के साथ-साथ हृदय की विह्वल प्रसन्नता का एक अजीब दृश्य है, जो देखते ही बनता है।[52]

रामकृष्ण भारतीय महादेवी की वेदना का विस्तार करुणा में स्वीकार नहीं करते 'साहित्य सन्देश' में प्रकाशित अपने लेख में वे लिखते हैं, 'उनके काव्य में वेदना प्रधान गीतों में करुणा का वह पुट नहीं जिससे प्रभावित होकर आदि कवि ने काव्य रचना की थी। महादेवी जी की वेदना करुणा में विलीन न होकर अपना निजीपन रखती है।"[53]

कुछ आलोचक महादेवी के काव्य में विद्यमान करुणा की धारा पर निराशावाद का प्रभाव स्वीकार करते हैं। यद्यपि प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में निराशा के कुछ क्षण अवश्य आते हैं लेकिन उनका कोई मूल्य

नहीं है। हाँ! निराशा का स्थायीरूप से मानव मन में बस जाना विघटन की ओर ले जाता है। महादेवी के काव्य में निराशा कभी भी विघटन की अवस्था तक नहीं पहुँचती है। इसी मत को स्वीकार करते हुए शैलबाला लिखती है—"महादेवी जी की पीठिका के रूप में, एक वाक्य जो मैं कहना चाहती हूँ; वह यह है—कि उनके काव्य में निराशा स्थायी भाव कभी नहीं रही है। मनन करने पर हमें उनकी कृतियों में जो भाव प्रमुख रूप से दृष्टिगोचर होते है वे हैं अडिग विश्वास, दुर्दम साहस अनन्त धैर्य, उत्कट कर्मठता और महान कर्तृत्य।

पंथ रहने दो अपरिचित

प्राण रहने दो अकेला।

क्या इस प्रकार की पंक्तियों का सृजन निरन्तर निराशा में रहने वाली कवयित्री कर सकती है।"[54]

यह तो आलोचकों की अपनी अपनी दृष्टि है लेकिन यह तो उनके काव्य का अध्ययन करने के बाद लगता है कि बाह्य जगत के सन्दर्भ में करुणा के विषय में पूरी तरह से नकारात्मक दृष्टिकोण नहीं अपनाया जा सकता है। लेकिन यह भी सच है कि जो संवेदना बाह्य जगत के प्राणियों के प्रति उनके गद्य में मिलती है वह काव्य में प्रायः एकांतिक होती हुई दिखाई देती है।

रहस्य–मनुष्य अपने जन्म के साथ ही जिज्ञासा और कौतुहल की प्रवृत्ति साथ लेता आया है और निरन्तर इस जिज्ञासा की सन्तुष्टि के लिए प्रयत्नशील भी रहा है। वास्तव में मानवजीवन साँसों, प्रश्नों और समाधानों का जीवन है। भारत भूमि प्रारम्भ से ही जीवन-जगत की समस्याओं को समझने और उनको सुलझाने में अग्रणी रही है और जिज्ञासा तथा उसके समाधान का यह प्रयत्न वेदों से लेकर आज तक अक्षुण्ण रूप से चला आ रहा है। मानव का ध्यान बहिर्मुखी प्रवृत्ति से सम्बनिधत होने के कारण सर्वप्रथम प्रकृति के स्थूल रूप पर जाता है और फिर स्थूल से सूक्ष्म पर होते हुए वह अपनी जिज्ञासा का विस्तार पाता है। इस प्रकार सत्य की खोज, जिज्ञासा और ज्ञान में प्रकृति महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करती है। जीवन और जगत से सम्बन्धित इस रहस्यात्मक प्रवृत्ति और ज्ञान की जिज्ञासा से अनुभूति का प्रारम्भ होता है। इस जिज्ञासा के सम्बन्ध में गंगा प्रसाद पाण्डेय का विचार है कि—"जिज्ञासा ऐसी वृत्ति है जो दृश्य के अन्तराल में अपने इच्छित विश्वासों और अपनी इच्छित आशाओं से मुक्त होकर प्रवेश करती है और सभी स्थितियों, परिस्थितियों को पार करती हुई सत्य की उपलब्धि पर ही विश्राम करती है।"[55] इस प्रकार जिज्ञासा से ही भावबोध जन्म लेता है और भावबोध के उन्मेष से जीवन ओर जगत में विद्यमान रहस्य के प्रति अनुभूति का उदय होता है। सृष्टि के मूल सत्य से सम्बन्धित जिज्ञासा जब बुद्धि का आश्रय लेती है तब उसके तर्कसिद्ध

बौद्धिक सिद्धान्त दर्शन को जन्म देते हैं और जब वह हृदय की संवेदनशीलता तथा अनुभूति के द्वारा संचरणशील होती है तो उसके सामान्यीकरण आध्यात्मिक काव्य को जन्म देते हैं। प्राचीन समय से ही दर्शन काव्य का अभिन्न अंग रहा है। कई विद्वान काव्य को दर्शन की पूर्णता के रूप में स्वीकार करते हैं। महादेवी सत्य के स्वरूप को लेकर अवश्य कवि और दार्शनिक में साम्य मानती हैं लेकिन साधन और प्रयोग की दृष्टि से वे दोनों को भिन्न मानती है। महादेवी दार्शनिक के सम्बन्ध में लिखती है कि—"दार्शनिक बुद्धि के निम्नस्तर से अपनी खोज आरम्भ करके उसे सूक्ष्म बिन्दु तक पहुँचाकर सन्तुष्ट हो जाता है।"[56] और जबकि कवि का दृष्टिकोण भिन्न है— "वह तो जीवन को, चेतना अनुभूति के समस्त वैभव के साथ स्वीकार करता है। अतः कवि का दर्शन, जीवन के प्रति उसकी आस्था का दूसरा नाम है।"[57]

इस प्रकार स्पष्ट है कि महादेवी का काव्य जीवन की स्वीकृति का काव्य है और उनके काव्य में निहित आध्यात्मिकता का तत्व उनकी आस्था के कारण है।

भारतीय साहित्य परम्परा में रहस्यवाद का जन्म इसी उपर्युक्त पृष्ठभूमि में हुआ है। रहस्यवाद का दर्शन हमें वेदों से ही होने लगता है और जो कई रूप बदल कर मूलतः एक होते भी आधुनिक काल तक विद्यमान रहा है। रामचन्द्र शुक्ल रहस्यवाद को परिभाषित करते हुए लिखते हैं—"साधना के क्षेत्र में जो अद्वैतवाद है, काव्य के क्षेत्र में वहीं रहस्यवाद है।"[58] लेकिन आधुनिक काल की छायावाद की शाखा के अन्तर्गत शुक्ल जी छायावाद शब्द का प्रयोग दो अर्थ में मानते हैं जिसमें एक अर्थ रहस्यवाद से सम्बन्धित है तथा दूसरा अभिव्यंजना पद्धति से सम्बन्ध रखता है। रामचन्द्र शुक्ल लिखते है—"एक तो रहस्यवाद के अर्थ में, जहाँ उसका सम्बन्ध काव्य वस्तु से होता है अर्थात जहाँ कवि उस अनन्त और अज्ञात प्रियतम को आलम्बन बनाकर अत्यन्त चित्रमयी भाषा में प्रेम की अनेक प्रकार से व्यंजना करता है।"[59] डा. रामकुमार वर्मा रहस्यवाद को परिभाषित करते हुए लिखते हैं—"रहस्यवाद आत्मा की उस अंतर्निहित प्रवृत्ति का प्रकाशन है, जिसमें वह दिव्य और अलौकिक शक्ति से अपना शान्त और निश्चल सम्बन्ध जोड़ना चाहती है और वह सम्बन्ध यहाँ तक बढ़ जाता है कि दोनों में कुछ भी अन्तर नहीं रह जाता है।"[60] गंगाप्रसाद पाण्डेय रहस्यवाद को परिभाषित करते हुए लिखते हैं—"आध्यात्मिक अनुभूतियों की मधुस्निग्ध रसमयी सजल अभिव्यक्ति ही रहस्यवाद है।"[61]

इस प्रकार स्पष्ट है कि मनुष्य प्रारम्भ से ही सृष्टि के रहस्य को जानने के लिए उत्सुक रहा है। अतः उस अव्यक्त, अज्ञात प्रिय को आलम्बन बनाकर हृदय की मधुर अनुभूतियों को व्यक्त करता है लेकिन प्राचीनकाल में इसके लिए योगदर्शन के इड़ा, पिंगला जैसे साधनों का भी आश्रय लिया गया है।

आधुनिककाल में रहस्यवाद का स्वरूप थोड़ा परिवर्तित हो गया। प्राचीनकाल के रहस्यवाद में चिन्तन और तर्क की प्रधानता थी जबकि आधुनिक काल में रहस्यवाद भावना और अनुभूति का सम्बल ग्रहण करके चलता है।

महादेवी वर्मा ने अध्ययन के दौरान वेद, उपनिषद और संस्कृत साहित्य का गहन मनन और अनुशीलन किया था। वे इनके दर्शन से पूर्णतयाः परिचित भी थी; इसलिए उनके काव्य में इन दर्शनों के कुछ तत्वों का मिलना स्वाभाविक ही था क्योंकि ये तत्व बीज रूप में उनके मस्तिष्क के किसी कोने में विद्यमान थे, और अनायास ही उनके काव्य में आ गए थे। यद्यपि युगीन परिस्थितियों के परिणामस्वरूप इसमें ज्ञान के स्थान पर रागात्मकता का अवश्य समावेश हो गया है। महादेवी रहस्यवाद के जन्म के कारणों का उल्लेख करते हुए लिखती है—"मानवीय सम्बन्धों में जब तक अनुराग जनित आत्मविसर्जन का भाव नहीं घुल जाता, तब तक वे सरस नहीं हो पाते और जब तक यह मधुरता सीमातीत नहीं हो जाती, तब तक हृदय का अभाव नहीं दूर होता। इसी से इस अनेकरूपता के कारण पर एक मधुरतम व्यक्तित्व का आरोपण कर उसके निकट आत्मनिवेदन कर देना, इस काव्य का दूसरा सोपान बना, जिसे रहस्यमय रूप के कारण ही रहस्यवाद का नाम दिया गया।"[62]

महादेवी के उपर्युक्त कथन में व्यक्त मधुरतम व्यक्तित्व का आरोपण और उसके प्रति आत्मनिवेदन से नन्द दुलारे बाजपेई सहमत नहीं हैं क्योंकि आत्मनिवेदन करने वाले बहुत से भक्त कवि है, जो धार्मिक दृष्टि से तो आदरणीय है, परन्तु जिन्हें रहस्यकाव्य का स्रष्टा नहीं माना जा सकता। नन्ददुलारे बाजपेई हमारा ध्यान आकृष्ट करते हुए लिखते हैं—"महादेवी जी ने अपने इस वक्तव्य में आवश्यक सतर्कता से काम नहीं लिया। यही नहीं, उन्होंने रूढ़िबुद्ध धार्मिक काव्य और वास्तविक रहस्यकाव्य का स्पष्ट अन्तर सदैव अपने सामने नहीं रखा, जिससे उनकी रचनाओं में स्थान स्थान पर पारदर्शी अध्यात्म की जगह रूढ़ि के चिह्न मिलते हैं।"[63] नन्द दुलारे बाजपेई के इस कथन से पूर्णतया सहमत नहीं हुआ जा सकता क्योंकि महादेवी का रहस्यवाद वेद, उपनिषद आदि से प्रभावित होते हुए भी अनुभूति और रागात्मकता के कारण अपनी विशिष्ट स्थिति रखता है।

हिन्दी के प्राचीन रहस्यवादी कवि साधनात्मक रहस्यवादी कहलाते थे। उनके रहस्यवाद की नींव आध्यात्मिकता पर आधारित थी और ज्ञान ही परमतत्व की प्राप्ति का एकमात्र साधन था। आधुनिक काल में व्यक्त रहस्यवाद भावात्मक है। इन कवियों का मूल आधार प्रेम है। प्रेम ही परमतत्व की प्राप्ति का सर्वोत्कृष्ट साधन है। कबीर हिन्दी साहित्य के सर्वप्रथम रहस्यवादी कवि हैं। उनका रहस्यवाद ज्ञान और

हठयोग की साधना पर अवलम्बित है। कबीर के प्रियतम निर्गुण निराकार हैं। कबीर ने भी परमतत्व के प्रति अपनी भावनाओं को व्यक्त करने के लिए लौकिक रूपकों का आश्रय ग्रहण किया है और अपने प्रिय के साथ दाम्पत्य भाव के साथ-साथ अनेक संबंधों को निरूपित किया हैं। वे लिखते हैं—'हरि मोर पिउ', मैं हरि की बहुरिया।' कबीर ने जहाँ अंधविश्वासों और धार्मिक रूढ़ियों के प्रति विद्रोह किया है वहीं वह अद्वैतवाद को भी स्वीकार करते हैं। वे लिखते हैं—

लाली मेरे लाल की, जित देखूँतित लाल।
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल।।[64]

सूफियों ने भी अद्वैतवाद का आश्रय लिया है लेकिन उनके काव्य में 'प्रेम की पीर' को प्रधानता दी गई है। इन्होंने सन्तों से भिन्न निर्गुण ब्रह्म को प्रेयसि और आत्माको प्रिय माना। सूफियों ने प्रकृति को परमात्मा का प्रतिबिम्ब मानकर उसी को परमात्मा तक पहुँचाने का साधन मानते हैं।

महादेवी के काव्य पर मीरा के प्रभाव की चर्चा आलोचकों ने बार-बार की हे लेकिन महादेवी को मीरा के स्तर पर रखना महादेवी को युगों पीछे फेंक देना है क्योंकि उन दोनों ने अलग-अलग युग में जन्म लिया है। अतः उन दोनों के रहस्यवाद में अपने-अपने युग का प्रभाव आना स्वाभाविक ही था। मीरा सगुण साकार की उपासिका थी और जबकि महादेवी निर्गुण-निराकार की। मीरा कृष्ण के वियोग में व्याकुल होकर तड़प उठी थी और लोक-लाज, घर, परिवार और सामाजिक मर्यादा के सभी बन्धन तोड़कर साधुसन्तों के समूह में शामिल हो गई थीं। किन्तु महादेवी के लिए सामाजिक सम्भ्रान्तता इतनी नगण्य वस्तु नहीं थी कि वे उस ओर ध्यान ही न देती। अतः उनका काव्य बौद्धिक संयम की सीमारेखा में बँधा हुआ है। मीरा कृष्ण के सगुण रूप का निरन्तर ध्यान किए रहती हैं जबकि महादेवी अपने असीम अव्यक्त प्रिय के प्रति अपनी भावना को प्रकृति के प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त करती है। मीरा ने योग की शब्दावली का भी अपने गीतों में प्रयोग किया है लेकिन महादेवी के काव्य में योगदर्शन के तत्व ढूँढ़ने पर भी नही मिलते। शैलेन्द्र मोहन झा, लिखते हैं कि—"मीरा ने जिस प्रकार अपने उपास्य के लिए आवेदन क्रंदन किया, उसी प्रकार महादेवी ने भी किया है। अन्तर इतना ही है कि मीरा रूप की साधिका है और महादेवी अरूप की आराधिका।"[65] यद्यपि महादेवी ने मध्ययुगीन रहस्यवादी अभिव्यक्ति के प्रभावों को स्वीकार करके उन्हें छायावादी प्रतीकों और बिम्बों में ढाल कर प्रस्तुत किया है किन्तु फिर भी उन्हें कबीर और मीरा की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। उनमें साधना का प्राधान्य था और महादेवी में रागतत्व का। सुमित्रानंदन पंत महादेवी के रहस्यवाद में मध्ययुगीन काव्य की केवल प्रतिध्वनि सुनते हैं। पंत लिखते हैं—"उनकी सी पीड़ा मीरा, कबीर किसी

कभी-कभी यह जिज्ञासा प्रश्न में बदल जाती है और वे पूछ उठती है—

'कौन तुम मेरे हृदय में'?[71]

महादेवी के काव्य में अद्वैतवाद का पर्याप्त प्रभाव है। अद्वैतवाद एकमात्र ब्रह्म को सत्य मानता है और ब्रह्म तथा जीवमूलतः एक है। उन दोनों में कोई अन्तर नहीं है। अद्वैतवाद को प्रतिपादित करने वाली अनेक पंक्तियाँ उनके काव्य में मिल जाती हैं—

"मैं तुमसे हूँ एक, एक है जैसे रश्मि-प्रकाश
मैं तुमसे हूँ भिन्न-भिन्न ज्यों घन से तड़ित विलास?[72]

समस्त संसार उसी प्रकाशपुंज की रश्मियाँ हैं अतः सब एक ही हैं यदि उनमें भिन्नता है भी तो वह वैसी ही है जैसे बादल से बिजली भिन्न होती है, किन्तु मूलतः वह एक ही है।

अलौकिकता और अद्वैतवाद के साथ लौकिक प्रतीकों का भी समावेश कर दिया गया है जिससे एक ओर काव्य में अनुभूति की प्रधानता हो गई हैं तो दूसरी ओर अभिव्यक्ति ग्राह्य होने के साथ साधारणीकरण भी सम्भव हो सका है। यही कारण है कि प्राचीनकाल के भक्त कवियों ने भी आत्मा-परमात्मा के संबंध को लौकिक रूपकों के माध्यम से व्यक्त किया है। 'ढोल गंवार शूद्र पशु नारी, सकल ताड़ना के अधिकारी' कहने वाले तुलसी को भी भक्त-भगवान के संबंध को दिखाने के लिए 'कामिनी नारी पियारी जिमि' जैसी पंक्तियाँ लिखने को विवश होना पड़ा और कबीर, जो हाथ में लुकाठी लेकर स्पष्ट शब्दों में घोषित करते हैं कि 'जो फूंके घर आपना, चले हमारे साथ' को भी अज्ञात अव्यक्त प्रिय को सुगम बनाने के लिए 'हरि भोर पिउ मैं हरि की बहुरिया' जैसी पंक्तियाँ लिखनी पड़ी थीं। अतः महादेवी के काव्य में लौकिक रूपकों के समावेश द्वारा प्रिय की अभिव्यक्ति की गई है जैसे निम्न पंक्तियाँ द्रष्टव्य है—

आकुलता ही आज हो गई तन्मय राधा।
विरह बना आराध्य द्वैत क्या कैसी बाधा।।[73]

अथवा, वे लिखती हैं—

तुम मुझमें प्रिय फिर परिचय क्या?[74]

महादेवी के काव्य में अद्वैतवाद के मायावाद की स्पष्ट झलक निम्न पंक्तियों में मिलती है इसमें वे स्पष्ट करती है—

'सखे! यह है माया का देश
क्षणिक है तेरा मेरा संग'[75]

इसमें संसार को माया का देश कहा गया है और उसे क्षणिक माना गया है और दूसरे उदाहरण में जगत को माया रूपी दर्पण माना गया है, जिसका प्रतिबिम्ब सत्य न होकर भ्रम है और माया के अज्ञान का ज्ञान न होने पर सत्य का ज्ञान हो जाता है—

टूट गया वह दर्पण निर्मम![76]

अद्वैतवाद को महादेवी के काव्य में पर्याप्त महत्व दिया गया है। विजयेन्द्र स्नातक लिखते हैं— "महादेवी ने अपनी कविता में रहस्यभावना को स्थान देते हुए यद्यपि अद्वैतमत की अवहेलना नहीं की है, किन्तु उसका अद्वैत काव्य की मृदुल-मोहक सरणियों में होकर माधुर्य सिक्त हो गया है।"[77]

महादेवी के काव्य में द्वैतवाद की भी कविताएँ मिलती हैं। द्वैतवाद के अनुसार, आत्मा ब्रह्म से भिन्न नहीं है। अतः वह ब्रह्म की ही तरह असीम और अनन्त है। वह स्वयं ब्रह्म भी है और उसका अंशभूत जीव भी—

बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ।[78]

महादेवी रहस्यवाद के लिए द्वैतवाद एवं अद्वैतवाद दोनों को स्वीकार करते हुए लिखती है "रहस्यभावना के लिए द्वैत की स्थिति भी आवश्यक है और अद्वैत का आभास भी, क्योंकि एक के अभाव में विरह की अनुभूति असम्भव हो जाती है और दूसरे के बिना मिलन की इच्छा आधार खो देती है।"[79] महादेवी ने ब्रह्म के समक्ष कहीं भी जीव के महत्व को कम नहीं होने दिया है वरन् वह गर्व के साथ घोषणा करती है—

चिन्ता क्या है हे निर्मम,
बुझ जाये दीपक मेरा।
हो जाएगा तेरा ही,
पीड़ा का राज्य अँधेरा।[80]

इस प्रकार महादेवी ने जीव के महत्व को ब्रह्म के समक्ष बहुत मधुर ढंग से व्यंजित किया है।

महादेवी ने किसी दर्शन विशेष के साम्प्रदायिक प्रभाव को ग्रहण नहीं किया वरन् अपनी अनुभूति को व्यक्त करने के लिए उन्हें जिस दर्शन अथवा वाद की आवश्यकता हुई, उसे स्वीकार कर लिया है।

उन्होंने निम्न पंक्तियों में अपने प्रिय को स्वामी मानकर हास्यभाव की भक्ति स्वीकार की है—

"क्या पूजा क्या अर्चन रे।

उस असीम का सुन्दर मन्दिर, मेरा लघुतम जीवन रे।[81]

महादेवी के काव्य में अलौकिकता कहीं-कहीं अध्यास और मृगमरीचिका के रूप में व्यक्त हुई है, जैसे निम्नपंक्तियाँ द्रष्टण्य है—

"पाने में तुमको खोऊँ, खोने में समझूँ पाना,

यह चिर अतृप्ति हो जीवन, चिर तृष्णा हो मिट जाना।"[82]

स्पष्ट है कि महादेवी की रहस्यभावना में उपनिषदों का यह मूलमंत्र सर्वत्र प्रवाहित होता हुआ दिखाई दे रहा है—'सर्व खल्विदं ब्रह्म नेहनानास्ति किञ्चन' अर्थात् सम्पूर्ण जगत ब्रह्म में है और जो विविध रूप में इस संसार में दिखाई पड़ता है वह सत्य नहीं है, भ्रम मात्र है। उपनिषदों की भाँति महादेवी ने भी ब्रह्म को 'रसो वै सः' माना है। वे यह भी मानती है कि प्रिय की मधुर भावना से समन्वित होकर प्रिय प्राप्ति की साधना मार्ग के सभी कष्ट मधुर लगने लगते हैं और साधिका ने सुख-दुख में एक अद्भुत सामंजस्य ढूँढ लिया है। दुख भी उसे सरस प्रतीत होने लगा हैं—

'विरह का युग आज दीखा

मिलन के लघु पल सरीखा'[83]

सभी रहस्यवादी कवि रहस्यवाद की अंतिम परिणति आत्मा द्वारा परमात्मा की प्राप्ति में मानते हैं लेकिन महादेवी इस सन्दर्भ में एक मौलिक उद्भावना की रचना करती हैं। वे परमात्मा की प्राप्ति नहीं चाहती वरन् उनको तो विरह के परिणामस्वरूप प्राप्त पीड़ा ही अभीष्ट है क्योंकि इसमें साधक निरन्तर प्रयत्नशील रहता है और अभीष्ट की प्रापित के बाद तो वह निष्क्रिय हो जाता है। निम्न पंक्तियाँ महादेवी की इस भावना को व्यक्त कर रहीं हैं—

'मिलन का मत नाम ले,

मैं विरह में चिर हूँ।'[84]

मध्ययुगीन संतों की रहस्यभावना के समान महादेवी ने कहीं भी परमतत्व के प्रति दैन्य का प्रदर्शन नहीं किया है। वरन् वह तो किसी भी तरह से स्वयं को ब्रह्म से छोटा नहीं मानती। उनका मानना है कि यदि ब्रह्म में अनन्त करुणा है तो उनमें असीम सूनापन है—

उनसे कैसे छोटा है

मेरा यह भिक्षुक जीवन

उनमें अनन्त करुणा है,

इसमें असीम सूनापन।[85]

महादेवी ने भी लौकिक रूपकों का आश्रय लिया है। लेकिन फिर भी वे अपने निजत्व को समाप्त करके प्रिय से मिलन की इच्छुक नहीं है। वह सगर्व घोषणा निम्न पंक्तियों में करती हैं—

सजनि, मधुर निजत्व हैं,

कैसे मिलूँ अभिमानिनी मैं।[86]

प्रिय-पथ में अनेक कठिनाइयाँ है लेकिन महादेवी इन कठिनाइयों से भयभीत नहीं है। वरन् उन्हें तो प्रिय के मार्ग में आने वाली बाधाएँ अत्यन्त प्रिय हैं, जैसा कि निम्न पंक्तियाँ में स्पष्ट है—

प्रिय-पथ के यह शूल

मुझे अति प्यारे ही हैं।[87]

रहस्यवादी कवियों ने प्रकृति के प्रत्येक कोने में अपने प्रिय के दर्शन किए हैं और महादेवी में भी इस प्रवृत्ति का अभाव नहीं मिलता। उन्होंने अपनी रहस्यभावना को जिन प्राकृतिक व्यापारों एवं संकेतों के माध्यम से व्यक्त किया है वे स्थल अत्यन्त हृदयस्पर्शी बन पड़े हैं। महादेवी उस अप्रत्यक्ष ब्रह्म और उसकी सौन्दर्य-सत्ता का उन्हीं सांकेतिक और प्राकृतिक व्यापारों द्वारा इशारा करती है जो अनेक बार व्यवहृत होकर मानव मन से काफी सामंजस्य प्राप्त कर चुके हैं। इसी से इनकी रहस्यभावना में मधुरता और लावण्य है। जैसा कि निम्न पंक्तियों से स्पष्ट है—

मुस्काता संकेत भरा नभ,

अलि! क्या प्रिय आने वाले हैं।[88]

श्याम नारायण वैजल महादेवी की रहसयभावना की प्रशंसा करते हुए लिखते हैं—"इनका रहस्यवाद पिंगल के नियमों को भंग करके खड़ा किया हुआ निरर्थक शब्दाडंबर नहीं, जैसा कि हम आधुनिक हिन्दी-कवियों में पाते हैं।"[89]

भारत आध्यात्म प्रधान देश होने के कारण यहाँ आध्यात्मिक अनुभूति दुर्बोध नहीं रही है। महादेवी

ने भी कहीं-कहीं अपनी अनुभूति को साधारण जनता के लिए हृदयंगम बनाने के लिए अपनी साधिका को गोपिका के रूप में प्रकट कर दिया है और निर्गुण, असीम, अव्यक्त प्रिय को सगुण साकार रूप प्रदान कर दिया है जैसा कि निम्न पंक्तियों में स्पष्ट हैं—

"जग ओ मुरली की मतवाली।

दुर्गम पथ हो ब्रज की गालियाँ

शूलों में मधुवन की कलियाँ,[90]

महादेवी ने अन्य रहस्यवादी कवियों के समान प्रतीक पद्धति का जमकर उपयोग किया है। परन्तु उनके रहस्यवाद की एक प्रमुख विशेषता यह है कि वह सिर्फ ज्ञान क्षेत्र की वस्तु नहीं है वरन् व्यावहारिक स्तर पर सेवा तथा करुणा को जीवनदर्शन के रूप में स्वीकार करता है। उनका रहस्यवाद अपने प्रिय के पथ को निरन्तर आलोकित करना चाहता है, जिसमें विश्वसेवा और लोककल्याण की भावना भी सन्निहित है। जैसा कि निम्न पंक्तियों से स्पष्ट है कि—

मधुर-मधुर मेरे दीपक जल

प्रियतम का पथ आलोकित कर।[91]

प्रियतम का पथ आलोकित करने की यह भावना महादेवी में बुद्ध की महाकरुणा द्वारा आई है। दुर्गाशंकर मिश्र भी महादेवी के रहस्यवाद में सेवा की प्रमुखता मानते हैं। वे लिखते हैं कि—"महादेवी ने रहस्यवाद को आत्मा का गुण माना है अतएव उनका रहस्यवादी जीवन सेवा का जीवनदर्शन ही है और उनकी रहस्यभावना उनके हृदय का सौन्दर्य है तथा यह विशिष्टता बहुत ही कम रहस्यवादी कवियों में दृष्टिगोचर होती है।"[92] इसी प्रकार 'विशाल भारत' पत्रिका में मुंशी रामनाथ सुमन महादेवी के रहस्यवाद की प्रशंसा करते हुए लिखते हैं—"सीमा और असीम, अन्त और अनन्त, मृत्यु और अमरता, दुख और सुख, सृष्टि और प्रलय जीवन के दो परम विरोधों को उन्होंने इतनी कोमलता से और इतने सुन्दर ढंग से एक कर दिया है कि हिन्दी साहित्य ही नहीं, विश्वसाहित्य उनके रहस्यवाद का ऋणी है।[93]

महादेवी का रहस्यवाद भी वाद-विवाद से परे नहीं रहा है। कुछ आलोचक उन्हें कबीर, जायसी, मीरा की परम्परा में स्थान देते हैं और कुछ उनके काव्य की पृष्ठभूमि आध्यात्मिक मानने को तैयार नहीं होते और उसे पूर्णतया लौकिक स्वीकार करते हैं, इसके मूल में कुण्ठा एवं अतृप्ति की भावना देखते हैं। नन्ददुलारे बाजपेई महादेवी के रहस्यवाद को मध्ययुगीन संतों के रहस्यवाद के समकक्ष मानते हैं और उसे धार्मिकता

की कोटि में परिगणित करते हैं। वे लिखते हैं—"प्रचुर कल्पनागुण के कारण महादेवी जी ने रहस्यात्मकता कभी खोई नहीं, किन्तु उनकी रचनाओं में भक्तों एवं निर्गुणियों की रूढ़ि भी कम नहीं मिलती।"[94] यद्यपि बाद में स्वयं नन्ददुलारे बाजपेई अपने ही मत से वैभिन्नय प्रकट करते हैं और उन आलोचकों को आड़े हाथों लेते हैं जो यह नहीं समझ पा रहे हैं कि वे किस जगत की बात कर रही हैं। नन्द दुलारे बाजपेई लिखते हैं—"यहाँ मैं उन महानुभावों को शुमार नहीं कर रहा हूँ जिनकी राय में रहस्यवाद किसी प्राचीन बर्बर युग की स्मृति है; मनुष्य की अविकसित बाल्यभावना की सृष्टि है और जो वैज्ञानिक विकास सिद्धान्त से बहुत दूर की चीज हो गई है। ऐसे लोग तो काव्याध्ययन के अधिकारी भी हैं, मैं नहीं मानता।"[95]

नगेन्द्र आधुनिक काव्य की आध्यात्मिकता में बिल्कुल भी विश्वास नहीं करते। इसलिए वे महादेवी के गीतों में व्यक्त असीम, अव्यक्त के प्रति प्रणय निवेदन को पूर्णतः असन्तोष और कामभावना की अतृप्ति से जोड़ते हैं। स्पष्ट शब्दों में नगेन्द्र लिखते हैं—"परन्तु बुद्धि के इस युग में, जैसा कि महादेवी जी ने स्वयं अपनी भूमिका में स्वीकार किया है, इस प्रकार की रहस्यानुभूति कम से कम एक नवीन शिक्षादीक्षा में पोषित बुद्धिजीवी वर्ग के लिए सम्भव नहीं है।"[96] वे आगे लिखते हैं कि "बुद्धिजीवी महादेवी में सन्त कवियों का सा विश्वास और समर्पण भी सम्भव नहीं हो सका, इसलिए उनके ह्रदय में अज्ञात के प्रति भी जिज्ञासा ही उत्पन्न हो सकी है पीड़ा नहीं'।[97]

लेकिन यह आरोप निराधार है कि उनके मन को लौकिक बंधन कभी आकृष्ट नहीं कर सके। ऐसी कोई विवशता भी उनके सामने नहीं थी जिससे बाध्य होकर वे लौकिक बंधनों के प्रति उन्मुख नहीं हुई। उनका मानसिक गठन ही ऐसे तत्वों से हुआ था जिसमें लौकिकता की प्रवृत्ति नहीं थी। शान्ति अग्रवाल लिखती है कि "यदि कोई लौकिक अभाव कभी उन्हें अखरा भी होगा तो उसकी लौकिकता भी काव्य में आते-आते अलौकिक बन गई।[98] धनंजय वर्मा भी डा. नगेन्द्र के मत से सहमत नहीं है। उनका कहना है कि "उनके काव्य को बुद्धिवाद की सर्जना मानना ही उनके साथ अन्याय करना है। उनके काव्य का चिन्तन प्राधान्य उन्हें दार्शनिकता की ओर ले गया है और इसकी भावात्मक अभिव्यक्ति को रहस्यवाद का परिवेश मिलता है।"[99] महादेवी के काव्य को किसी कुण्ठा का परिणाम मानना किसी भी दृष्टिकोण से उचित नहीं हैं।

प्रतीकों के प्रयोग के कारण अनेक आलोचकों ने महादेवी के रहस्यवाद को दुर्बोध माना है और उसमें अस्पष्टता भी आ गई है। ऐसे आलोचक प्रतीकों के अधिक प्रयोग का कारण उनके नारी स्वभाव को मानते हैं। इन आलोचकों में पंत और इन्द्रनाथ मदान दोनों ही मानते हैं कि यदि महादेवी के प्रतीकों के अर्थ को एक बार भलीभाँति समझ लिया जाय तो उसमें इतनी दुर्बोधता नहीं रह जाती। श्याम नारायण

वैजल भी इस मत को स्वीकार करते हुए लिखते हैं कि—"धीरे-धीरे पाठक इन प्रतीकों से परिचय और मैत्री स्थापित कर रहे हैं। इस परिचय के साथ रहस्यवादी कवियों की दुर्बोध दीवार भी पतनोन्मुख होती जा रही है।[100]

महादेवी को अनेक आलोचक 'निर्गुण की उपासिका' कहकर सम्बोधित करते हैं और इसके लिए कृष्णदास के निम्न वक्तव्य को आधार बनाते हैं। कृष्णदास लिखते हैं कि—"मीरा ने जिस प्रकार उस परम पुरुष की उपासना सगुण रूप में की थी, उसी प्रकार महादेवी जी ने अपनी भावनाओं में उसकी आराधना निर्गुण रूप में की है।"[101] यह कथन ही आलोचकों के मध्य भ्रम का कारण रहा है। महादेवी ने अवश्य ही निर्गुण की उपासना की है लेकिन वह धार्मिक तत्वों से प्रेरित नहीं है क्योंकि उसमें व्यक्ति मुक्ति नहीं वरन् लोक मुक्ति की आकांक्षा व्यक्त की गई है। विश्व प्रकाश बटुक इस सम्बन्ध में लिखते हैं कि—"निर्गुण का उपासक नहीं होता, साधक होता है।' महादेवी उपासिका नहीं वरन् साधिका हैं। उनके काव्य में जो प्रश्न जिज्ञासा और विस्मय की प्रवृत्ति पाई जाती है वह एक भक्त के अनुराग के कारण है।"[102]

महादेवी को कबीर, जायसी, मीरा की पंक्ति में नहीं बिठाया जा सकता जैसा कि अनेक आलोचक करते रहे हैं। महादेवी का रहस्यवाद भावनात्मक है, जबकि इन कवियों का रहस्यवाद साधनात्मक था। कुछ आलोचक तो इनमें आध्यात्मिक अनुभूति का भी अभाव पाते हैं।रामनन्दन प्रसाद सिंह लिखते हैं। "आज के बुद्धिजीवी कवि के लिए वासना को सूक्ष्मतर करना तो साधारणतः सम्भव है, परन्तु आध्यात्मिक अनुभूति का होना उसके लिए सहज सम्भव नहीं है।[103] रामचन्द्र शुक्ल तो समस्त छायावादी कवियों में केवल महादेवी को ही रहस्यवादी स्वीकार करते हैं लेकिन बाद में वे उनकी वेदनानुभूतियों के संबंध में सशंकित होकर लिखते हैं—"इस वेदना को लेकर इन्होंने हृदय की ऐसी अनुभूतियाँ सामने रखी हैं जो लोकोत्तर हैं। कहाँ तक वे वास्तविक अनुभूतियाँ हैं और कहाँ तक अनुभूतियों की रमणीय कल्पना है, यह नहीं कहा जा सकता है।[104]

कुछ आलोचक महादेवी को रहस्यवाद की कोटि में रखने में कठिनाई पाते हैं क्योंकि उनकी उक्तियों में एकरूपता का अभाव है। उन्होंने अपनी अनुभूतियों को व्यक्त करने के लिए कहीं अद्वैत का आश्रय लिया है, तो कभी द्वैत के सहारे अपनी भावनाओं को व्यक्त करती है और कहीं स्थूल के प्रति भी अपनी ममता प्रकट करती हैं। रामनन्दन प्रसाद सिंह लिखते हैं—"सन्तों की वाणी में हमें जिस ईश्वरीय अनुभूति का साक्षात्कार होता है, वह महादेवी में देखने को नहीं मिलता। उनका रहस्यवाद तो काव्य विलास सा लगता है और उसमें कल्पनालोक का विहार मिलता है।[105]

महादेवी के रहस्यवाद के इस वर्णन से स्पष्ट है कि महादेवी के रूढ़ अर्थ में रहस्यवादी नहीं कहा जा सकता और न ही यह स्वीकार किया जास कता है कि उनके काव्य में आध्यात्मिक प्रवृत्तियों का अभाव है। महादेवी ने, जैसा कि अपने 'रहस्यवाद' नामक निबन्ध में स्पष्ट किया है कि उन्होंने परम्परा से कुछ न कुछ तत्वों को अवश्य ग्रहण किया है। वैसे भी कोई प्रवृत्ति परम्परा से पूर्णतया अलग हो भी नहीं सकती। अतः महादेवी ने रहस्यवाद के परम्परागत रूप को स्वीकार करके युगीन आवश्यकताओं के अनुरूप उसमें परिवर्तन कर लिया है। महादेवी ने कबीर के विचारों को अवश्य ग्रहण किया लेकिन उनमें प्रिय के प्रति जो व्याकुल कर देने वाला प्रणय निवेदन है, वह पूरी तरह से उनका अपना है। इसी प्रकार सूफियों की 'प्रेम की पीर' को वे ग्रहण करती है किन्तु सूफियों में 'प्रेम की पीर' जहाँ एकान्तिक साधना बन गई है। वहीं महादेवी में यह करुणा का आश्रय लेकर काव्य में कम लेकिन गद्य में पूर्णतया सामाजिक हो गई है। मीरा में जहाँ हृदय की सहज अभिव्यक्ति हुई हैं वहीं महादेवी में वह बौद्धिक नियन्त्रण से युक्त है। इसीलिए महादेवी को इन कवियों के साथ एक पंक्ति में नहीं बिठाया जा सकता। कई आलोचकों का यह आरोप कि दमित काम वासना अथवा अतृप्ति के कारण अपने लौकिक प्रेम को व्यक्त करने के लिए उन्होंने प्रतीकों का आश्रय लिया यह भी उचित नहीं है क्योंकि प्रतीकों का प्रयोग सिर्फ महादेवी ही नहीं करती वरन् हिन्दी साहित्य के प्रथम रहस्यवादी कवि कबीर के काव्य में भी प्रतीकों का प्रयोग मिलता है अतः केवल नारी होने के कारण महादेवी पर लगाया गया यह आरोप उचित नहीं प्रतीत होता। महादेवी का रहस्यवाद परम्परा प्रचलित रहस्यवाद से भिन्न अवश्य है लेकिन वह प्राचीन रहस्यवाद के अधिक विकसित रूप को प्रकट करता है। इसमें करुणा, सेवाभाव और सम्पूर्ण विश्व के प्रति एक मानवतावादी दृष्टिकोण का भी समावेश हो गया है। महादेवी के रहस्यवाद में आध्यात्मिकता का अभाव नहीं है, जैसा कि कुछ आलोचकों ने माना है। बल्कि महादेवी द्वारा किया गया वेद, उपनिषद और संस्कृत साहित्य के गहन अध्ययन के कारण आध्यात्मिकता के तत्व का समावेश स्वतः ही हो गया हे। इस प्रकार महादेवी के रहस्यवाद में संतों जैसा दैन्य नहीं, वरन् दृढ आत्मविश्वास प्रकट होता है और वे कह उठती हैं—

"पंथ होने दो अपरिचित
प्राण रहने दो अकेला।[106]

प्रकृति–प्रकृति अनन्त काल से मनुष्य की चिर सहचरी रही है। मनुष्य ने अपने जन्म के साथ पहला साहचर्य प्रकृति का ही पाया और प्रकृति में व्याप्त असंख्य रहस्यों एवं विस्मय को देखकर उसके मन में जिज्ञासा वृत्ति ने जन्म लिया, जिसके परिणामस्वरूप दर्शन एवं विज्ञान का उद्भव एवं विकास सम्भव हो सका। प्रकृति में व्याप्त अनन्त सौन्दर्य चेतना ने उसके हृदय को कोमल भावनाओं को जागृत

किया और उन भावानुभूतियों ने प्राचीनकाल से लेकर आज तक के साहित्य में सरस अभिव्यक्ति पाई। प्रकृति इतनी उदारमना है कि मनुष्य ने अपने समस्त भावों का तादात्म्य प्रकृति के साथ इस प्रकार कर लिया कि वह उसे अपने सुख में पुलकित और दुख में उदास दिखाई देने लगी। वास्तव में प्रकृति के सान्निध्य में रहकर ही हम अपना जीवन सरस बना सकते हैं। महादेवी भी एक स्थान पर स्वीकार करती हैं कि "रोगी की व्याधि विशेष के लिए औषधि विशेष उपयोगी हो सकती है पर उसके सिरहाने किसी सह्रदय द्वारा रखा हुआ अधखिला गुलाब का फूल भी कम उपयोगी नहीं।[107] इस प्रकार स्पष्ट है कि 'पल-पल परिवर्तित प्रकृति वेश' ने प्रारम्भ से ही मनुष्य की संवेदना को विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है।

प्राचीन समय से प्रकृति कवियों द्वारा प्रमुख विषय के रूप में गृहीत की जाती रही है। वेदों एवं उपनिषदों से लेकर आज तक के आधुनिक हिन्दी साहित्य में प्रकृति नाना रूपों के साथ उपस्थित है। वेदों और उपनिषदो में प्रकृति को दिव्य शक्तियों का प्रतीक माना गया। और संस्कृत साहित्य में तो कालिदास द्वारा प्रकृति का एक अंश 'मेघ' को लेकर 'मेघदूत' जैसे सरस काव्यग्रन्थ की रचना की गई। हिन्दी सात्यि में आदिकाल के अर्न्तगत तो अवश्य प्रकृति को उतना महत्व नहीं मिला लेकिन भक्तिकाल में कबीर और जायसी दोनों ने अपनी रहस्यात्मक अनुभूतियों को व्यक्त करने के लिए प्रकृति का आश्रय लिया और अपने असीम अव्यक्त, अज्ञात प्रिय को पाने के लिए प्रकृति को माध्यम के रूप में स्वीकार किया। सूरदास और तुलसीदास जैसे भक्त कवियों के काव्य में भी प्रकृति का प्रयोग आलम्बन और उद्दीपन दोनों रूपों में किया गया है। रीतिकाल में अवश्य प्रकृति के शुद्ध चित्रण को स्थान नहीं मिला क्योंकि रीतियों और लक्षण ग्रन्थों की प्रधानता के कारण वे प्रकृत्ति का अपने काव्य में भरपूर उपयोग नहीं कर पाए। यद्यपि इसका अपवाद सेनापति का ऋृतु-वर्णन रहा है। इस प्रकार हिन्दी के मध्ययुगीन कवियों एवं रीतिकालीन कवियों ने प्रकृति को वह महत्ता प्रदान नहीं की जो संस्कृत साहित्य में प्रकृति को प्राप्त हुई थी। उन्होंने प्रकृति का चित्रण या तो अप्रस्तुत विधान के रूप में किया या उद्दीपन के रूप में किया। मध्ययुगीन कवि प्रकृति से सम्बन्धित विषयों की सूची गिनाकर ही संतोष करते रहे। भारतेन्दु युग में भी काव्य में प्रकृति का सीमित उपयोग ही हुआ लेकन द्विवेदी युग के कवियों ने एक बार फिर से प्रकृति को स्वतन्त्र रूप से काव्य का विषय बनाया। डा. दुर्गा शंकर मिश्र स्वीकार करते हैं—"संतोष का विषय है कि द्विवेदीयुग में प्रकृति ने फिर से अन्मुक्त वातावरण में साँस ली और तथाकथित शास्त्रीय बंधन से छूटकर वह कवि के मानस में हर्षोल्लास की तरंग उत्पन्न करने की क्षमता जुटा सकी।[108]

आधुनिक काल में आकर कवि को प्रकृति में व्यापक आयाम मिले। समाज के घुटते हुए वातवरण में उसने पर्वत, नदी, वृक्ष, पेड़, पौधे, पुष्प, मेघ में नई स्वच्छन्दता के दर्शन किए। छायावाद में आकर

तो प्रकृति काव्य की मुख्य प्रवृत्ति बन गई। पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' स्वीकार करते हैं कि "प्रकृति को अलग कर लिया जाय तो छायावाद पंगु हो जाता है।"[109] छायावाद ने प्रकृति को पूरी तरह से मध्ययुगीन बंधनों से मुक्त कर दिया। अब कालिदास के काव्य में वर्णित मेघ केवल संदेश वाहक की भूमिका का निर्वाह ही नहीं करता वरन् वह अपने विषय में स्वयं बताता भी है। प्रकृति का केवल स्थूल रूप ही काव्य में व्यवहृत नहीं हुआ वरन् अब एक छोटे से फूल पर भी कविता लिखी जाने लगी और एक छोटी सी ओस की बूँद को भी कविता का विषय बनाया जाने लगा। इस प्रकार छायावादी कवि ने उपेक्षित प्रकृति को सम्मान देते हुए उसे स्वतन्त्र रूप से काव्य का विषय बनाया और सुमित्रानन्द पन्त, जो प्रकृति के ही सुकुमार कवि माने जाते हैं, यहाँ तक कह दिया—

छोड़ द्रुमों की मृदु छाया
तोड़ प्रकृति से भी माया
बाले! तेरे बाल जाल में
कैसे उलझा दूँ लोचन।[110]

ऐसे परिवेश में महादेवी वर्मा का समकालीन प्रवृत्तियों से अप्रभावित रहना कठिन था अतः महादेवी ने भी उस विराट, अव्यक्त, असीम प्रिय को पाने का प्रयास प्रकृति के द्वारा किया। उनके काव्य में उस प्रिय के प्रति अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति करने का सबसे सफल माध्यम प्रकृति बन गई। प्रकृति महादेवी की प्रिय सहचरी रही है। छायावाद नामक निबन्ध में महादेवी ने प्रकृति और मानव के सम्बन्ध को स्पष्ट करते हुए लिखा कि—"छायावाद ने मनुष्य के हृदय और प्रकृति के उस सम्बन्ध में प्राण डाल दिए जो प्राचीनकाल से विम्ब-प्रतिबिम्ब के रूप से चला आ रहा था और जिसके कारण मनुष्य को अपने दुख में प्रकृति उदास और सुख में पुलकित जान पड़ती थी। छायावाद की प्रकृति घट, कूप आदि में भरे जल की एकरूपता के समान अनके रूपों में प्रकट एक महाप्राण बन गई। अतः अब मनुष्य के अश्रु, मेघ के जलकण और पृथ्वी के ओस बिन्दुओं का एक ही कारण एक ही मूल्य है।[111]

महादेवी ने जब काव्य रचना के बालप्रयास प्रारम्भ किए तभी से प्रकृति उन्हें अपनी ओर आकृष्ट करने लगी। उन्होंने समस्यापूर्तियों का समाधान भी प्रकृति के माध्यम से किया। 'प्रथम आयाम' के अन्तर्गत वे स्वयं स्वीकार करती हैं कि—"मैंने प्रायः सब समस्याओं में प्रकृति का सहारा लिया है, अतः वे कठिन नहीं रही। यदि मैं जीवन से कुछ लेना चाहती तो सफलता नहीं मिलती; क्योंकि जीवन से मेरा परिचय थोड़ा-सा था। हमारे बहुत से विचार, दर्शन, सौन्दर्यबोध आदि प्रकृति के कारण ही जन्म पाते तथा समृद्ध होते हैं।"[112] 'प्रथम आयाम' के अंतर्गत संकलित महादेवी की प्रारम्भिक रचनाओं में से एक-दो उदाहरण के रूप में द्रष्टव्य हैं—

"यह घटा घिरती रहे।

पर भूमि पर बरसी नहीं।"[113]

अथवा

"मेघ बरसने वाला है,

मेरी खिड़की में आ जा तितली।"[114]

स्पष्ट है कि बालिका महादेवी की दृष्टि सबसे पहले प्रकृति के सबसे रमणीय रूप 'मेघ' पर ही टिकती है।

महादेवी के प्रकृति विषयक दृष्टिकोण को छायावाद के अतिरिक्त अद्वैतवाद, सर्ववाद एवं रहस्यात्मक अनुभूतियों ने भी प्रभावित किया। अद्वैतवाद की प्रमुख विशेषता यह है कि जड़ सृष्टि में व्याप्त ससीम सत्ता एवं सूक्ष्म रूप में विद्यमान असीम ब्रह्म मूलतः एक हैं। महादेवी भी स्वीकार करती हैं कि—"प्रकृति के लघु तृण और महान वृक्ष, कोमल कलियाँ और कठोर शिलायें,अस्थिर जल और स्थिर पर्वत, निबिड़ अन्धकार और उज्ज्वल विद्युतरेखा, मानव की लघुता-विशालता, कोमलता-कठोरता, चंचलता-निश्चलता और मोह ज्ञान का केवल प्रतिबिम्ब न होकर एक ही विराट से उत्पन्न प्रतिबिम्ब न होकर एक ही विराट से उत्पन्न सहोदर हैं।"[115] सर्ववाद प्रकृति में भी परमात्मा की सत्ता स्वीकार करता है अतः वह प्रकृति को मिथ्या नहीं मानता। महादेवी भी लिखती है कि—"जहाँ तक भारतीय प्रकृतिवाद का सम्बन्ध है, वह दर्शन के सर्ववाद का काव्य में भागवत अनुवाद है।"[116] रहस्यानुभूति के अन्तर्गत महादेवी ने उस असीम, अव्यक्त प्रिय के प्रति अपने प्रेम को व्यक्त करने के लिए प्रकृति का कई रूपों में वर्णन किया है। जैसा कि गणपति चन्द्र गुप्त भी स्वीकार करते हैं कि—"वे अपने प्रियतम से आँखमिचौनी खेलने या उनकी मुस्कराहट और अपने आँसुओं का आदान प्रदान करने के लिए प्राय; प्रकृति को माध्यम के रूप में अपनाती है।"[117] स्पष्ट है कि महादेवी के प्रकृति संबंधी दृष्टिकोण को विकसित करने में समसामयिक परिवेश एवं संस्कृत साहित्य और वेद-उपनिषद के अध्ययन ने भी पर्याप्त योग दिया।

काव्य में प्रकृति का चित्रण अनेक प्रकार से हुआ है जिसमें एक मुख्य रूप उसका आलम्बन रूप है। आलम्बन के अन्तर्गत प्रकृति का स्वतन्त्र एवं निरपेक्ष चित्रण किया जाता है और इसमें आश्रय के रूप में कवि रहता हैं। महादेवी की काव्य रचनाओं में प्रकृति का आलम्बन रूप में प्रयोग कम मिलता है क्योंकि उनकी अधिकांश कविताओं में रहस्यवाद की प्रधानता है और रहस्यवाद के अन्तर्गत प्रकृति कुछ दूर तो आलम्बन रूप में प्रयुक्त हो सकती है लेकिन जब वह किसी अन्य प्रेमी, चाहे वह प्रत्यक्ष हो अथवा अप्रत्यक्ष

का आधार बन जाती है तब प्रकृति उद्दीपन के अन्तर्गत आ जाती है। आलम्बन भाव को चार भागें में बांटा जाता है—1. यथा तथ्य वर्णन 2. संश्लिष्ट वर्णन 3. चेतन रूप में 4. भावाक्षिप्त। यथातथ्य वर्णन में प्रकृति का निर्जीव यथातथ्य वर्णन होता है। महादेवी के काव्य में प्रकृति का इस रूप में वर्णन नहीं मिलता। संश्लिष्ट वर्णन के अन्तर्गत कवि द्वारा अपनी चयन वृत्ति के अनुसार प्रकृति का संश्लिष्ट चित्र अथवा बिम्ब ग्रहण करने का प्रयत्न किया जाता है। यद्यपि महादेवी के काव्य में इस भावना का भी प्रकृति के अन्तर्गत स्वतन्त्र रूप से कोई चित्र नहीं मिलता लेकिन फिर भी इसका पूरी तरह से अभाव भी नहीं है। जैसे निम्नगीत में महादेवी ने सूर्य की प्रथम किरण के संसार में आगमन का चित्र संश्लिष्ट रूप में प्रस्तुत किया है—

चुभते ही तेरा अरुण बान!
बहते कन-कन से फूट-फूट,
मधु के निर्झर से सजल गान!'[118]

अन्तर सिर्फ इतना है कि यहाँ प्रभात के उदय का चित्र स्थिर रूप में नहीं वरन् गत्यात्मक रूप में प्रस्तुत किया गया है। डा. सत्यपाल चुघ महादेवी के काव्य में संश्लिष्ट वर्णन के चित्र न मिलने का कारण गीतिकाव्य को मानते हैं क्योंकि गीति काव्य में आत्मा के अन्तर्निहित भावों की अभिव्यक्ति होती है। इसीलिए वहाँ प्रकृति का जहाँ कहीं उपयोग होता भी है तो वह कवि की भावनाओं की अभिव्यक्ति ही करती है— जैसे निम्न पंक्तियाँ द्रष्टव्य है; जहाँ कवयित्री सांध्यकालीन नभ में अपने ही भावों का विस्तार पाती है—

फैलते हैं सांध्य नभ में भाव ही मेरे रंगीले
तिमिर की दीपावली है रोम मेरे पुलक गीले[119]

प्रकृति का मानवीकरण के रूप में प्रयोग सभी प्रमुख छायावादी कवियों की विशेषता रही है। कुछ आलोचक मानवीकरण की प्रवृत्ति को अंग्रेजी साहित्य की देन मानते हैं लेकिन महादेवी अपने 'छायावाद' नामक निबन्ध में मानवीकरण की प्रवृत्ति को वेद और उपनिषदों से जोड़ती हैं और लिखती हैं—"हम वीर पुत्रों और पशुओं की याचना से भरी वेद ऋचाओं में जो इतिवृत्त पाते हैं, वही उषा, मरुत आदि को चेतन व्यक्तित्व देकर एक सरल और सहज सौन्दर्यानुभूति में बदल गया है।"[120] मानवीकरण में प्रकृति पर चेतन व्यक्तित्व का आरोपण कर दिया जाता है और गहरी रागात्मकता के कारण प्रकृति को मानव के समान समस्त कार्य व्यापारों को सम्पन्न करते हुए दिखाया जाता है। महादेवी की निम्न कविता मानवीकरण का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करती है जिसमें वे रात्रिरूपी नायिका को प्रकृति के समस्त उपकरणों द्वारा स्वयं को सजाकर धीरे-धीरे नीचे आने का आह्वान करती हैं—

धीरे-धीरे उतर क्षितिज से

आ बसन्त रजनी,

तारकमय नव वेणी बन्धन,

शीशफूल कर शशि का नूतन,

रश्मि वलय सित घन अवगुण्ठन

मुक्ताहल अभिराम बिछा दे

चितवन से अपनी।

पुलकती आ बसन्त रचनी![121]

महादेवी को प्रकृति निरन्तर चेतनवत् ही व्यवहार करती नजर आती है। कभी सन्ध्या उन्हें मनाने आती है, कभी उन्हें आकाश मुस्कराता हुआ दिखाई देता है और कभी बासन्ती निशा उन्हें शृंगार किये हुए दिखती हे। इस प्रकार के अनेकों उदाहरण महादेवी के काव्य में मिलते हैं। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है—

फिर आई मनाने साँझ मैं बेसुध मानी नहीं।[122]

अथवा

मुस्काता संकेत भरा नभ, अलि क्या प्रिय आने वाले हैं।[123]

महादेवी के समान निराला के काव्य में भी हमें मानवीकरण का बहुत सुन्दर उदाहरण मिलता है जो इस प्रकार है—

दिवसावसान का समय

मेघमय आसमान से उतर रही है

वह सन्ध्या सुन्दरी परी-सी

धीरे-धीरे-धीरे[124]

मानवीकरण के इस रूप के अतिरिक्त महादेवी के काव्य में विरल और स्फुट मानवीकरण भी मिलता है। स्फुट मानवीकरण वहाँ होता है जहाँ जड़ जगत में मानव व्यापारों एवं चेष्टाओं, विशेषकर रतिपरक चेष्टाओं का आरोपण किया जाता है। जैसे निम्नपंक्तियों द्रष्टव्य हैं—

'तब कलियाँ चुपचाप उठाकर पल्लव के घुँघट सुकुमार'[125]

उपर्युक्त पंक्ति में लज्जाशील नायिका की चेष्टा का वर्णन है। मानवीकरण के द्वारा महादेवी ने प्रकृति के विराट रूप को सीमित करने का भी प्रयास किया है। निम्न कविता में प्रकृति को अप्सरा रूप में चित्रित किया गया है। इसमें उसे प्रकाश-अन्धकार, श्वेत और श्याम वस्त्र समुद्र की गर्जना, मंजीर की झन्कार के रूप में चित्रित किया गया है। निम्न पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

लयगीत मदिर, गति ताल अमर

अप्सरि! तेरा नर्तन सुन्दर

आलोक तिमिर सित-असित चीर

सागर गर्जन रुनझुन मंजीर'[126]

महादेवी के काव्य में प्रकृति का उद्दीपन रूप में भी प्रयोग मिलता है। उद्दीपन रूप के अन्तर्गत कवि का प्रकृति के प्रति स्वतन्त्र अनुराग नहीं झलकता बल्कि प्रकृति मानवसापेक्ष रूप में सामने आती है। कवयित्री जब अपने आन्तरिक भावों का आरोपण प्रकृति परकरती है तब उससे तादात्म्य स्थापित कर लेती है और प्रकृति भी कवि के साथ बातचीत करती है और उसके मन में नाना संवेदनाएँ, आशाएँ जगा देती है। कवयित्री स्वयं की सत्ता को प्रकृति में विलीन कर देती है। जैसा कि निम्न पंक्तियाँ दर्शाती हैं—

मेघपथ में चिह्न विद्युत के गये जो छोड़ प्रियपद

जो न उसकी चाप का मैं जानती संदेश उन्मद

किसलिए पावस नयन में

प्राण मे चातक बसाती।[127]

महादेवी प्रकृति में एक ओर तो उस व्यापक विराट सत्ता को देखती है तो दूसरी ओर वह प्रकृति में अपनी छाया भी देखती है। अब प्रकृति कवि के हृदयगत भावों से भिन्न नहीं प्रतीत होती वरन् वह उसके जीवन का एक अंग बन जाती है। जैसे निम्न पंक्तियों में कवियत्री ने अपने जीवन का प्रकृति से ही तादात्म्य कर दिया है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

प्रिय सांध्यगगन! मेरा जीवन![128]

अथवा,

मैं नीर भरी दुख की बदली।[129]

अथवा,

मैं बनी मधुमास आली।[130] आदि

इन कविताओं में महादेवी ने प्रकृति से तादात्म्य स्थापित किया है। कही-कहीं महादेवी ने प्रकृति से तादात्म्य स्थापन के लिए विरोधी तत्वों की भी योजना की है, जैसे निम्न पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

जग करुण-करुण मैं मधुर मधुर

दोनों मिलकर देते रजकण।[131]

प्रकृति पर रहस्यानुभूतियों का आरोपण तो छायावाद के सभी प्रमुख कवियों ने किया है। विशाल भारत में रामनन्दन प्रसाद सिंह लिखते हैं कि—"यह सामान्य सी बात है कि जब कवि प्रकृति से अभिनत्व का अनुभव करते हैं तो वे प्रकृति के रहस्यों का उद्घाटन करने में समर्थ होते हैं।"[132] जिस व्यक्ति ने प्रकृति के भीषण, मधुर शान्त और क्षुब्ध सभी रूपों का रोमांच और पुलक के साथ अनुभव किया हैं उसे प्रकृति के भीतर निहित चेतना का आभास भी निरन्तर होता रहता है। प्रकृति के चारों ओर विद्यमान असीम सौन्दर्य उसमें निहित असीम सृजन और सौन्दर्य की शक्ति देखकर विस्मय और कुतूहल का भाव जाग्रत होता है और महादेवी सम्पूर्ण प्रकृति में उसी असीम, अव्यक्त प्रिय की झलक देखती हैं और पूछ बैठती हैं—

अवनि अम्बर की रुपहली सीप में

तरल मोती सा जलधि जब काँपता

तैरते घन मृदुल हिम के पुंज से

ज्योत्सना के रजत पारावार में,

सुरभि बन जो थपकियाँ देता मुझे

नींद के उच्छवास सा, वह कौन है?[133]

महादेवी के काव्य में अन्य छायावादी कवियों के समान प्रतीकों के रूप में प्रकृति और उसके उपकरणों का प्रयोग किया गया है। प्रतीक पद्धति द्वारा किया गया प्रकृति वर्णन विशुद्ध प्रकृति वर्णन की सीमा में नहीं आता क्योंकि कवि प्रकृति के माध्यम से किन्हीं अन्य सत्यों की व्यंजना करता है। महादेवी ने प्रतीकों के द्वारा परोक्ष सत्ता का आभास कराया है। निम्न पंक्तियों उदारहण के रूप में प्रस्तुत हैं—

"सजनि कौन तम में परिचित सा,

सुधि सा छाया सा आता।[134]

अथवा

"करुणामय को भाता है

तम के परदों में आना।"[135]

राष्ट्रीय आन्दोलन में रत् लोगों की भावनाओं की अभिव्यक्ति भी महादेवी ने प्रकृति से प्रतीक लेकर किया है। जैसे निम्न पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

कीर का प्रिय आज पिंजर खोल दो।

प्रलय घन में आज राका घोल दो।[136]

महादेवी ने प्रकृति का प्रयोग आलंकारिक रूप में भी किया है। इसके लिए उन्होंने उपमान को चुना है। महादेवी ने उपमान को अलग-अलग वस्तुओं के रूप में नहीं लिया है वरन् वे सजीव दृश्य को प्रस्तुत करते चलते हैं। गणपति चन्द्र गुप्त लिखते हैं—"उन्होंने उपमान रूप में प्रकृति का उपयोग सर्वत्र भाव बोध की दृष्टि से ही किया है—उनके काव्य में उपमानों का अवांछित आरोपण कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होता।"[137] आलंकारिक वर्णन के लिए महादेवी ने दो उपमान चुने हैं—1. बसन्त 2. वर्षा ऋतु। बसन्त मुस्कान से सम्बन्धित है और आँसू वर्षा ऋतु से। इन ऋतुओं में आने वाले पक्षियों को ही वे अपने प्रकृति वर्णन में स्थान देती है। फूलों में भी वे कमल हर सिंगार और गुलाब का उल्लेख करती है। दोपहर को छोड़कर सभी समयों का उल्लेख भी इनकी कविता में मिल जाता है। पद्म सिंह शर्मा 'कमलेश अपने लेख में लिखते हैं—"इन दृश्यों के अंकन या इनके उपकरणों को भावों की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाने में महादेवीजी ने वैभव विलास की ही दृष्टि रखी है।"[138]

महादेवी ने प्रकृति के माध्यम से उपदेश देने का भी कार्य किया। 'मुर्झाया फूल' शीर्षक गीत में पुष्प का सुन्दर और मनोरम वर्णन करने के उपरान्त वह कहने लगती है—

जब न तेरी ही दशा पर,

दुख हुआ संसार को

कौन रोएगा सुमन,

हमसे मनुज निःसार को।[139]

संसार शीर्षक गीत भी ऐसे उपदेशों से भरा है। यद्यपि यह एक उपदेशक का उपदेश न होकर कवि का है अतः कवि सुलभ सरसता इसमें छिपी हुई है।

महादेवी ने अपने प्राकृतिक वर्णन को प्रभावशाली बनाने के लिए सूक्तियों का भी प्रयोग किया हें जिससे काव्य में भी चमत्कार का प्रदर्शन हो जाता है ओर भाव को स्पष्ट करने में भी ये सूक्तियाँ सहायक होती है। कुछ सूक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

जो वे सपना बन आवें
तुम चिर निद्रा बन जाना[140]

अथवा,

वह कौन सा पी है पपीहा तेरा
जिसे बाँध हृदय में बसाता नहीं।[141]

अथवा,

एक ज्वाला के बिना मैं राख का घर हूँ।[142]

महादेवी के काव्य में स्वतन्त्र में प्रकृति चित्रण कही नहीं मिलता। प्रकृति हमेशा भावों को व्यक्त करने के लिए प्रयुक्त की गई हैं। यद्यपि 'हिमालय' नामक कविता में स्वतन्त्र प्रकृति चित्रण प्रारम्भ में तो मिलता है लेकिन अन्त तक आते-आते कवयित्री उसके साथ तादात्म्य स्थापित करने की इच्छुक प्रतीक होती है—

हे चिर महान!
मेरे जीवन का आज मूक
तेरी छाया से हो मिलाप
तन तेरी साधकता छू ले
मन ले करुणा की थाह नाप।[143]

'महादेवी के काव्य में स्वतन्त्र प्रकृति चित्रण का अभाव इन्द्रनाथ मदान और नन्ददुलारे बाजपेई भी पाते हैं। नन्ददुलारे बाजपेई लिखते हैं कि—'दृश्य प्रकृति में हिमालय पर ही उनकी एक रचना 'यामा' में देखने को मिली किन्तु वहाँ भी अन्तर्मुखी भावना ही उभर पायी है।"[144] नन्ददुलारे बाजपेई महादेवी के

प्रकृति वर्णन में प्राकृतिक सुखदुख का अथवा उसके सामंजस्य का अभाव पाते हैं। वे लिखते हैं कि "प्रकृति के किसी भी दृश्य का मानव मनोभाव का आकलन उनकी रचनाओं में नहीं के बराबर है।[145] नन्ददुलारे बाजपेई इस बात पर भी असन्तोष व्यक्त करते हैं कि महादेवी ने प्राकृतिक रूपों, दृश्यों और भावों को चेतना का प्रेरक न मानकर उन्हें चेतन व्यक्तित्व दे दिया है। उन्होंने महादेवी की पहली कविता को उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत किया है, जो इस प्रकार है—

निशा को धो देता राकेश
चाँदनी में जब अलके खोल

कली से कहता था मधुमास
बता दो मधु मदिरा का मोल"[146]

और लिखते हैं कि, "उनकी पहली रचना यद्यपि व्यक्त सौन्दर्य की भी झलक लिये हुए हैं, किन्तु वहाँ वह गौण है और महादेवी जी की रचनाओं में उत्तरोत्तर गौण होता गया है। और आगे चलकर सारी प्रकृति और उसके समस्त उपकरण एक निखिल वेदना की अनेक रूप अभिव्यक्ति के लिए भाँति-भाँति की दौड़ लगाते हैं।"[147]

कमलाकान्त पाठक भी महादेवी के प्रकृतिवर्णन को रहस्यात्मक अनुभूतियों की अभिव्यक्ति तक ही सीमित मानते हैं क्योंकि प्रकृत छायावादी अनुभूति में प्रकृति की स्वतन्त्र सत्ता स्वीकार की गई है और वे महादेवी के काव्य में प्रकृति के स्वतन्त्र चित्रण का अभाव पाते हैं। श्याम नारायण वैजल भी इसी समस्या की ओर ध्यान आकृष्ट करते हैं। 'सुधा' में वे लिखते हैं कि—"मानवता का प्रेम इनके प्राकृतिक दृश्यों में मानवता का आरोप करने भर से ही, सन्तोष नहीं ग्रहण करता। यह मानवीय समस्याओं को भी प्राकृतिक वर्णनों के साथ सुलझाने लगती है। इस कारण शुद्ध वर्णन क्रीड़ा स्थल के रूप में झूलने लगता है।"[148] रश्मि की निम्न कविता में यद्यपि प्रकृति का शुद्ध चित्रण किया गया है किन्तु अन्त तक आते-आते वह कहने लगती है—

अध खुले हगों के कंज कोष
पर छाया विस्मृति का भार।[149]

डा. मो. दि. पराड़कर भी महादेवी के प्रकृति वर्णन से यही शिकायत व्यक्त करते हैं। वे लिखते हैं—"प्रकृति की इस मानव सापेक्षत ने उनके प्रकृति चित्रण में एकरसता का निर्माण किया है; इसे अस्वीकार

नहीं किया जा सकता।"[150] इन सबसे विपरीत डा. देवेन्द्र कुमार महादेवी के प्रकृति वर्णन के स्वरूप की प्रशंसा करते हैं क्योंकि महादेवी ने प्रकृति को सचेतन तो मानती ही हैं साथ ही सुख-दुख का भागीदार भी मानती है। वे लिखते हैं कि—"उनके कवि और प्रकृति में बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव में ही तादात्म्य है। दोनों सहयात्री है। यह अजीब सी बात है कि हिन्दी आलोचक महादेवी की साधना को एकाकिनी समझते हैं जबकि उनकी साधना कितने ही रागात्मक संबंधों के ताने-बाने बुनती चलती है।[151]

विनयमोहन शर्मा अपने लेख में महादेवी के प्रकृति वर्णन पर कटु टिप्पणी करते हैं। वे लिखते हैं—"महादेवी के काव्य में प्रकृति से परिचय पाना शहराती ड्राइंगरूम के फर्श पर वन प्रांगण की हरी दूब को खोजने के समान अप्राकृत प्रयत्न है।[152] महादेवी को वे पूरी तरह से मानवमन की कवयित्री मानते हैं। महादेवी की कविता में प्रकृति वर्णन के अन्तर्गत एक दोष व्रे यह मानते हैं कि महादेवी को फूलों के विषय में अधिक जानकारी नहीं है। वे लिखते हैं कि—"उन्होंने फूलों के नाम सुन रखे, पढ़े भी है पर कौन फूल कब कहाँ खिलता है। इसकी चिन्ता उन्हें नहीं रही। हरसिंगार, शेफाली, दुपहिरया का फूल भिन्न-भिन्न नहीं एक ही फूल के नाम है इसे जानने का उन्हें अवकाश नहीं।[153] विनयमोहन शर्मा महादेवी के काव्य को कल्पना जन्य मानते हैं। उसमें अनुभूति का समावेश कम है।

इस विवरण से स्पष्ट है कि महादेवी अपने काव्य में प्रकृति के सौन्दर्य को भव्यता प्रदान करती हैं' और वहीं प्रकृति भी उनकी कविता को अनुप्राणित करती हैं। महादेवी का प्रिय कभी प्रकृति में अवतरित होता है और कभी प्रकृति ही उनके प्रिय में तन्मय हो जाती है। महादेवी के काव्यम में प्रायः प्रकृति के सभी रूपों का प्रयोग मिलता है। छायावादी कवियों के समान प्रकृति महादेवी का प्रमुख काव्य विषय रही है और इसकी शोभा का वर्णन वे पूरी तन्मयता के साथ करती हैं। निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि महादेवी के काव्य में प्रकृति पूरी तरह से घुलमिल गई है।

अभिव्यक्ति पक्षः गेय तत्व-

इस संसार में मनुष्य सुख और दुख की अनुभूतियों को साथ लेकर ही अवतरित होता है। शैशव में चेतना शक्ति के अविकसित होने के कारण वह इन अनुभूतियों को हंसकर अथवा रोकर अभिव्यक्त करता है। किन्तु जैसे-जैसे वह बड़ा होता जाता है, सुख और दुख की यही अनुभूतियाँ गम्भीर से गम्भीरतम होती जाती है तथा विश्व में विद्यमान जड़ चेतन सभी वस्तुओं से सम्बद्ध हो जाती हैं। उदार ह्रदय वाले मनुष्य का स्वभाव ही ऐसा है कि वह दूसरों की व्यथा से दुखी होकर उसमें वेदना का आभास सा पाने लगता है

और दूसरों के सुख से सुखी भी हो जाता है। इस प्रकार जब वह विश्व के दुख में अपने विषाद को और उसके सुख में अपने आनन्द को मिला देता है, तब उसके ह्रदय से जो शब्द स्वरों के सामंजस्य से फूट पड़ते हैं। वे ही गीत की संज्ञा धारण कर लेते हैं। कवि, लोकगायक, संगीतज्ञ तथा सामान्य जन-सभी इसी विशेषता को आधार बनाकर गीत का सृजन करते हैं।

गीत की एक प्रमुख विशेषता यह है कि वह कवि की किसी एक विशेष भावना को आधार बनाकर ही लिखा जाता है। एक से अधिक भावनाओं का गीत में समावेश किया जाना उसे सदोष बना देता है। गेयता का तत्व भी गीत के लिए अनिवार्य है क्योंकि संगीत मानव मन की कोमल, मधुर और उदात्त वृत्तियों का प्रकाशन करता है। गीत में संगीत के समावेश से उत्कृष्ट कोटि के गीतों का निर्माण हुआ है। छोटे-छोटे गेय पदों में एक ही भावविशेष की तीव्रता एवं सरस, सुस्पष्ट और सामंजस्यपूर्ण शैली का सहज समन्वय ही गीत है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि गीत मनुष्य की आन्तरिक भावनाओं का संगीतात्मक शब्द चित्र है। लेकिन गीत भावना के क्षेत्र में जितना स्वच्छन्द है, शब्दों में व्यक्त होकर वह उतना ही सीमित हो जाता है। इस प्रकार गीत एक ओर तो स्वतन्त्र वातावरण में उन्मुक्त भाव से जन्म लेता है और वहीं दूसरी ओर वह अपनी ही लघु सीमा में आबद्ध रहता है। गीतों में प्रयुक्त होने वाले शब्दों को भी कोमल भावनाओं के अनुरूप सरल, सरस एवं मधुर होना चाहिए। गीत में मनुष्य के सुख-दुखों की प्रधानता होने के कारण वह कभी अपने अश्रु-कणों से सभी के नेत्रों को सजल कर देता है और कभी अपने हास्य से उज्ज्वलता और निर्मलता बिखेर देता हैं।

संसार में सभ्यता के विकास के साथ गीतों की परम्परा भी विकसित होती रही है। हमारा प्राचीन काव्य अधिकांशतः गेय है। गीतों की परम्परा का प्रारम्भ भी वैदिक ऋचाओं से ही स्वीकार किया जाता रहा है। ऋग्वेद में वर्णित उषा की स्तुति में हमें गीत की झलक मिलती है। सामवेद तो ऋचाओं का संगीतबद्ध गायन है ही। संस्कृत साहित्य में गीतिकाव्य की लम्बी परम्परा रही है। संस्कृत साहित्य में गीतकाव्य के अन्तर्गत प्रसाद और माधुर्य गुण की प्रधानता रही है और साथ ही कवि ने उन्हीं भावानुभूतियों को स्वर दिया है जो सहृदय पाठक के ह्रदय में भी समान अनुभूतियों को जाग्रत कर सकती है। आदिकवि बाल्मीकि ने जब क्रौञ्च पक्षी के जोड़े को संसार की जटिलताओं से मुक्त होकर स्वच्छन्द रूप से विचरण करते देखा होगा तभी उनके ह्रदय में जीवन की सबसे मनोरम और सरस भावना का उदय हुआ होगा और उसी समय किसी बहेलिये के मर्मभेदी बाण से पक्षी की मृत्यु हो गई और पक्षी की वेदना कवि की वेदना बनकर गीत के रूप में अनायास ही फूट पड़ी और वे कह उठे—"मा निषाद प्रतिष्ठां' त्वमगमः शाश्वती समः।" संस्कृत साहित्य के सर्वश्रेष्ठ गीतों का संकलन जयदेव का 'गीत गोविन्द' है और उन्हीं के गीतों को आधार बनाकर

मैथिली कवि विद्यापति गीति काव्य के क्षेत्र में आए और उनके द्वारा रचे हुए गीत आज भी अपनी रसात्मकता के कारण गुन-गुनाये जा रहे हैं। विद्यापति ने राधाकृष्ण को आलम्बन बनाकर माधुर्य भाव के द्वारा अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति की है। विद्यापति के पश्चात कबीर का हिन्दी साहित्य क्षेत्र में पदार्पण होता है जिनका काव्य यद्यपि हठयोग के ताने-बाने में उलझा हुआ और ज्ञान से गुँथा हुआ था लेकिन वहाँ भी कबीर ने वैयक्तिक भावों की अभिव्यक्ति गीतों अथवा पदों के माध्यम से की है। भक्तिकाल के अन्तर्गत सूरदास भी पदों की रचना में अग्रणी रहे हैं, जिन्होंने मुख्यतः गोपियों की विरह भावना को आधार बनाकर अनेक सुन्दर और मधुर भावनाओं को वाणी प्रदान की है। भक्तिकाल के एक प्रमुख कवि तुलसीदास हैं, जो एक ओर तो 'रामचरित मानस' जैसे पूर्णतया सामाजिक महाकाव्य की रचना करते हैं और इसकी रचना द्वारा राम को समाज में प्रतिष्ठित करते हैं और फिर दूसरी ओर बिल्कुल वैयक्तिक स्तर पर उतर कर नितान्त निजी सुख-दुखों की अभिव्यक्ति के लिए गीत को माध्यम बनाते हैं और 'विनयपत्रिका' जैसे ग्रन्थ की रचना में प्रवृत्त होते हैं, जो उनके आत्म निवेदनात्मक गीतों का संग्रह है। तुलसीदास के व्यक्तित्व में यह अन्तर्विरोध देखकर आश्चर्य होता है कि एक ओर घोर सामाजिक कवि गीतों में आकर नितान्त निजी सुख-दुखों की बातें करने लगता है और यही प्रकृति आधुनिक काल में आकर हमें महादेवी के साहित्य में मिलती हैं, जहाँ कवियत्री काव्य के क्षेत्र में नितान्त वैयक्ति अनुभूतियों को स्वर देती हैं और गद्य क्षेत्र में आकर पूर्णतया सामाजिक होकर समाज के दीन-हीन, शोषित प्राणियों के सुख-दुख को अपना विषय बनाती हैं। गीतिकाव्य के क्षेत्र में सर्वाधिक महत्वपूर्ण नाम मीराबाई है, जिनके गीत हृदय के सहज भावोद्‌गार कहे गए हैं। मीरा के गीतों में प्रेम के आधिक्य के कारण भावना ही वाणी के रूप में मुखर हो गयी हैं। मीरा के गीतों में मानों स्वरलहरी ही साकार हो उठी है। उनके गीतों में हृदय का क्रन्दन समाहित है। कहीं-कहीं तो वे ऐसी दीवानी हो गई हैं कि गीतों में न कहने वाली बातों को बिना हिचक कह गई हैं। रीतिकाल में आकर गीतों की धारा अवरुद्ध हो जाती है। इसका कारण रीतियों और लक्षण ग्रन्थों की प्रधानता रही है। इस काल में हिन्दी कविता रूढ़ और परम्परागत हो जाती है। रीतिकालीन युग बाह्य वर्णन तक ही सीमित रहता है, हृदय के मार्मिक उद्‌गारों को उद्‌घाटित करने के लिए उसमें अवकाश ही कहाँ है। अतः इस युग में गीतों की रचना की ओर कवि का झुकाव ही नहीं हुआ।

आधुनिक काल के अन्तर्गत भारतेन्दु युग के आविर्भाव द्वारा एक बार फिर से सामान्यजन के जीवन को काव्य का विषय बनाया गया और भारतेन्दु युग में भक्तिकालीन कवियों और शृंगारपरक कवियों के आधार पर गीतों की रचना आरम्भ हुई। इसके साथ ही भारतेन्दु ने अपने नाटकों में संघर्ष, पराभव, वेदना, करुणा आदि भावों की अभिव्यक्ति करने वाले गीतों को स्थान दिया। द्विवेदीयुग में आकर गीतों में प्रणय

निवेदन, सौन्दर्य के प्रति आकर्षण, जीवन में विद्यमान अवसाद-विषाद तथा रहस्यात्मक भावों की अभिव्यंजना प्रधान हो गई। इस युग में मैथिलीशरण गुप्त की 'उर्मिला' तथा अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' के 'प्रियप्रवास' की राधा के चरित्रांकन द्वारा हमारे जीवन की प्राचीन स्मृतियों को पुनः व्यक्त किया गया है। इसमें एक स्वर, एक लय, और जीवन का सामंजस्य है। छायावाद में आकर गीतों में आत्माभिव्यंजना का प्राधान्य हो गया। यद्यपि जीवन के अन्य विषयों की ओर भी कवि का ध्यान गया, किन्तु अन्तर्मुखी प्रवृत्ति का उद्घाटन वहाँ प्रमुख विषय था। छायावाद के प्रतिष्ठापक कवि प्रसाद जहाँ एक ओर अपने गीतों में वैयक्तिक अनुभूतियों का उद्घाटन करते हैं वहीं दूसरी ओर दर्शन के आनंदवाद की प्रतिष्ठा भी करते चलते हैं। सुमित्रानंदन पंत के गीत सौन्दर्य की भावना से आवृत्त दिखाई पड़ते हैं और सूर्यकांत त्रिपाठी निराला भी शास्त्रीय बंधनों का पूर्णतया परित्याग करके वैयक्तिक सुख दुखों को वाणी देते हैं।

इसके पश्चात महादेवी जब हिन्दी साहित्य क्षेत्र में प्रवेश करती हैं तो गीत को ही माध्यम के रूप में चुनतीं हैं और गद्य के क्षेत्र में उन्मुख होने तक गीत ही लिखती रही हैं। काव्य का कोई अन्य माध्यम उनको अपनी ओर आकृष्ट ही नहीं कर पाया। गीत रचना की ओर अपनी प्रवृत्ति को वे 'दीपशिखा' के अन्तर्गत स्वीकार भी करती हैं। वे लिखती है कि—"शैशव ही से मैं गीतों के संस्कार में पली हूँ। माँ की भावभरी गीतांजलियाँ, घर में जन्म, विवाह आदि शुभ अवसरों पर गाई जाने वाली गीति कथाएँ, परिचारकों के ऋतुपर्व आदि से सम्बन्ध रखने वाले लोकगीत, कलाविदों का ध्वनि संगीत, प्राचीन ज्ञान और सौन्दर्य द्रष्टाओं के वेद, छन्द, माधुर्य भरे संस्कृत और प्राकृत पद और पिछले अनेक वर्षों से सुने सहस ग्राम गीत सभी के प्रति मेरा स्वाभाविक आकर्षण रहा है।[154] यद्यपि कुछ आलोचक महादेवी की गीति रचना की प्रवृत्ति को उनके स्त्री होने से जोड़ते हैं और गीत की प्रकृति को भी स्त्रैण ही मानते हैं। वे प्रमाण के रूप में विश्व की लेखिकाओं और कवयित्रियों का उदाहरण देते हुए जिन्होंने हृदय की सहज भावों की अभिव्यक्ति के लिए गीत को माध्यम के रूप में चुना हैं। वास्तविकता यह है कि युगीन परिस्थितियों के परिणामस्वरूप छायावाद में लम्बे-लम्बे प्रबन्धकाव्य लिखना सम्भव ही नहीं था और छायावाद को वैसे भी द्विवेदी युग की स्थूलता और इतिवृत्तात्मकता की प्रतिक्रिया स्वरूप जन्मा माना गया है, अतः इस युग में सभी कवियों ने हृदयगत भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए गीत को ही माध्यम के रूप में चुना। महादेवी वर्मा भी गीत को युग की आवश्यकता के अनुरूप मानते हुए लिखती है कि—"हिन्दी काव्य का वर्तमान नवीन युग गीत प्रधान ही कहा जाएगा। हमारा व्यस्त और व्यक्ति प्रधान जीवन हमें काव्य के किसी और अंग की ओर दृष्टिपात करने का अवकाश ही नहीं देना चाहता। आज हमारा हृदय ही हमारे लिए संसार है। हम अपनी प्रत्येक साँस

का इतिहास लिख रखना चाहते हैं, अपने प्रत्येक कम्पन को अंकित करने के लिए उत्सुक हैं और प्रत्येक स्वप्न का मूल्य पा लेने के लिए विकल हैं। सम्भव है, यह उस युग की प्रतिक्रिया हो, जिसमें कवि का आदर्श अपने विषय में कुछ न कहकर संसार भर का इतिहास कहना था, हृदय की उपेक्षा कर शरीर को आदृत करना था।''[155] यद्यपि यह उद्धरण अत्यन्त लम्बा है लेकिन इससे गीत की युगीन आवश्यकता पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। प्राचीनकाल से लेकर छायावाद तक गीतों का बहुमुखी विकास और उसकी समूह परम्परा का महादेवी अवलोकन करती हैं और गीतों की परम्परा को वेदों से जोड़ते हुए गीतिकाव्य के सम्बन्ध में एक मौलिक और प्रामाणिक अध्ययन प्रस्तुत करती हैं। महादेवी वर्मा गीत को परिभाषित करते हुए लिखती हैं—''सुख-दुख के भावावेशमयी अवस्था विशेष का, गिने चुने शब्दों में स्वर साधना के उपयुक्त चित्रण कर देना ही गीत हैं।''[156] इस कथन का विश्लेषण करने पर गीत की वही विशेषताएँ स्पष्ट होती हैं जिन्हें प्राचीन परम्परा भी मानती चली आ रही है।

इस कथन में महादेवी सर्वप्रथम सुख-दुख की भावावेशमयी अवस्था पर बल देती है अर्थात गीत व्यक्ति के नितान्त निजी सुख-दुख को अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं। गीत को महादेवी आत्मा की अभिव्यक्ति मानती हैं। जिस प्रकार हर्ष की अधिकता में अथवा विषाद की अधिकता में हास्य और रुदन स्वतः ही व्यक्ति के हृदय में फूट पड़ते हैं, उसी प्रकार गीत को भी वे मानव के हृदय में स्वतः उत्पन्न मानती है। गीत कल्पना अथवा बौद्धिकता से प्रभावित नहीं होता वरन् वह हृदय की रागात्मक अनुभूतियों को वाणी देता है। गीत के लिए भावात्मकता के साथ-साथ महादेवी संयम भी आवश्यक मानती है और इस संयम की प्राप्ति सहज नहीं है क्योंकि भावों का प्रवाह जब बह निकलता है तो वह कलागत सीमा से आगे निकल जाता है। महादेवी लिखती हैं कि—''वास्तव में गीत के कवि को आर्त्तक्रन्दन के पीछे छिपे हुए भावातिरेक को, दीर्घ विश्वास में छिपे हुए संयम से बाँधना होगा, तभी उसका गीत दूसरे के हृदय में उसी भाव का उद्रेक करने में सफल हो सकेगा।''[157] यद्यपि सुख-दुख की भावेशमयी अवस्था में 'मैं' का भाव ही प्रमुख रहता है किन्तु सामाजिक परस्थितियाँ भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं क्योंकि वहीं परिस्थितियाँ व्यक्ति के चारों ओर विद्यमान परिवेश का निर्माण करती हैं। हाँ, यह अवश्य है कि इनका गौण स्थान ही रहता है, गीत में रागात्मकता का भाव ही प्रबल होता है।

महादेवी गीत की रचना के लिए अवस्था विशेष को भी महत्वपूर्ण मानती है क्योंकि गीत की रचना किसी क्षण विशेष में ही सम्भव होती है। उस विशेष क्षण में भावनाओं में तारतम्यता और अखण्डता रहती है तथा मानसिक स्थिति भी एक जैसी रहती है। हृदय में एक भाव ही प्रबल होता है जो उस क्षण विशेष के लिए पूर्ण सत्य होता है। अनुभूति की यही एकता गीत को प्रभावशाली बनाती है। महादेवी स्वयं स्वीकार

करते हुए लिखती हैं—"याद नहीं आता जब मैंने किसी विषय-विशेष या वाद-विशेष पर सोचकर कुछ लिखा हो।[158]

महादेवी के उपर्युक्त कथन में तीसरा तत्व 'गिने चुने शब्द' हैं। गिने-चुने शब्दों से तात्पर्य संक्षिप्तता से है अर्थात् गीत में शब्द बहुत कम होने चाहिए क्योंकि शब्दगत विस्तार से भावों में शिथिलता आ जाती है। वैसे भी अनुभूति की तीव्रता की स्थिति बहुत समय तक नहीं रहती। गीत में एक ही भाव मुख्य होता हे और अन्य गौण रहते हैं अतः उस भाव को व्यक्त करने के लिए ऐसे शब्दों का चुनाव होना चाहिए जो कवि की अनुभूति को पूर्णतया व्यक्त कर सके। गीत के अनुसार शब्द कोमल, मधुर और सरल होने चाहिए। शब्द ऐसे हों, जिससे अर्थ स्पष्ट हो जाये और भाव भी अपनी सम्पूर्ण कल्पना प्रवणता के साथ सहसा प्रकाशित हो कर सहृदय को चमत्कृत कर दे। सुमित्रा नन्दन पन्त भी गीत में शब्द योजना के महत्व को स्वीकार करते हुए लिखते हैं—"जिस प्रकार समग्र पदार्थ एक दूसरे पर अवलम्बित है, ऋणानुबन्ध है, उसी प्रकार शब्द भी, इनका आपस का सम्बन्ध, सहानुभूति, अनुराग-विराग, जान लेना, इनकी पारस्परिक प्रीति-मैत्री, शत्रुता तथा वैमनस्य का पता लगा लेना क्या आसान है; प्रत्येक शब्द एक कविता है; लक्ष और भील द्वीप की तरह कविता भी अपने बनाने वाले शब्दों की कविता को खा-खाकर बनाती है।[159]

महादेवी के कथन में 'स्वर साधना के उपयुक्त' इन शब्दों का तात्पर्य संगीत से है। गीत में संगीत का समावेश प्राचीन परम्परा से ही चला आ रहा है। यहाँ संगीत का अर्थ शास्त्रीय संगीत से नहीं है, वरन् गीत का संगीतमय होना आवश्यक है। इसमें गीत संगीत की रागरागिनी में नहीं बँधा होता है। वह स्वर के माधुर्य एवं लय के लचीलेपन से सम्पन्न होना चाहिए। महादेवी आगे लिखती हैं—"साधारणतः गीत व्यक्तिगत सीमा में तीव्र सुख- दुखात्मक अनुभूति का वह शब्द रूप है, जो अपनी ध्वन्यात्मकता में गेय हो सके।"[160] उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि महादेवी गीत के लिए निम्न तत्वों को आवश्यक मानती है—1. आत्माभिव्यक्ति अवस्था विशेष, संक्षिप्तता और शब्द चयन और अन्तिम है—संगीतात्मकता। प्रायः सभी विद्वानों ने उपर्युक्त तत्वों को ही गीत काव्य के अन्तर्गत स्वीकार किया है।

आत्माभिव्यक्ति महादेवी के गीतों की सर्वप्रमुख विशेषता है। आत्माभिव्यक्ति से तात्पर्य है—कवि के नितान्त निजी सुख-दुखों की अभिव्यक्ति। उसका हृदय संचित अनुभूतियों का आगार है और जब यह अनुभूतियाँ उसे उद्वेलित करती है तो वह अभिव्यक्ति के लिए विवश हो जाता है। महादेवी का सम्पूर्ण काव्य इसका उदाहरण है। इसमें उन्होंने अपने निजी दृष्टिकोण और निजी भावनाओं को ही अभिव्यक्त किया है। वे 'सान्ध्यगीत' में स्वीकार भी करती है—"मेरे गीत मेरे आत्मनिवेदन मात्र हैं"[161] महादेवी ने अज्ञात, अव्यक्त, असीम, ब्रह्म पर अपने व्यक्तिगत भावों का आरोपण किया हैं। इस प्रकार उनके गीत साधना के

विभिन्न सोपानों को व्यक्त करते हैं। इनके गीतों में हास-रुदन, संयोग-वियोग, आशा-निराशा तथा संकल्प-विकल्प की अनेक अवस्थायें मिलती हैं। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—प्रिय उनसे मिल कर लौट गया है और यह स्वप्न नहीं है, वरन् सत्य है अतः वे प्रमाण स्वरूप कहती हैं—

"भरे हुए अब तक फूलों में
मेरे आँसू उनके हास।[162]

इसी प्रकार निम्न पंक्तियों में वे तब तक अपनी पीड़ा को जगाना नहीं चाहती, जब तक कि उनका प्रिय आ न जाए। वे कहती हैं—

"ठहरो बेसुध पीड़ा को
मेरी न कहीं छू लेना
जब तक वे आ न जगावें
बस सोती रहने देना।"[163]

अपने प्रिय की प्रतीक्षा में बेसुध वह कह उठती हैं—

"जो तुम आ जाते एक बार
कितनी करुणा कितने संदेश, पथ में बिछ जाते बन पराग।[164]

महादेवी ने व्यक्तिगत सुखदुखों के साथ ही सामाजिक सुख-दुखों की अभिव्यक्ति भी कुछ कविताओं में की है—

"मेरे हँसते अधर नहीं
जग की आँसू लड़ियां देखो
मेरे गीले पलक छुओ मत
मुर्झाई कलियाँ देखो!"[165]

इन थोड़े से उदाहरणों से ही स्पष्ट है कि महादेवी के गीत उनकी निजी अनुभूतियों को व्यक्त करते हैं, जिसमें कल्पना का समावेश हो गया है। अन्तर्मुखी अनुभूति का प्रकाशन उनके हर गीत में है। कई आलोचक महादेवी के गीतों में आत्मतत्व की प्रमुखता का कारण विषाद भाव को मानते हैं क्योंकि विषाद

भाव की अभिव्यक्ति में आत्मतत्व स्वतः ही अभिव्यक्त हो जाता है। महादेवी भी छायावाद में दुख की अभिव्यक्ति को स्वीकार करती हुई लिखती है—"छायावाद व्यथा का सवेरा है, अतः उसके प्रभाती गीतों की सुनहली आभा पर आँसुओं की नमी हैं।"[166]

महादेवी ने अपने निबन्ध में गीत की सृष्टि के लिए तीव्र भावावेश को आवश्यक माना है। उनके सभी गीतों में भावतत्व सर्वत्र विद्यमान है लेकिन उन्होंने अधिकांश गीतों में अपने भावों का आलम्बन एक अलौकिक ब्रह्म को माना है जो कि एक विचार मात्र है और दूसरी ओर महादेवी ने काव्य को सत्य की अभिव्यक्ति का माध्यम माना है। इस प्रकार विचार, सत्य एवं दर्शन पर आधारित होते हुए भी उनके काव्य में भावों की प्रधानता है। जैसे निम्न उदाहरण में ब्रह्म के साथ अपने संबंध की व्यंजना पूरे गीत में की गई है—

तुम हो विधु के बिम्ब और मैं मुग्धा रश्मि अजान
जिसे खींच लाते अस्थिर कर कौतुहल के बाण।[167]

लक्ष्मी नारायण सुधांशु ने अपने लेख में स्वीकार किया है कि—"उन्होंने अपनी भावधारा को एक स्वाभाविक तथा निश्चित क्रम से प्रवाहित होने दिया है, उसमें ज्वारभाटा के कारण तरंगों का आवर्त्तन-प्रत्यावर्त्तन तो होता रहा है, पर प्रवाह को अपनी सीमा में रखने वाले दोनों तट प्रायः सुरक्षित रहे हैं।"[168] कई आलोचकों का विचार है कि महादेवी के गीतों में भावगत एकता तो है लेकिन वह तीव्र भावावेश नहीं है जो हमें मीरा में मिलता है। मीरा के गीत हृदय के सहज उद्‌गार हैं लेकिन महादेवी की अनुभूति संयमित रहती है। कमलाकान्त पाठक लिखते हैं कि—"निश्चय ही उनका गीतिकाव्य वैयक्तिक है, विरहानुभूति से अनुप्राणित है, अपनी ध्वन्यात्मकता में गेय है; पर वह तीव्र या भावावेशपूर्ण भी है, यह नहीं कहा जा सकता वह आवेशमयी गीतकार हैं ही नहीं।"[169] इसका कारण अधिकांश आलोचक यह मानते हैं कि महादेवी पीड़ा का अनुभव नहीं करती वह सिर्फ पीड़ा का अनुमान करती है। लेकिन धनंजय वर्मा मानते हैं—"मैं महादेवी के गीतिकाव्य की पीड़ा को अनुमान और काव्य को बुद्धि-प्रसूत नहीं मानता हूँ। उनके गीतों में अनुभूति का वैपरीत्य है, भावों का वैषम्य भी है, फिर भी एक अन्तःसंगीत है जो समेटता चलता है और समग्रता प्रदान करता है।"[170]

महादेवी के सम्पूर्ण गीतकाव्य में संगीत की सुमधुर धारा प्रवाहित हो रही है। स्वर एवं लय द्वारा उन्होंने अपने प्रत्येक गीत को भाव प्रवण बनाया है। संगीतात्मकता द्वारा उन्होंने अपने प्रत्येक गीत में गेयता की मधुरसृष्टि की है। महादेवी ने अन्य छायावादी कवियों के समान छदों के राजपथ को छोड़कर न तो कभी

छन्द विहीन मार्ग पर कदम रखा और न ही कभी तुकान्त का परित्याग करके अतुकान्त का मार्ग अपनाया। महादेवी के गीतों में अन्तस्संगीत है जो ह्दय की रागात्मक भावनाओं से ही ध्वनित होता है। महादेवी ने अन्य कवियों के समान शब्दों के बाह्य साँचे नहीं बनाए वरन् वर्ण, शब्द, वाक्य, छन्द स्वतः ही उनकी भावनाओं का अनुकरण करते हैं। यद्यपि उन्होंने सभी छन्दों का प्रयोग नहीं किया परन्तु सीमित छन्दों द्वारा वे उसकी लयात्मक विविधता का परिचय देती है। वे मात्रिक छन्दों का प्रयोग करती है और इसमें ह्दय के भाव एवं लय के अनुसार चरण और पदों का विन्यास और क्रम स्थापन करती है। उनकी कविता में कही पहले और दूसरे चरण का तुकान्त मिलता है, एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

सजल रोमों में बिछे है पॉवड़े मधुस्नात से
आज जीवन के निमिष भी दतू हैं अज्ञात से।[171]

कभी दूसरे और चौथे चरण का तुकान्त मिलता है—

इन श्वासों का इतिहास
आँकते युग बीते,
रोमों में भर कर पुलक,
लौटते पल रीते।[172]

इस गीत में सभी चरण समतुकान्त है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

क्या पूजा क्या अर्चन रे।
उस असीम का सुन्दर मन्दिर मेरा लघुतम जीवन रे।[173]

महादेवी के कुछ गीतों में ग़ज़ल के का सा क्रम मिलता है जिसमें प्रथम चरण विषम तथा द्वितीय समतुकान्त रहता है जैसे निम्न पंत्तियाँ—

तुम दुख बन इस पथ से आना
शूलों में नित मृदु पाटल सा,
खिलने देना मेरा जीवन
क्या हार बनेगा वह जिसने सीखा न ह्दय को बिंधवाना।"[174]

महादेवी ने उर्दू छन्दों को हिन्दी में परिवर्तित करने का कार्य अत्यन्त कुशलतापूर्वक किया है। उनके गीतों में पहली पंक्ति टेक के रूप में ली जाती है। यह इतनी मधुर होती है कि इसे बार-बार हर पंक्ति के साथ दोहराने की इच्छा होती है। जैसे निम्न पंक्तियाँ द्रष्टव्य है—

1. मुखर पिक हौले बोल।[175]

2. पथ देख बिना दी रैन।[176]

3. प्राणपिक प्रिय नाम रे कह।[177]

4. अलि वरदान मेरे नयन।[178]

5. झरते नित लोचन मेरे हों।[179]

कुछ गीतों में महादेवी ने परम्परा से मुक्त होकर नूतन संगीत सुरुचि का परिचय दिया है। कुछ गीत उदाहरण के रूप में द्रष्टय है—

प्रिय गया है लौट रात!

अथवा,

लाये कौन संदेश नये धन।[181]

इस प्रकार स्पष्ट है कि महादेवी का गीति काव्य संगीत की स्वर लहरी में बँधा हुआ और गेय हैं। यद्यपि महादेवी ने निराला के समान गीत का विभाजन राग-रागिनियों में नहीं किया है लेकिन फिर भी सभी गीत संगीतमय है। डा0 विनय मोहन शर्मा भी इसी बात को स्वीकार करते हुए लिखते हैं-"प्रसाद और महादेवी के गीतों में संगीतशास्त्र का कोई बंधन नहीं है।"[182] महादेवी के गीतों की प्रशंसा में तत्कालीन पत्रिका 'सुधा' में श्याम नारायण वैजल लिखते हैं कि-"देवी जी के गीत जितने संगीतपूर्ण हैं, उतने आधुनिक काल के किसी अन्य कवि के नहीं। वे संगीत के घर हैं। मुझे तो उनके पढ़ने में संगीत का आनन्द मिलता है और जिन्हें उनमें संगीत नहीं मिलता या जो उन्हें तरन्नुम के साथ नहीं पढ़ सकते। उनके विषय में वही कहना ठीक होगा कि वे नाच तो जानते नहीं, पर आँगन टेढ़ा बतलाते हैं।"[183]

हृदय के किसी एक भाव को अभिव्यक्ति प्रदान करने के कारण गीत के कलेवर का सीमित होना स्वाभाविक है। महादेवी के कुछ गीत तो अत्यंत संक्षिप्त है जबकि कुछ अत्यधिक लम्बे हो गए हैं। 'नीरजा' में संकलित गीत 'घन बनूँ वर दो मुझे प्रिय' सात पंक्तियों में सिमट गया है और 'नीहार' में संगृहीत गीत 'मुर्झाया

फूल' 52 पंक्तियों तक फैल गया है। इस प्रकार के लम्बे गीतों में भावुकता के स्थान पर अनुभूति इतिवृत्त, क्रिया व्यापार आदि तत्वों का समावेश हो गया है। महादेवी के समस्त गीतों को दृष्टिगत करने पर स्पष्ट होता है कि जैसे-जैसे उनमें काव्यकला का विकास होता गया वैसे-वैसे गीत में पंक्तियों की संख्या भी कम होती गई।

महादेवी ने अपने गीतों में कोमलकांत पदावली का प्रयोग किया है जिसके प्रत्येक चरण में कोमल एंव सुकुमार शब्दों का प्रयोग किया गया है। महादेवी की भाषा उनके ह्रदयगत भावों की अभिव्यक्ति करने में पूर्ण सक्षम है। अपनी भाषा को समृद्ध बनाने के लिए महादेवी ने अलंकार, बिम्ब, प्रतीक आदि का प्रयोग किया है। महादेवी के गीतों की भाषा बड़ी ही परिमार्जित एवं व्यंजनापूर्ण है जिसमें सुगढ़ शब्द योजना द्वारा इन्होंने अपनी कलात्मक क्षमता का प्रदर्शन किया है। महादेवी की कविताओं में माधुर्य एवं प्रसादगुण अपने सम्पूर्ण वैभव के साथ विद्यमान है। साथ ही उपनागरिका वृत्ति भी महादेवी के गीतों के अनुकूल है। महादेवी ने अपने गीतों में खड़ी बोली को कोमलता और मधुरता का आगार बना दिया है। उन्होंने अधिकतम तत्सम शब्दों का प्रयोग किया है, जो काव्योपयुक्त एवं सरसता के पोषक हैं।

महादेवी ने अपने गीतों में लोकगीतों का भी आश्रय लिया है। वे स्वीकार भी करती है कि "मेरे गीत अध्यात्म के अभूर्त आकाश के नीचे लोकगीतों की धरती पर पले हैं।[184] उन्होंने लोकगीतों की लय को अपनी प्रतिभा के अनुसार गीतों में रूपांतरित कर दिया है। कुछ गीत उदाहरण के रूप में प्रस्तुत हैं जिनमें लोकगीतों की लय का उपयोग किया गया है-

1. मुखर पिक हौले बोल,
हठीले हौले-हौले बोल।[185]
2. प्राणपिक प्रिय नाम रे कह![186]
3. पथ देख बिता दी रैन, मैं प्रिय पहचानी नहीं।[187]
4. कहाँ से आए बादल काले?[188]

लोकगीतों से प्रभावित रहने के कारण इनके गीतों में सादगी, सहजता और सदा रहने वाला ताजापन है।

स्पष्ट है कि महादेवी का गीति साहित्य छायावादी कवियों में अप्रतिम है। उनके गीतों में गीतिकाव्य की सभी विशेषताओं का समावेश हुआ है। महादेवी के गीतों में भी ह्रदय की सहज भावनाओं को ही वाणी मिली है यद्यपि यह सच है कि उनकी भावुकता पर बौद्धिक संयम का वितान अवश्य तना हुआ है। लेकिन

इस बौद्धिकता ने उनके गीतों को बोझिल नहीं होने दिया है। यही कारण है कि उनके गीतों को बार-बार पढ़ने पर भी मन को तृप्ति नहीं मिलती। कलात्मक दृष्टि से भी उनके गीत उत्कृष्ट कोटि के बन पड़े हैं।

भाषा

मानवमन में जितने भी मनोभाव एवं विचार आते है, उन सबको व्यक्त करने का एकमात्र साधन भाषा है, जिसका निर्माता मनुष्य स्वयं है। भाषा मनुष्य द्वारा किया गया एक ऐसा आविष्कार है जो निरन्तर परिवर्तित होता रहा है। जैसे-जैसे मनुष्य में ज्ञान का विस्तार होता गया, वैसे वैसे उसकी भाषा का स्वरूप भी परिष्कृत होता चला गया। शब्दों में भी पुराने अर्थ को छोड़कर नया अर्थ भरा गया, कभी उनका अर्थ विस्तार हुआ, कभी उनमें अर्थ संकोच आया। सुमित्रानंदन पंत लिखते हैं, "विश्व की सभ्यता के विकास तथा ह्रास के साथ वाणी का भी युगपत विकास तथा ह्रास होता है।"[189]

प्रत्येक युग के अनुरूप भाषा भी अपना स्वरूप बदलती रही। वेद और उपनिषदकाल में दर्शन का प्राधान्य था अतः उस काल में विचारों के अनुरूप संस्कृत भाषा का प्राधान्य रहा। इसके पश्चात पालि, प्राकृत, अपभ्रंश, अवहट्ठ, पुरानी हिन्दी से गुजरते हुए ब्रजभाषा और अवधी साहित्यिक क्षेत्र में भक्ति काल के अंतर्गत स्वयं को प्रतिष्ठापित करती है। भक्ति की नाना मनोदशाओं एवं भावों को ये दोनों बोलियाँ पूर्ण उत्कर्ष के साथ प्रस्तुत करती है। रीतिकाल में आकर जिस प्रकार समाज अनेक रूढ़ियों में बँध जाता है उसी प्रकार भाषा भी अनेक बंधनों में बँध जाती है, शब्दों का अर्थ गौरव नष्ट होने लगता है, वे रूढ़ होकर परम्परागत हो जाते है। आधुनिक काल में आकर परम्परा प्रचलित बोली के स्थान पर खड़ी बोली को मान्यता प्राप्त होती है। यद्यपि भारतेन्दु युग में अवश्य काव्यभाषा के रूप में ब्रजभाषा चलती रही। लेकिन द्विवेदी युग में खड़ी बोली को प्रतिष्ठापित करने में महावीर प्रसाद द्विवेदी, अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध आदि ने महत्वपूर्ण योगदान दिया। ब्रजभाषा की कोमलकांत पदावली के स्थान पर खरखराहट वाली खड़ी बोली को स्थापित करना आसान कार्य नहीं था। इस बात को स्वीकार करते हुए महादेवी भी लिखती हैं- "काव्य की भाषा बदलना सहज नहीं होता और वह भी ऐसे समय में जब पूर्वगामी भाषा अपने माधुर्य में अजेय हो क्योंकि एक तो नवीन अनगढ़ शब्दों में काव्य की उत्कृष्टता की रक्षा कठिन हो जाती है, दूसरे उत्कृष्टता के अभाव में प्राचीन का अभ्यस्त युग उसके प्रति विरक्त होने लगता है।"[190] छायावाद युग में कवियों का कार्य दुहरा हो गया उन्हें अपने भावों की अभिव्यक्ति प्रदान करने के साथ-साथ खड़ी बोली में सरसता भी भरनी थी। प्रसाद, निराला, पंत तथा महादेवी ने भाषा के क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन किए। जिन

शब्दों के द्वारा द्विवेदी युग में इतिवृत्तात्मक वर्णन प्रस्तुत किया गया, उन्हीं शब्दों के माध्यम से छायावादी कवियों ने सूक्ष्म भावों को अभिव्यक्ति प्रदान की। एक उदाहरण द्रष्टव्य है।

'नीरव' और 'रजनी' जैसे शब्द जब द्विवेदी युग में कविता में आते हैं तो उनका रूप इस प्रकार था-

विकलता उनकी अवलोक के रजनि भी करती अनुताप थी
निपट नीरव हो मिस ओस से नयन से गिरता बहु वारि था

यही शब्द जब छायावादी कविता में आते हैं तो बिल्कुल भिन्न प्रकार की व्यंजना करते हैं-

"नीरव नभ के नयनों पर
हिलती हैं रजनी की अलकें

जाने किसका पथ देखती
बिछकर फूलों की पलकें।"[191]

स्पष्ट है कि छायावाद में आकर भाषा के अन्तर्गत प्रयुक्त शब्दों की अर्थवत्ता बढ़ जाती है। लाक्षणिकता और व्यंजनात्मकता के द्वारा कविता में नूतन चमत्कार और सौन्दर्य आ जाता है। सभी प्रमुख कवियों ने भाषा की शक्ति को बढ़ाने में अपूर्व योगदान दिया। महादेवी अपने एक इण्टरव्यू में स्वीकार भी करती हैं-"छायावाद न आता तो ब्रजभाषा से खड़ी बोली हार जाती। जो मार्दव, जो लालित्य, जो माधुर्य है वह, और फिर भक्तिकाल के अंतर्गत की तीव्र भावना को कौन लाया। छायावाद ही लाया। तो कोश उठाकर आप देखिए, कितने शब्द बनाए हैं। कितने शब्द माँजे हैं हमने। हर शब्द को तपाया है, हमने अपनी अनुभूति में उसे ढाला है।"[192] महादेवी की काव्य भाषा का अध्ययन अपने आप में बड़ा रोचक है। उसमें जहाँ एक ओर संस्कृत भाषा के शब्दों की छाया है तो वही दूसरी ओर लोकभाषा के शब्दों का भी प्रयोग है। शब्दों के तद्भव एवं अपभ्रंश रूप का भी प्रयोग मिल जाता है। वस्तुतः भाषा उनकी अनुभूति को अभिव्यक्त करने में पूर्ण समर्थ है। उन्होंने जब जैसे चाहा, शब्दों को उसी रूप में ढालकर अपनी भाषा को समृद्ध बनाया है।

अध्ययन, मनन और परम्परायें जिस प्रकार अनुभूति और विचारों को प्रभावित करती हैं उसी प्रकार उन्हें अभिव्यक्त करने वाले अंगों को भी प्रभावित करती हैं। महादेवी द्वारा संस्कृत भाषा के गहन अध्ययन का प्रभाव उनकी भाषा में स्पष्टतः परिलक्षित होता है। इसीलिए इनकी काव्यभाषा में तत्समता की प्रवृत्ति है। यद्यपि उन्होंने तत्सम शब्दों के प्रयोग से अपनी भाषा को बोझिल नहीं होने दिया है। उन्होंने संस्कृत से शब्द

लेकर उन्हें हिन्दी की प्रकृति के अनुसार ढाला और अप्रचलित शब्दों का कम से कम प्रयोग किया। संस्कृत के शब्दों का प्रयोग होते हुए भी इनकी कविता कोमलकांत पदावली से युक्त है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

कण-कण दीपक तृण तृण बाती

हँस चितवन का स्नेह पिलाती,[193]

महादेवी की काव्यभाषा में संस्कृत शब्दों का तद्भव रूप में प्रयोग भी मिलता है। जैसे-स्वप्न-सपना, रिक्त-रीता, श्वास-साँस, सौभाग्य-सोहाग, प्रतिच्छाया-परछाई, अश्रु-आँसू, शय्या-सेज, मिश्री-मिसरी, रात्रि-रैन, अंधकार-अँधियारी, सिंदूर-सेंदुर, कण-कन, रुदन-रोदन, सुगन्ध-सुवास आदि अनेक शब्द इनकी काव्यभाषा में मिलते हैं।

छायावाद जिस सांस्कृतिक जागरण और स्वाधीनता आन्दोलन का परिणाम था वह मध्यवर्गीय नेतृत्व में लोकजीवन का आन्दोलन था। अतः इन सभी कवियों के काव्य में लोक प्रचलित शब्द मिल जाते हैं। महादेवी में भी लोक शब्दों का प्रयोग खुलकर किया है। जैसे- हौले, धुँधले, बिछलन, पांते, ढरकीले, हठीले, सजीले, नैन, किलोल, लजीले, भीर, उजियारी, बावली, मारग, मुस्काते, साँस, उजियाले, पाहुन, चितवन, नेह, पीर आदि अनेक शब्दों द्वारा अपनी काव्यभाषा को जीवन्त किया है।

अपनी काव्यभाषा के निर्माण में महादेवी ने व्यापक एवं उदार दृष्टि का परिचय दिया है और कहीं कहीं उर्दू के शब्दों को भी ग्रहण किया है। जैसे- साकी, मदिरा, मादक, खुमार, दीवानी, राह, दाग, बन्दीखाना, बेहोशी, प्याला, प्याली आदि। यद्यपि कुछ स्थानों पर संस्कृत शब्दों के बीच में उर्दू शब्दों का प्रयोग खटकता है। निम्न पंक्ति उदाहरण के रूप में प्रस्तुत है-

छोड़ कर जो वीणा के तार

शून्य में लय हो जाता राग

विश्व छा लेती छोटी आह

प्राण का बंदीखाना त्याग।[194]

महादेवी ने भाषा की सजीवता को बढ़ाने के लिए मुहावरों का भी प्रयोग किया है। जैसे निम्न पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं-

सीमा ही लघुता का बन्धन

है अनादि तू मत घड़ियाँ गिन[195]

अथवा,

तुम विद्युत बन आओ पाहुन
मेरी पलकों में पग धर धर।[196]

सूक्ष्म एवं अमूर्त भावों की अभिव्यंजना महादेवी ने अत्यंत सांकेतिक शब्दों द्वारा की है और इसके लिए लाक्षणिक शैली का आश्रय लिया है। लक्षणा का अर्थ है जहाँ मुख्यार्थ की बाधा होने पर रूढ़ि या प्रयोजन द्वारा मुख्यार्थ से सम्बन्ध रखने वाला अन्य अर्थ का ज्ञान कराया जाय; वहाँ लक्षणा शब्द शक्ति होती है। स्पष्ट है कि महादेवी ने लाक्षणिक शैली का प्रयोग बहुतायत से किया है। एक उदाहरण प्रस्तुत है-

"झरते नित लोचन मेरे हों।"[197]

यहाँ पर नेत्रों से गिरने वाले आँसुओं के स्थान पर नेत्रों के झरने की व्यंजना आँसुओं की अधिकता को व्यक्त कर रही है। लक्षणा का एक अन्य उदाहरण विरोधमूलक शब्दों द्वारा प्रस्तुत है-

"शलभ मैं शापमय वर हूँ
किसी का दीप निष्ठुर हूँ।"[198]

यहाँ पर वरदान को शापमय कहा गया है। जलना अवश्य शापमय है किन्तु अलौकिक प्रियतम के लिए जलना ही वरदान है। यहाँ पर महादेवी वेदना को वरदान मानकर ग्रहण कर रही हैं।

महादेवी ने सूक्ष्मतम भावों की अभिव्यक्ति के लिए प्रतीक शैली का आश्रय लिया है। इन प्रतीकों में विविधता तथा अनेकार्थता है। छायावादी कवियों द्वारा प्रयुक्त प्रतीक तो महादेवी की भाषा में मिलते ही हैं, इसके अतिरिक्त भी अनेक प्रतीक उनके काव्य में हैं। महादेवी का सर्वाधिक प्रिय प्रतीक दीपक है जो साधक की आत्मा का प्रतीक है अन्य प्रतीकों में तेल-आंतरिक स्नेह, अंधकार-पीड़ा, झंझावात-विघ्नबाधाएँ, वर्षा-करुणा, ग्रीष्म-क्रोध, बसन्त-आनंद, पतझर-विषाद, मलय-पवन- मधु, मकरंद-आँसू, नभ की दीपावली तारो, वीणा-हृदय, उषा-सुख, प्याला-जीवन, कालिन्दी-अश्रुधारा का प्रतीक है। महादेवी के काव्य में प्रतीकों की लम्बी शृंखला है। जैसे दीपक प्रतीक का एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

"दीप मेरे जल अकम्पित घुल अचंचल।"[199]

निम्न गीत में दर्पण माया का प्रतीक बना हुआ है-

टूट गया वह दर्पण निर्मम।[200]

चित्रात्मकता महादेवी की काव्यभाषा की प्रमुख विशेषता है। स्वयं चित्रकार होने के कारण महादेवी ने शब्दों में माध्यम से चित्र प्रस्तुत करने का प्रयास किया है औरइसमें सफल भी रही है। महादेवी के शब्द चित्रों के सम्बंध मं सत्यपाल चुघ का कहना है-"महादेवी में रंगों की समग्रता का सौन्दर्य रहता है। वे मानों इंद्रधनुषी तूलिका को चाँदनी के सार में डुबोकर चित्र अंकित करती हैं। कमलदल पर किरण अंकित चित्र ही खींच सकती हैं-उनके चित्रों में रंगमिश्रित तरलता ही मिल सकती है। वस्तुतः महादेवी मे चित्रमयता भी गीतों के अनुकूल है।"[201] भावविह्लता के अनेक सुन्दर चित्र महादेवी ने अपनी भाषा द्वारा प्रस्तुत किए हैं। एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

पुलक-पुलक उर सिहर सिहर तन

आज नयन आते क्यों भर-भर।[202]

इन पंक्तियों में क्रियाओं की आवृत्ति के साथ-साथ मन की उस वृत्ति का भी परिचय मिलता है जिसमें रह-रह कर प्रियमिलन की उत्कंठा जाग रही है।

वर्णमैत्री भी संश्लिष्ट चित्र प्रस्तुत करने में सहायक सिद्ध होती है। वर्णमैत्री द्वारा महादेवी ने वेशभूषा और बाह्य आकृति के साथ वातावरण और आँगिक चेष्टाओं का चित्र भी प्रस्तुत किया है। उदाहरण द्रष्टव्य है-

रुपसि तेरा घन केश पास

श्यामल-श्यामल कोमल कोमल

लहराता सुरभित केश पाश।[203]

महादेवी की काव्यभाषा में चित्रात्मकता की प्रवृत्ति की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए प्रकाशचन्द्र गुप्त लिखते हैं-"हम श्रीमती महादेवी वर्मा के काव्य को एक अनोखी चित्रशाला के रूप में भी देख सकते है। आपके छन्द अधिकतर शब्दचित्र हैं। आपकी अलंकृत भाषा और प्रकृति साधना शब्दचित्रों में ही व्यक्त हुई है।"[204]

महादेवी की काव्यभाष में ध्वन्यात्मकता की प्रवृत्ति भी मिलती है। शब्दचित्रों में जहाँ ध्वन्यात्मकता का उपयुक्त समावेश हो गया है, वहाँ कविता में चमत्कार और भी बढ़ जाता है जैसे निम्न पंक्तियाँ उदाहरण रूप में प्रस्तुत हैं-

"मर्मर की सुमधुर नूपुर-ध्वनि

अलिगुंजित पद्मों की किंकिणि

भर पदगति में अलस तरंगिणि"[205]

उपर्युक्त पंक्तियों में उपयुक्त शब्दों की ध्वनियाँ सचमुच नृत्य का चित्र प्रस्तुत करने में समर्थ हैं। लघुवर्णों की बार-बार आवृत्ति मन्द गति से होने वाले नृत्य को स्पष्ट कर रही है।

काव्य में अलंकारों के प्रयोग द्वारा भावतत्व एवं कलातत्व दोनों ही समृद्धि को प्राप्त होते हैं। महादेवी ने भी अलंकारों के प्रयोग द्वारा अपनी भावानुभूतियों को नूतन सौन्दर्य प्रदान किया है। अलंकारों का प्रयोग तो हमेशा से ही होता आ रहा है लेकिन छायावाद में भावों की प्रधानता रही और अलंकार भी भावों को उभारने में सहायक सिद्ध हुए हैं। पंत लिखते हैं -"अलंकार केवल वाणी की सजावट के लिए नहीं, वे भाव की अभिव्यक्ति के विशेष द्वार हैं। भाषा की पुष्टि के लिए, राग की परिपूर्णता के लिए आवश्यक उपादान है। वे वाणी के आचार, व्यवहार, रीति,नीति है।"[206] महादेवी ने शब्दालंकारों और अर्थालंकारों दोनों का प्रयोग किया है। शब्दालंकारों में अनुप्रास, वीप्सा और श्लेष का अधिक प्रयोग मिलता है। श्लेष अलंकार का उदाहरण महादेवी की कविता में द्रष्टव्य है-

'अधर भी हूँ और स्मित की चाँदनी भी हूँ।[207]

यहाँ अधर शब्द दो अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। पहले अधर का अर्थ ओंठ और दूसरे का अर्थ आकाश है।

यमक के उदाहरण भी महादेवी की कविताओं में मिलते हैं। एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

"जगती-जगती की मूक प्यास।'[208]

महादेवी की काव्यभाषा में अर्थालंकारों का भी प्रचुर उपयोग मिलता है। सूक्ष्मभावों की अभिव्यक्ति के लिए मूर्त तथा मूर्त के लिए अमूर्त की योजना छायावादी काव्यशैली की प्रमुख विशेषता है। महादेवी अप्रस्तुत योजना द्वारा रूप व्यापारों तथा अंतर्वृत्तियों-दोनो की अभिव्यक्ति एक नहीं, अनेक अप्रस्तुत वस्तुओं द्वारा करती है। कभी इनकी अप्रस्तुत योजना उपमा-रूपक की समन्वय पद्धति पर चलती है कभी लक्षणा के बल पर ही वह अप्रस्तुतों के किसी व्यापार मात्र से प्रस्तुत हो जाती है। निम्न पंक्तियां द्रष्टव्य हैं-

"स्पन्दन में चिर निस्पन्द बसा
क्रन्दन में आहत विश्व हँसा

नयनों में दीपक से चलते
पलकों में निर्झरिणी मचली।"[209]

महादेवी के काव्य में प्रभावसाम्य पर आधारित अनेक अप्रस्तुत प्रतीकवत मिलते हैं-

"तड़ित है उपहार तेरा

बादलों सा प्यार है मेरा।"[210]

महादेवी के काव्य में कहीं-कहीं विरोधात्मक किन्तु तुलनात्मक उपमानों का भी प्रयोग किया है-

कह दे माँ क्या अब देखूँ।

तेरे असीम आँगन की देखूँ जगमग दीवाली

या इन निर्जन कोने के बुझते दीपक को देखूँ।[211]

यहाँ एक ओर असीम आँगन अर्थात आकाश की जगमग दीवाली और दूसरी ओर एकान्त में बुझता हुआ दीपक है। यद्यपि दोनों में विरोधाभास है किन्तु प्रकाश का साम्य है।

महादेवी के काव्य में मूर्त प्रस्तुत के लिए अमूर्त तथा अमूर्त प्रस्तुत के लिए मूर्त प्रस्तुत का विधान किया गया है। निम्न पंक्तियों में अमूर्त प्रस्तुत का मूर्त विधान स्पष्ट है:—

"जिन प्राणों से लिपटी हो

पीड़ा सुरभित चंदन सी"[212]

यहाँ पीड़ा अमूर्त तथा सुरभित चंदन मूर्त है। मूर्त प्रस्तुत का अमूर्त विधान इस प्रकार किया है—

"शून्य नभ पर उमड़ जब दुख भार सी।

नैशतम में सघन छा जाती घटा।[213]

यहाँ घटा छा जाना' मूर्त है, किन्तु मधुभार अमूर्त है

अमूर्त भाव के लिए अमूर्त प्रस्तुत का भी प्रयोग महादेवी की कविता में मिलता है-

"तम सा नीरव नभ सा विस्तृत

हास रुदन से दूर अपरिचित

वह सूनापन हो उनका।"[214]

यहाँ सूनापन जो स्वयं अमूर्त है की उपमा अमूर्त तम से की गई है। महादेवी के काव्य में रूपकों का प्रचुर प्रयोग हुआ है। सांगरूपक का एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

"प्रिय सांध्य गगन मेरा जीवन।"[215]

रूपक के द्वारा महादेवी विराट कल्पनाएँ भी करती हैं-

"विश्ववीणा में कब से मूक
पड़ा था मेरा जीवन तार"[216]

गुण की दृष्टि से महादेवी की काव्यभाषा में माधुर्य गुण मिलता है। इसमें सर्वत्र कोमलकांत पदावली का प्रयोग किया गया है और माधुर्य के साथ-साथ प्रसादगुण युक्त शब्दावली भी मिलती है। एक उदाहरण प्रस्तुत है—

"श्यामल-श्यामल कोमल कोमल
लहराता सुरभित केश पाश।"[217]

महादेवी की काव्यभाषा में दुरुक्ति का बहुत अधिक प्रयोग मिलता है कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

1. बूंद बूंद होकर भरती वह
   भरकर छलक छलक जाती।[218]

2. अब अणु अणु सौंपे देता है[219]
   युग-युग का संचित प्यार मुझे।

महादेवी की काव्यभाषा जहाँ छायावादी कवियों में समृद्ध मानी गई है वहीं आलोचक गण इसमें कई दोष भी देखते है। महादेवी ने अपने काव्य में कुछ शब्दों का प्रयोग बहुत बार किया है जैसे-चिर, तुहिन, अवगुण्ठन। महादेवी की प्रारंभिक चार रचनाओं में अवगुण्ठन शब्द 100 से भी अधिक बार आया है, जिसके कारण ब्रजकिशोर चुतर्वेदी इस युग को अवगुण्ठन युग नाम देने की सलाह देते हैं।

आलाचकों का विचार है कि भाषा में प्रयुक्त शब्द या तो कोमल हो या कर्कश क्योंकि कोमल शब्दों के मध्य यदि कर्कश शब्द आ जाता है तो भी भाषा के प्रवाह में बाधा पड़ती है और कर्कश के स्थान पर कोमल आ जाए तो भी। महादेवी की भाषा में कुछ स्थानों पर यह दोष पाया जाता है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

प्लावित कर पृथ्वी के पत्त
समतल कर बहुर गह्वगर्त्त

'मैं आज चुपा आई चातक'[227]

में 'चुपा आयी' अशुद्ध प्रयोग है। इस के स्थान पर 'चुपकर आयी' उचित था।

'झिप-झिप आँखे कहती हैं'[228]

झपक-झपक के स्थान पर झिप-झिप का प्रयोग उचित नहीं है।

'लुटती घुलती मिसरी सी'[229] मिसरी सी लुटती घुलती अशुद्ध है क्योंकि भला मिश्री किस प्रकार लुट सकती है।

'मंडराएगी अभिलाषें'[230] में अभिलाषें के स्थान पर अभिलाषाएँ होना चाहिए।

'तब बुझते तारों के नीरव नयनों का यह हाहाकार

आँसू से लिख-लिख जाता है कितन अस्थिर है संसार।[231]

हाहाकार ऊँची आवाज में हुआ करता है इसीलिए नीरवनयनों का हाहाकार कैसा।—

निम्न पंक्तियों में अकेली पीड़ा का हाहाकार बताया गया है, जो अशुद्ध है-

इसी प्रकार महादेवी ने कर्णाधिर, अंधकार, और हलाहल शब्दों का भी अशुद्ध प्रयोग किया है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं-

1. चल चपला के दीप जलाकर

   किसे ढूँढ़ता अंधाकार।[233]

2. विसर्जन ही है कर्णाधार।[234]

3. हालासी हालाहल सी।[235]

महादेवी की कुछ पंक्तियों में भाव और भाषा अलग अलग व्यक्त हो रहे हैं। जैसे निम्न पंक्तियों में-

इन हीरक से तारों का

कर चूर बनाया प्याला[236]

इन पंक्तियों में कर चूर का अर्थ ऐसा लगता है जैसे चूर-चूर करके यानी तोड़कर के बनाया हो। परन्तु इसका अर्थ है-मस्ती में सरोबार। अतः यहाँ भाव और भाषा एक साथ ध्वनित नहीं हो रहे हैं।

महादेवी की काव्यभाषा में पुनरुक्ति दोष भी बहुत अधिक मिलता है। कुछ शब्दों का बार-बार प्रयोग किया गया है। 1942 में 'वीणा' पत्रिका में एक टिप्पणी छपती है-"यामा में छायावाद के बेसिक शब्दों को इतनी बार दुहराया गया है कि एक शब्द को बार-बार सुनते-सुनते कान थक जाते हैं। कहीं कहीं कवयित्री के शब्दकोष के सीमित होने का संदेह होने लगता है।"[237] इन शब्दों में चल, चिर, तुहिन, अवगुण्ठन आदि शब्द द्रष्टव्य हैं-

1. "चल चपला के दीप जलाकर।"[238]

2. चल चितवन के दूत सुना।"[239]

3. मलयानिल का चल दुकूल।

इसी प्रकार 'चिर' का प्रयोग द्रष्टव्य है-

"यह चिर अतृप्ति हो जीवन
चिर तृष्णा हो मिट जाना।"[240]

'तुहिन' का प्रयोग द्रष्टव्य है-

"तुहिन के पुलिनों पर छविमान"[241]

अथवा

"रजत करों की मृदुल तूलिका से
तुहिन बिन्दु सुकुमार।"[242]

महादेवी ने अपनी काव्यभाषा में प्याला-प्याली शब्दों का बहुत अधिक प्रयोग किया है और अलग-अलग संदर्भों में प्रयुक्त हुआ है। 'वीणा' में एक आलोचक लिखते हैं -"पता नहीं, इतनी अधिक बार प्याली और प्याले का प्रयोग क्यों किया गया है, शंका उत्पन्न होती है कि 'जीवन प्याला' शुद्ध प्रयोग है अथवा 'जीवन प्याली'। प्रश्न यह भी है कि प्याला और प्याली एक ही वस्तु है या इन दोनों में भेद है? हमारे विचार में यह प्रश्न महादेवी जी स्वयं सुलझा नहीं सकी। इसीलिए दोनों को समान रूप से प्रयोग में लाई है।"[243] उदाहरण के रूप में जीवन प्याला और जीवन प्याली का एक एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

इस मीठी सी पीड़ा में
डूबा जीवन का प्याला।[244]

अथवा, कितनी करुणाओं का मधु

कितनी सुषमा की लाली

पुतली में छान भरी है

मैंने जीवन की प्याली।[245]

इस प्रकार स्पष्ट है कि महादेवी की काव्यभाषा में दिखाए गए उपर्युक्त दोषों के कारण आलोचकगण उनमें काव्य प्रतिमा का पूर्ण विकास नहीं पाते। नन्ददुलारे बाजपेई स्वीकार करते हैं कि महादेवी जी की रहस्यानुभूति जितनी समृद्ध है,-उनकी काव्यप्रतिमा उतनी ही उत्कृष्ट नहीं और भाषा शक्ति भी सीमित है।''[246] रमेश चन्द्र शाह इसका कारण महादेवी का काव्यक्षेत्र में देर से प्रवेश को मानते हैं क्योंकि तब तक ये सभी शब्द इतना व्यवहृत हो चुके थे कि महादेवी में आकर ये शब्द केवल पुनरावृत्ति जैसे लगने लगते हैं। वे लिखते हैं- ''वही-वही भाव--- लगभग उन्हीं-उन्हीं शब्दों उपकरणों के साथ थोड़े हेरफेर के साथ दुहराए जाते हैं। महादेवी का वैभव रूढ़ अभिव्यक्तियों का वैभव है।''[247] विश्वम्भर मानव यह तो स्वीकार करते हैं कि प्रारम्भ में अवश्य महादेवी से भाषा के क्षेत्र में कुछ गड़बड़ियाँ हुई हैं पर वे संख्या में कम हैं। वस्तुतः वे महादेवी की भाषा को अत्यन्त कोमल सरस और मधुर मानते हैं। वे लिखते हैं कि-''उसमें कहीं कर्कशता का चिह्न नहीं। खड़ी बोली के कवियों में जो मसृणता उनकी भाषा में है, वह समरूप से किसी की भाषा में नहीं।''[248]

वस्तुतः महादेवी ने काव्य को हृदय की अनुभूति माना है, जो नैसर्गिक है। इसीलिए उसकी काँट-छाँट में वह विश्वास नहीं करती, क्योंकि काँट-छाँट से उसका स्वरूप बदल जाता है। इसलिए वह कविता में संशोधन कम ही करती है। वह स्वयं कविता लिखते समय का अपनी मानसिक स्थिति के विषय में लिखती हैं कि-''जब तीव्र अनुभूति होती है तब लिखती हूँ और कभी-कभी ऐसे अवसर आते है कि जैसे मैं सो गई हूँ और अचानक जाग जाती हूँ तो लगता है, लिखना है मुझको। जब मैं लिखती हूँ तो लगता है, सब बना हुआ आता है। मुझे प्रयत्न नहीं करना पड़ता। काट छाँट मेरे पास कम है। गीतों में काँट छाँट बहुत चलती भी नहीं।''[249] महादेवी के इस कथन से स्पष्ट है कि उनका काव्य अकृत्रिम है। भावों की अभिव्यंजना में उन्होंने शब्दों के अंग-भंग की भी चिन्ता नहीं की। यही कारण है कि उपर्युक्त गिनाए सभी दोष उनकी भाषा में मिल जाते हैं। लेकिन इन्द्रनाथ मदान भी इन दोषों को दोष के अन्तर्गत नहीं स्वीकार करते। वे लिखते हैं- ''तुक और शब्दों के ऐसे प्रयोग काव्य की गति को मन्द नहीं करते, वरन् उसमें स्वाभाविकता ला देते है।''[250]

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते है कि महादेवी की काव्यभाषा के उपर्युक्त दोष मात्र भावों की अतिशयता के कारण है। वस्तुतः उनकी काव्यभाषा अत्यन्त समृद्ध हैं। यद्यपि वे सीमित काव्य सामग्री का उपयोग अपने काव्य में करती हैं लेकिन नवीन शब्दों की सहायता से अपनी सूक्ष्मतम भावनाओं को प्रकट करने के लिए कोमलतम शब्दों का चयन करके, रंगीन और अत्यन्त रोचक कल्पनाओं के द्वारा मानवमन को प्रभावित करने में वे पर्याप्त सफल रही हैं। महादेवी की काव्यभाषा के सम्बंध में सितम्बर, 1942 की 'वीणा' में एक टिप्पणी छपती है कि -"यामा की भाषा सजीव भाषा है। उसने छायावाद की कठोरता, कर्कशता और विषमता को एक ऐसी स्निग्धता से ढंक दिया है जिसकी प्रशंसा बरबस करनी पड़ती है।"[251] महादेवी की काव्यभाषा में अनेक दोष दिखलाने के बाद भी आलोचक उसकी प्रशंसा करने को बाध्य हैं।

बिम्बः-

कवि के लिए यह आवश्यक है कि वह तीन बातों में निपुण हो- 1. अनुभूति-जिसके द्वारा वह काव्यरचना की ओर प्रवृत्त होता है 2. अभिव्यक्ति -जिसके द्वारा वह अपनी अनुभूति को भाषा के माध्यम से अभिव्यक्ति प्रदान करता है और तीसरा और सबसे महत्वपूर्ण तत्व है- सम्प्रेषण। अनुभूति सभी को होती है और उसे दूसरों तक सम्प्रेषित भी सभी करते है लेकिन जनसाधारण और कवि की सम्प्रेषण क्षमता भिन्न होती है। सामान्य जन अपनी बात को साधारण ढंग से कहता है और कवि या कलाकार अपनी बात को इस ढंग से कहते हैं कि दूसरों को भी वह अनुभूति अपने जैसी लगने लगती है और यही कवि की सफलता है। प्राचीन साहित्य में अपनी अनुभूति को अभिव्यक्ति के योग्य बनाने के लिए अलंकार, रीति, गुण, वक्रोक्ति, ध्वनि जैसे परम्परागत सिद्धांतों का आश्रय लिया जाता था लेकिन आधुनिक साहित्य में आकर कवि ने अपनी अनुभूति को अभिव्यक्ति क्षम बनाने के लिए प्राचीन सिद्धांतों के साथ-साथ विम्ब योजना और प्रतीक विधान का प्रयोग किया है और अपनी अनुभूतियों को सफलता से व्यक्त करने में सक्षम हुए हैं।

छायावाद के प्रायः सभी कवियों ने अपनी कविताओं को प्रभावशाली रूप देने के लिए बिम्बों का सफल प्रयोग किया है। बिम्ब शब्द अंग्रेजी के image का हिन्दी रूपान्तर है। वस्तुतः बिम्ब शब्द एक प्रकार का शब्द चित्र है, जिसका सम्बंध जीवन के व्यावहारिक क्षेत्रों से तथा कल्पना के शाश्वत जगत से होता है। सी.डी. लेविस ने बिम्ब को परिभाषित करते हुए लिखा है कि-"बिम्ब एक प्रकार का भावगर्भित शब्दचित्र है जो किसी न किसी रूप में इंद्रियबोध से सम्बंधित होता है।"[252] इस प्रकार बिम्ब का सीधा-सीधा सम्बंध अभिव्यक्ति तथा मन में उभरने वाले चित्रों से है। कवि अपनी अनुभूतियों को बिम्बों के माध्यम से ही व्यक्त

करता है। बिम्ब कवि की सजीव अनुभूति एवं तीव्रभावना से अनुप्राणित होते हैं और गत्यात्मकता, सजीवता, सुन्दरता एवं सरसता के कारण कवि की अनुभूति को बिल्कुल सजीव रूप में हमारे सामने उपस्थित कर देते हैं। जिस कवि की कल्पना शक्ति जितनी तीव्र एवं उत्कट होती है, वह उतने ही उत्कृष्ट बिम्बों का निर्माण करने में सक्षम होता है। बिम्ब योजना में कल्पना का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। कल्पना को काव्यात्मक रूप बिम्बों के माध्यम से ही मिल पाता है। बिम्बविधान के अन्तर्गत प्रत्येक बिम्ब का संबंध उन पदार्थों से होता है जो या तो कवि के सामने विद्यमान है या अतीत समय से उसकी स्मृति में उपस्थित है। बिम्बों के द्वारा कवि अपने मानसिक जगत का सम्बंध शेष सृष्टि के साथ स्थापित किया करता है। इस प्रकार कल्पना के साथ साथ स्मृति भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। क्योंकि स्मृति के द्वारा ही हम अतीत की बातों को अपने मस्तिष्क में सुरक्षित रखते है। बिम्बविधान के लिए तीसरा महत्वपूर्ण तत्व ऐन्द्रियता है क्योंकि इन्द्रियों के माध्यम से ही कवि की स्मृति में कोई चित्र बनता है। पदार्थ के साथ इन्द्रियों का सम्बंध प्रत्यक्ष भी होता है और अप्रत्यक्ष भी। जब यह सम्बंध प्रत्यक्ष होता है तब इन्द्रियाँ अधिक सक्रिय रहती हैं और जब यह सम्बंध अप्रत्यक्ष होता है तो कल्पना अधिक सक्रिय हो जाती है यद्यपि इन्द्रियाँ भी गौण रूप में सक्रिय हो जाती हैं। बिम्ब स्वयं में मूर्त ही होता है लेकिन उसका विषय मूर्त और अमूर्त दोनों हो सकते हैं। बिम्ब पदार्थ का भी हो सकता है और गुण या धर्म का भी। निष्कर्ष रूप में हम कह सकते है कि कवि द्वारा प्रयुक्त शब्दों से सहृदय जन के मन पर कुछ रंग और रेखाएं स्पष्ट की जाती है। इन रंग और रेखाओं से निर्मित संश्लिष्ट चित्र ही काव्यबिम्ब हैं। काव्य में बिम्ब की आवश्यकता को रामचन्द्र शुक्ल ने भी स्वीकार किया है। वे लिखते है कि-"कविता में अर्थग्रहण के अतिरिक्त बिम्ब ग्रहण भी आवश्यक है।"[253] रामचन्द्र शुक्ल बिम्बविधान की प्रक्रिया को रूपविधान का नाम देते हैं और इसके तीन रूप मानते हैं-1. प्रत्यक्षरूप विधान, जिसमें ऐन्द्रिय अनुभव मुख्य रहता है। 2. स्मृत रूप विधान, जिसमें स्मृति का आश्रय लेकर नूतन-वस्तु-व्यापार विधान प्रस्तुत किया जाता है और तीसरा है कल्पित रूप विधान, जिसमें विशुद्ध कल्पना प्रमुख होती है और रामचन्द्र शुक्ल इसी के अंतर्गत काव्यपक्ष के सम्पूर्ण रूप विधान को स्वीकार करते हैं।

यदि हम विकास की दृष्टि से बिम्बों का वर्णन करें तो बिम्ब की तीन श्रेणियां दृष्टिगत होती हैं। प्रथम श्रेणी में बिम्ब वस्तुविशेष की छाया को स्पष्ट करते हैं द्वितीय में वे छया की छाया को स्पष्ट करते हैं और तृतीय में वे वस्तुबोध से इतने अलग हो जाते हैं कि प्रतीक के समीप पहुँचे हुए से लगते हैं।

बिम्ब विधान में चित्रकला, मूर्तिकला और स्थापत्यकला- इन तीनों की विशेषताओं का समावेश रहता है। यही कारण है कि महादेवी के काव्यबिम्ब अत्यंत प्रभावशाली बन पड़े हैं क्योंकि मूर्तिकला एवं चित्रकला की ओर महादेवी की प्रवृत्ति रही है। महादेवी ने 'दीपशिखा' में इस बात को स्वीकार भी किया

है। वे लिखती है कि- "व्यक्तिगत रूप से मुझे मूर्तिकला विशेष आकर्षित करती है क्योंकि उसमें कलाकार के अन्तर्जगत का वैभव ही नहीं बाह्य आयाम भी अपेक्षित रहता है।"[254] अपनी कविताओं में चित्रकला और मूर्तिकला के सम्मिश्रण के सम्बंध में अपनी बात को और स्पष्ट करते हुए वे आगे लिखती है कि— "कुछ अजन्ता के चित्रों में विशेष अनुराग के कारण और कुछ मूर्तिकला के आकर्षण से, चित्रों में यत्र-तत्र मूर्ति की छाया आ गई है। यह गुण है या दोष, यह तो मैं नहीं बता सकती पर इस चित्र-मूर्ति सम्मिश्रण ने मेरे गीत को भार से नहीं दबा डाला है, ऐसा मेरा विश्वास है।"[255] महादेवी की कविता में बिम्बों के निर्माण को चित्रकला ने निश्चय ही प्रभावित किया है, परन्तु साथ ही उनकी उत्कृष्ट कल्पना, संस्कार, उनके जीवन के अनुभवों, उनका गहन अध्ययन-मनन तथा उनकी मानसिक संरचना से भी बिम्ब प्रभावित रहे हैं।

महादेवी द्वारा किया गया संस्कृत साहित्य का अध्ययन बिम्ब निर्माण में भी महत्वपूर्ण रहा है। उन्होंने संस्कृत में प्रयुक्त जीर्ण बिम्बों का पुनरुद्धार कर के अपनी कविता में उनका प्रयोग किया है। उदाहरण के रूप में 'लीलाकमल' बिम्ब द्रष्टव्य है जिसका प्रयोग कालिदास ने अपने ग्रंथ 'मेघदूत' में किया है-

"हस्ते लीलाकमलक्लके बालकुन्दानुबिद्धं,
नीता लोध्र प्रसवरजसा पाण्डुतामानने श्रीः।
चूड़ापाशे नवकुरबकं चारु कर्णे शिरीषं,
सीमन्ते च त्वदुपगमजं यत्र नीपं वधूनाम् ।।"[256]

महादेवी ने इस परम्परा से प्राप्त जीर्ण-शीर्ण बिम्ब को सर्वथा नयी अर्थवत्ता प्रदान की है। उन्होंने इस लीलाकमल को अपने आराध्य को अर्पित करते हुए लिखते हैं-

'जो तुम्हारा हो सके लीलाकमल यह आज
खिल उठे निरुपम तुम्हारी देख स्मित का प्रात
जीवन विरह का जलजात।'[257]

महादेवी ने जिन बिम्बों का अपने काव्य में प्रयोग किया हैं, चित्रकला के कारण उन बिम्बों में रंगों का उचित संयोजन मिलता है। महादेवी की वर्णचेतना पर्याप्त विकसित थी अतः इनके काव्य-बिम्ब स्थान स्थान पर अपनी रंग सज्जा के कारण रंगीन तथा आकर्षक हो गए हैं। संध्या और प्रात :काल का निम्नचित्रण उदाहरण के रूप में द्रष्टव्य है-

सन्ध्या का निम्न बिम्ब अत्यंत आकर्षक बन पड़ा है-

"गुलालों से रवि का पथ लीप,

जला पश्चिम में पहला दीप,

विहंसती संध्या भरी सुहाग,

दृगों से झरता स्वर्ण पराग;"[258]

इसी प्रकार प्रातःकाल का भी एक चित्र द्रष्टव्य है-

कनक से दिन मोती सी रात,

सुनहली साँझ गुलाबी प्रात,

मिटाता रंगता बारम्बार,

कौन जग का यह चित्राधार?[259]

रंगों का उचित संयोजन बिम्बविधान में अत्यंत महत्वपूर्ण है। इससे बिम्बों में ऐन्द्रियता और अभिव्यक्ति में व्यंजक वक्रता आती है। रंगों के प्रयोग से महादेवी की आंतरिक मनोवृत्ति का भी पता चल जाता है। महादेवी ने श्वेत वर्ण वाले बिम्बों का अधिक प्रयोग किया है जिससे काव्य में सात्विक भावों की उपस्थिति का ज्ञान होता है। महादेवी के काव्य में ओस, चाँदनी, नीहार, तुषार आदि का अधिक प्रयोग श्वेत वर्ण प्रिय होने के कारण ही है। महादेवी के काव्य में कलियों के खाली प्याले धोने वाली चाँदनी भी श्वेत है। निम्न पंक्तियां उदाहरण के रूप में प्रस्तुत है-

मधुर चाँदनी धो जाती है

खाली कलियों के प्याले।[260]

इसी प्रकार महादेवी वर्मा ने श्रृंगार की प्रसाधन सामग्री में भी श्वेत रंग का ही अधिक प्रयोग किया है। उदाहरण के रूप में निम्न पंक्तियां द्रष्टव्य है-

"पाटल के सुरक्षित रंगों से रंग दे हिम सा उज्ज्वल दुकूल;

गुँथ दे रशना में अलि-गंजन से पूरित झरते बकुल-फूल;

आलोचकों का मत है कि धीरे-धीरे महादेवी के काव्य में रंगों का प्रयोग क्षीण होता गया है। इस ओर लक्ष्य करते हुए डा0 नगेन्द्र लिखते हैं कि-"सान्ध्यगीत' में संध्या की पृष्ठभूमि होने के कारण उसके चित्रों में रंगों का वैभव अधिक था; परन्तु दीपशिखा के गीतों में उसके चित्रों की ही तरह केवल दो ही रंग

है- हल्का नीला और सफेद। जहाँ कहीं अधिक रंगों का प्रयोग भी है, वहां ये सभी रंग इस प्रकार मिला दिए गए हैं कि किसी की स्वतंत्र सत्ता न रहें- इसीलिए तो इन चित्रों में वारद के मोतियों जैसी तरलता आ गई है।''[262]

महादेवी वर्मा के काव्य में एक अन्य रूप में बिम्बों का प्रचुरता से प्रयोग हुआ है और वह है— व्यापारविधायक बिम्बों का प्रयोग। निम्न पंक्तियों में मोम-बत्ती के धीरे-धीरे घुलने और दीपक के धीरे-धीरे जलने के द्वारा विरह की व्याकुलता को स्पष्ट किया गया है और इसमें महादेवी को पूरी सफलता भी मिली है—

''मोम - सा तन घुल चुका,
अब दीप-सा मन चल चुका है।''[263]

महादेवी ने अपनी प्रवृत्ति के अनुसार अधिकांश बिम्बों का ग्रहण प्रकृति और नारीजगत से किया है। वैसे तो प्रकृति से लिए गए बिम्बों में सामान्यतः संध्या, प्रभात, बसंत और पावस ऋतु ही प्रमुख हैं लेकिन कही-कहीं उन्होंने कल्पना के प्रयोग द्वारा विराट बिम्बों का भी सृजन किया है। जैसे- निम्न उदाहरण में पृथ्वी और आकाश के बीच में स्थित सागर के लिए सीप के भीतर मोती का बिम्ब ग्रहण किया गया है-

अवनि अम्बर की रुपहली सीप में
तरल मोती सा जलधि जब काँपता
तैरते घन मृदुल हिम के पुंज से,
ज्योत्स्ना के रजत पारावार में''[264]

कुमारविमल इतने विराट बिम्ब को पाठकों के लिए उचित नहीं मानते क्योंकि पाठक की कल्पना शक्ति को वे सीमित मानते हैं। वे लिखते है कि-''ऐसे स्थलों में इनकी चित्रशृंखला अबूझ पहेली बन जाती है और पाठकों को रसोदबोध के बदले मानस चाप ही दे पाती है।''[265]

महादेवी ने सूक्ष्म भावों की अभिव्यंजना करने के लिए चाक्षुष बिम्बविधन का आश्रय लिया है और इस प्रकार वे सूक्ष्म भावों को प्रत्यक्षीकरण के स्तर तक ले आई है। सूक्ष्म-भावों की अभिव्यंजना महादेवी ने वस्तु अथवा वस्तु व्यापार विशेष का आश्रय लेकर किया है। निम्न पंक्तियाँ उदाहरण के रूप में प्रस्तुत हैं-

''सुनहले सजीजे रँगीले छबीले,
हँसित कंटकित अश्रुमकरन्द गीले,

बिखरते रहे स्वप्न के फूल गिन।"[266]

यहाँ वस्तु का आश्रय लेकर गोचन प्रत्यक्षीकरण हुआ है। इसी प्रकार, सहानुभूति का भाव जो अत्यंत सूक्ष्म भाव है, उसके निषेध का प्रत्यक्षीकरण भी व्यापार के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है।

निम्न उदाहरण द्रष्टव्य है-

अब तरी पतवार लाकर

तुम दिखा मत पार देना,

आज गर्जन में मुझे बस,

एक बार पुकार लेना।[267]

नदी को पार करने वाले किसी व्यक्ति को नौका और पतवार लाकर पार दिखा देना सहानुभूति का व्यापार है और ऐसे व्यापार का 'मत' कहकर निषेध करना उस सहानुभूति की वर्जना का प्रत्यक्ष चित्र प्रस्तुत कर देता है। इस प्रकार सूक्ष्म भावों के गोचर प्रत्यक्षीकरण की सफलता महादेवी के बिम्बविधान की उल्लेखनीय विशेषता है।

सूक्ष्म भावों को व्यक्त करने के साथ-साथ महादेवी ने मूर्त को भावात्मक रूप देकर उनका अमूर्त विधान भी प्रस्तुत किया है। मूर्त को अमूर्त रूप में प्रस्तुत करना कल्पना की उस दुर्बल प्रक्रिया द्वारा सम्भव हो पाता है, जिसे भावानयन कहा गया है। निम्न पंक्तियां उदाहरण के रूप में प्रस्तुत है-

सुधि तेरी अविराम रही जल

पद ध्वनि पर आलोक रहूँगी वारती।[268]

इन पंक्तियों में किसी की याद में तिल तिलकर जलने वाले व्यक्ति के लिए सुधि के जलने का ही बिम्ब प्रस्तुत किया गया है।

महादेवी की कविताओं में श्रव्य बिम्ब का प्रयोग वहाँ मिलता है जहाँ उन्होंने, 'भक्तिकालीन संत जिसे 'अनहद नाद' कहते हैं, को सुनने और समझने की चेष्टा की है। इस ध्वनि का ग्रहण महादेवी ने श्रव्य बिम्ब का आश्रय लेकर की है। जैसे निम्न पंक्तियों में उन्होंने अज्ञात, अव्यक्त प्रिय से प्राप्त श्रवण सुख को संगीत के बिम्ब के माध्यम से व्यक्त किया है, उदाहरण प्रस्तुत है-

कुमुद दल से वेदना के दाग को
पोंछती जब आँसुओं से रश्मियाँ

चौंक उठती अनिल के निश्वास छू
तारिकाएँ चकित सी अनजान-सी

तब बुला जाता मुझे उस पार जो
दूर के संगीत-सा वह कौन है?[269]

महादेवी के काव्य में छायात्मक बिम्बों का भी सबसे अधिक प्रयोग मिलता है। निम्न पंक्तियाँ उदाहरण के रूप में प्रस्तुत हैं-

मेरा पग पग संगीत भरा
श्वासों से स्वप्न पराग झरा

नभ के नवरंग बुनते दुकूल
छाया में मलय बयार पली।[270]

यद्यपि छायावाद की चित्रात्मक शैली के सभी तत्व इन पंक्तियों में विद्यमान है पर फिर भी ये पंक्तियाँ कोई स्पष्ट चित्र पाठक के मन में अंकित नहीं करती। ये पंक्तियाँ पाठक के मन में केवल छायामात्र का चित्र अंकित करके रह जाती हैं। यद्यपि जहाँ इस अस्पष्टता की पृष्ठभूमि अधिक सहज और आत्मीय होती है, वहाँ छायात्मक बिम्ब अधिक व्यंजक हो जाते हैं। निम्न पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं-

"कौन आया था न जाने
स्वप्न में मुझको जगाने

याद में इन अंगुलियों के
हैं मुझे पर युग बिताने।"[271]

इन पंक्तियों में बिम्ब है-स्वप्न में देखी हुई अँगुलियाँ। पर यह अंगुलियाँ जिस व्यक्ति की हैं, स्वप्न में देखा हुआ वह व्यक्ति रहस्य की ओट में है, अतः अंगुलियों का चित्र भी स्पष्ट नहीं है। लेकिन इस अस्पष्ट और अग्राह्य बिम्ब में जो तीव्रता आई है, वह 'जगाने' क्रिया की ऐन्द्रिय अनुभूति के कारण है।

कुछ आलोचकों का मत है कि महादेवी के बिम्बविधान में सूक्ष्म निरीक्षण से उत्पन्न संश्लिश्ट चित्रण कम मिलता है, जिसके कारण इनके बिम्बों में ऐन्द्रियता का अभाव है और उनके बिम्ब सुमित्रानंदन पंत और सूर्यकांत त्रिपाठी निराला के समान सुलझे हुए और स्पष्ट नहीं हैं। इसलिए पाठक को इन बिम्बों से रस ग्रहण करने के लिए अतिरिक्त प्रयास करना पड़ता है। यद्यपि महादेवी अपने बिम्ब विधान में वस्तुओं और व्यापारों की संश्लिष्ट योजना करती हैं और जहाँ वस्तुओं और व्यापारों की संश्लिष्ट योजना रहती है, वहाँ अस्पष्टता नहीं रहती है किन्तु इतना सब होने पर भी महादेवी का बिम्ब विधान अस्पष्ट है। इसका कारण यह है कि महादेवी मानसिक वृत्तियों और वातावरण को भी वस्तु व्यापार द्वारा ध्वनित करने लगती हैं। एक उदाहरण प्रस्तुत है-

रजनी ओढ़े जाती थी झिलमिल तारों की जाली

उसके बिखरे वैभव पर जब रोती थी उजियाली।[272]

यह चित्र वस्तु व्यापार की संश्लिष्ट योजना और वातावरण निर्माण पर अधिक ध्यान देने के कारण अस्पष्ट है। दूसरा कारण यह है कि इसमें लाक्षणिकता के प्रति अधिक मोह दर्शाया गया है। तीसरा कारण यह है कि इसमें महादेवी ने छायावाद के काव्य की व्यक्त प्रकृति के सौन्दर्य प्रतीकों को न लेकर उन प्रतीकों की अव्यक्त गतियों और छायाओं का संग्रह किया है और इसीलिए ऐसी कविताओं में वेदना की व्याकुलता और रहस्यात्मकता बढ़ गई है किन्तु ये स्थल अधिक कठिन हो गए हैं। उदाहरण के रूप में निम्न पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं-

उच्छवासों की छाया में, पीड़ा के आलिंगन में,

निश्वासों के रोदन में, इच्छाओं के चुम्बन में

* * *

जो बिखर पड़े निर्जन में, निर्भर सपनों के मोती,

मैं ढूँढ़ रही थी लेकर, धुँधली जीवन की ज्योति,[273]

महादेवी ने लौकिक बिम्बों के द्वारा भी अपनी भाव-अनुभूतियों को व्यक्त किया है। जहाँ पर उन्हें उस रहस्यमय प्रिय के आगमन का संकेत मिलता है, वहाँ पर वे श्रृंगार, दर्पण दर्शन, वेणीबन्धन, समासोक्ति के माध्यम से आलिंगन-चुम्बन आदि में इन बिम्बों का आश्रय लिया है। श्रृंगार का निम्न उदाहरण द्रष्टव्य है-

शशि के दर्पण में देख देख,

मैंने सुलझाये तिमिर-केश;

गूँथे चुन तारक-पारिजात,

अवगुण्ठन कर किरणें अशेष;[274]

वस्तुतः बिम्बविधान में क्रिया और विशेषण का विशेष महत्व है। महादेवी में विशेषण पर निर्भर बिम्ब अधिक मात्रा में पाये जाते हैं। जैसे हिमालय के सन्दर्भ में वे लिखती हैं-

हे चिर महान![275]

यहाँ पर चिर और महान ये दोनों विशेषण ही पर्वत का बोध कराने में समर्थ है। इसके साथ ही महादेवी में क्रिया निर्भर बिम्ब भी मिलते हैं जैसे निम्न पंक्तियाँ उदाहरण के रूप में प्रस्तुत हैं-

घेर ले छाया अमा बन,[276]

आज कज्जल अश्रुओं में रिमझिम ले यह घिरा घन।

इन पंक्तियों में रिमझिम शब्द का प्रयोग करके रिमझिमा कर बरसने वाले बादल का बिम्ब प्रस्तुत किया गया है।

महादेवी के बिम्ब विधान के सम्बंध में आलोचकों का मत है कि महादेवी के काव्यबिम्ब कविता में प्रधान और गौण का संबंध-निर्वाह नहीं कर पाते। बिम्ब विधान वही अच्छा माना जाता है जबकि किसी गीत में एक बिम्ब प्रधान हो और अन्य गौण बनकर गीत को आगे बढ़ाते हैं। किन्तु महादेवी के गीतों में इस विशेषता का सम्यक् निर्वाह नहीं मिलता।

कुमार विमल महादेवी के बिम्ब विधान में संयोजन सूत्रता का अभाव पाते हैं। उनका मानना है कि इनकी कविता में बिम्ब एक दूसरे से गुँथे रहते हैं और इसमें विभिन्न प्रकार के बिम्बों का समावेश रहता है। वे महादेवी के बिम्बों की उपमा कन्था शैली से देते हैं जिनकी जमीन फटी-पुरानी साड़ियों जैसी होती है और उस पर चित्र पैबन्दों की तरह चिपके रहते हैं। कुमार विमल कसीदाकारी की भाषा का प्रयोग करते हुए लिखते हैं कि - महादेवी के बिम्बविधान में यत्र-तत्र सलमा सितारे जैसी नयनाभिराम झिलमिली तो मिलती है किन्तु अधिकतर इनकी बिम्बसज्जा में छाया के कामों का पृथुल प्रयोग मिलता है, जिसके कारण इनके बिम्ब विन्यास में दो या दो से अधिक बिम्बों के बीच की मध्यस्थ शृंखला को गुप्त रखकर अग्रिम बिम्बों

को चित्रपटवाँ ढंग से संलग्न कर दिया जाता है। अतः इस प्रकार की बिम्ब-शय्या में जोड़ का टाँका नहीं छिप सकता है, फलस्वरूप इनमें पाठकों को टाँकों की उच्छृंखल दौड़ मिलती है।"[277]

प्रतीक-

कई बार ऐसा होता है कि जब मानव मन में उठने वाली सूक्ष्म भावनाओं और संवेदनाओं की अभिव्यक्ति में सामान्य भाषा शैली असमर्थ रह जाती है तब कवि द्वारा उन्हीं भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए प्रतीकों का आश्रय ग्रहण किया। वैसे प्रतीक शब्द का अर्थ है-चित्र, लक्षण, आकृति तथा किसी के स्थान पर रखी हुई कोई अन्य वस्तु। प्रतीक शब्द प्रतिः तथा इक के योग से बना हुआ है जिसका अर्थ है-अपनी ओर झुका हुआ। प्रतीक के पर्याय के रूप में व्यवहृत शब्दों में प्रतिच्छाया, प्रतिबिम्ब, प्रतिकृति, प्रतिरूप तथा प्रतिनिधि प्रमुख हैं। प्रतीक के लिए अंग्रेजी भाषा में Symbol शब्द का प्रयोग किया गया है जिसका अर्थ है कोई ऐसा चिह्न जिससे कोई वस्तु जानी जाय अथवा कोई परम्परागत शब्द संकेत जो कभी-कभा व्यक्ति द्वारा स्वयं भी प्रयुक्त होता है तथा कभी-कभी वह किसी अन्य तत्व अथवा पदार्थ का प्रतिनिधित्व करने वाला भी होता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि प्रतीक वह विशेष सांकेतिक चित्र अथवा शब्द है जिनका प्रयोग स्वयं ही अथवा परम्परागत दृष्टि से किसी अन्य वस्तु, पदार्थ अथवा अर्थ के लिए किया जाता है। प्रतीक प्रधानतः परम्परा अथवा संस्कृति से सम्बंधित होते हैं और इनमें जातीय भावों और विश्वासों की प्रधानता होती है। प्रतीक में परम्परागत अथवा पौराणिक मान्यताओं के अतिरिक्त लोक तथा व्यक्तिगत मान्यताओं का भी समावेश रहता है। काव्य में प्रतीकों के प्रयोग द्वारा सरसता एवं सुन्दरता आती है और इन प्रतीकों से कवि की बौद्धिक क्षमता तथा सहृदयता का पता चलता है।

यद्यपि बिम्ब और प्रतीक दोनों ही मानवमन से सम्बंधित होते हैं लेकिन जहाँ बिम्ब मुख्य रूप से कविता की अभिव्यक्ति करने वाले उपकरणों की उत्कृष्टता से सम्बंधित होते हैं वहीं प्रतीक का सम्बन्ध कविता के आलम्बनगत धर्म अथवा साध्य से होता है। बिम्बनिर्माण में जहाँ कवि की बिम्बनिर्माण सम्बंधी अभिरुचि और उस निर्माण में अन्तर्भुक्त उसका निजी व्यक्तित्व महत्वपूर्ण है वहीं प्रतीक का सम्बंध काव्य के प्रतिपाद्य से होता है और प्रतिपाद्य के अन्तर्गत कवि विशेष की निजी मान्यतायें, धारणाएँ एवं व्यक्तित्व की विशेषताओं का अन्तर्भाव हुआ करता है। यही कारण है कि प्रतीक को उसके आश्रय के व्यक्तित्व से अलग करके नहीं देखा जा सकता। इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रतीक अपनी यात्रा बिम्बबोध के मार्ग से गुजरकर पूरा करते हैं और इसी कारण प्रतीक को बिम्ब का विकसित रूप मानते हैं। अन्तर सिर्फ इतना है कि बिम्बबोध वैयक्तिक होता है और प्रतीक प्रायः पारम्परिक होते हैं। यद्यपि आधुनिक समय में प्रतीक भी आधुनिक जीवन

सन्दर्भों से ग्रहण किये जाने लगे हैं। प्रतीक केवल कल्पना की स्वच्छन्द उड़ान नहीं है। वरन् उसके पीछे मानव के अनुभवों के नित्य नये संयोजन की क्रियाशीलता भी विद्यमान है। गणपति चन्द्रगुप्त प्रतीक योजना को विस्थापनात्मक रूप विधान कहते हैं और उसे निम्न प्रकार से परिभाषित करते हैं-"साहित्य के क्षेत्र में भी जब मूल विषय, पदार्थ, व्यक्ति या प्रसंग के स्थान पर किसी अन्य बाह्य विषय अथवा अप्रस्तुत का प्रतिपादन करते हुए उसके माध्यम से ही मूल विषय या प्रस्तुत विषय की व्यंजना की जाए तो इसे हम विस्थापनात्मक रूप विधान कह सकते हैं।"[278]

काव्य में प्रतीकों का प्रयोग भारतीय साहित्य के लिए कोई नई वस्तु नहीं है वरन् वेद और उपनिषद से ही प्रतीकों का प्रयोग मिलता है। वर्तमान समय में व्यवहृत प्रतीक शब्द के लिए संस्कृत साहित्य में 'उपलक्षण' शब्द का प्रयोग किया जाता था जिसका अर्थ था-जब कोई वस्तु अथवा नाम इस रूप में प्रयुक्त हो कि वह वस्तु अथवा नाम अपने गुण संकेत से अपने समान अन्य वस्तु अथवा वस्तुओं का भी बोध करा दे तो वह शब्द उपलक्षण रूप में प्रयुक्त कहा जाएगा। हिन्दी साहित्य में भक्तिकाल के अंतर्गत कबीर, सूर, जायसी, मीरा आदि सभी ने रहस्यात्मक भावनाओं की अभिव्यक्ति प्रतीको के माध्यम से ही की है। लेकिन जहाँ पर इन प्रतीकों का अर्थ स्पष्ट नहीं होता, वहाँ पर इनका काव्य दुरूह हो जाता है। आधुनिक हिन्दी कविता में तो प्रतीक काव्यशैली की उल्लेखनीय विशेषता बन जाता है। आज प्रतीक को प्राचीन साहित्य में व्यवहृत उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि का स्थानापन्न माना जा सकता है। यद्यपि प्रतीक को अलंकार प्रणाली में उपमान के अंतर्गत माना जाता है किन्तु प्रतीक और उपमान में किंचित भिन्नता भी है और वह यह है कि प्रतीक के लिए सादृश्य के आधार की आवश्यकता नहीं केवल उसमें भाव के उद्बोधन की शक्ति होना अनिवार्य है जबकि उपमान में सादृश्य के आधार का रहना आवश्यक है। इसी प्रकार अन्योक्ति, समासोक्ति आदि अलंकारों का प्रतीक से गहरा सम्बंध है, फिर भी अलंकारों में प्रस्तुत अप्रस्तुत का सम्बंध बना रहता है और अलंकारों के प्रयोग में कवि रूढ़ियों से पूर्णतया मुक्त नहीं हो पाता, जबकि प्रतीकों का प्रयोग कठिन होता है। अलंकार परम्परागत होते हैं और प्रसिद्ध उपमानों के साथ हमारा धारणागत सम्बंध होता है अतः उनका नाम सुनते ही हमें उसके अर्थ का ज्ञान हो जाता है किन्तु प्रतीकों के अर्थ को स्पष्ट करने के लिए हमें प्रसंग और काव्य के अर्थ सन्दर्भों को स्पष्ट करना पड़ता है क्योंकि प्रतीक कवि की निजता से सम्बंधित होते हैं। यही कारण है कि छायावादी कवियों द्वारा जब अपने काव्य में काव्यरूढ़ियों के स्थान पर प्रतीक बहुल भाषा का प्रयोग किया गया तो परम्परागत काव्य के समर्थकों को उनका काव्य ग्राह्य नहीं हुआ इसीलिए उन काव्यरूढ़ि के प्रेमी आलोचकों से उनका संघर्ष हुआ और एक बार जब प्रतीकों का अर्थ स्पष्ट हो गया तब उनकी कविता भी आलोचकों के मध्य स्वीकार्य हो गई।

महादेवी ने अपने काव्य में कला के माध्यम से सत्य की अभिव्यक्ति की है तथा सूक्ष्म एवं अमूर्त भावनाओं को व्यक्त करने के लिए प्रतीकों का आश्रय लिया है। महादेवी के प्रतीक विधान पर उपनिषद, कबीर और मीरा के काव्य में प्रयुक्त प्रतीकों का सम्मिलित प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। कुमार विमल छायावादी कवियों के मध्य केवल जयशंकर प्रसाद और महादेवी को ही प्रतीकवादी परम्परा का काव्य प्रणेता मानते हैं। महादेवी के काव्य में प्रतीकों की इतनी प्रचुरता है कि उनके प्रतीकों का प्रयोग अध्ययन का स्वतंत्र विषय बन गया है। उन्होंने अपने प्रतीकों का चयन प्रकृति के विशाल परिवेश से भी किया, ललित कलाओं से भी प्रतीक लिये। साथ ही बहुत से वैयक्तिक और आत्मनिष्ठ प्रतीक भी उनके काव्य में मिल जाते हैं। महादेवी की प्रारम्भिक रचनाओं में कुछ शब्दों का प्रयोग पहले बिम्ब रूप में किया गया है जो कालान्तर में व्यापक और गहन अर्थ ध्वनित करने के कारण प्रतीक में परिवर्तित हो गए। जैसे-शलभ, दीपक, पिंजर, पाहुन, दर्पण आदि ऐसे ही प्रतीक हैं।

दीपक महादेवी का सबसे प्रिय प्रतीक है जो उनकी पहली कविता से लेकर अंतिम काव्यसंग्रह 'दीपशिखा' तक में बार-बार प्रयुक्त हुआ है। ऐसा लगता है कि मानों अपनी कविता में महादेवी ने दीपक प्रतीक के साथ तादात्म्य कर लिया है। एक विशेष बात यह है कि दीपक प्रतीक का प्रयोग सर्वत्र एक ही अर्थ के लिए नहीं हुआ है वरन् अलग-अलग संदर्भों में प्रयुक्त होने के कारण यह अलग-अलग अर्थ भी देता है। कहीं पर यह जलने, घुलने और गलने के सन्दर्भ में प्रयुक्त होता है और आत्मदान का अर्थ देता है। निम्न पंक्तियाँ उदाहरण के रूप में प्रस्तुत हैं-

सौरभ फैला विपुल धूप बन
मृदुल मोम सा घुल रे मृदु तन

दे प्रकाश का सिन्धु अपरिमित
तेरे जीवन का अणु गल-गल

पुलक-पुलक मेरे दीपक जल![279]

कहीं पर यही दीपक मंदिर में इष्ट देवता के सामने जलता हुआ एकान्त समर्पण का प्रतीक बन जाता है। निम्न पंक्तियाँ उदाहरण के रूप में प्रस्तुत हैं-

"यह मन्दिर का दीप इसे नीरव जलने दो!"[280]

छायावाद के सभी कवियों के काव्य में प्रयुक्त प्रतीक लगभग एक जैसे हैं किन्तु महादेवी ने अपनी

समृद्ध कल्पना शक्ति के द्वारा उसमें नई अर्थवत्ता भर दी है। जैसे पिंजर प्रतीक का निम्न प्रयोग एक नये अर्थ की ओर संकेत करता है-

कीर का प्रिय आज पिंजर खोल दो!

हो उठी हें चंचु छूकर,

तीलियाँ भी वेणु सस्वर,

बन्दिनी स्पन्दित व्यथा ले,

सिहरता जड़ मौन पिंजर!

आज जड़ता में इसी की बोल दो![281]

महादेवी द्वारा प्रयुक्त प्रतीकों में कल्पना शक्ति का तो प्रयोग हुआ ही है साथ ही इन प्रतीकों के निर्माण में मनःस्थिति की विशिष्टता, अनुभूति की गहनता और उत्कट तन्मयता भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। महादेवी के कुछ प्रतीक तो भाषा की अभिव्यंजना शक्ति का प्रतिमान बन गए हैं जैसे निम्न पंक्तियां द्रष्टव्य है-

कलियों की घन जाली में छिपती देखूँ लतिकाएँ,

या दुर्दिन के हाथों में लज्जा की करुणा देखूँ![282]

यहाँ पर महादेवी ने लज्जाशील नारी के साथ साथ दुख दैन्य से आर्त क्रन्दन करती हुई मानवता को संकेतिक करने में सफलता प्राप्त की है।

प्रतीक के माध्यम से वक्रतापूर्ण भावों की अभिव्यंजना करने के लिए महादेवी ने लाक्षणिकता का आश्रय लेकर कविता को जीवन्त बना दिया है। निम्न पंक्तियाँ उदाहरण के रूप में प्रस्तुत हैं-

इस अचल क्षितिज रेखा के

तुम रहो निकट जीवन के

पर तुम्हें पकड़ पाने के

सारे प्रयत्न हो फीके।[283]

यहाँ पर महादेवी ने पकड़ में न आने वाले अज्ञात, अव्यक्त प्रिय के मधुरतम व्यक्तित्व का आरोपण क्षितिज रेखा पर कर दिया है और उसे पकड़ पाने के सारे प्रयत्न फीके हो गए हैं- यह कहकर मानव की विवशता को लाक्षणिकता के माध्यम से प्रकट किया है क्योंकि क्षितिज रेखा तो वैसे ही अगम्य है।

महादेवी की प्रारम्भिक रचनाओं में कुछ चित्रात्मक बिम्बों का अतनी अधिक बार प्रयोग हुआ है कि वे दीपशिखा तक आते-आते प्रतीकों के लिए उपयुक्त निश्चित अर्थ पाकर प्रतीक में परिवर्तित हो गए हैं। ऐसे प्रतीकों में दीपक, पुष्प, झंझा, समीर, आकाश, निर्झर, दर्पण, पिंजर आदि प्रमुख है।

निम्न पंक्तियाँ उदाहरण के रूप में द्रष्टव्य हैं-

"यह बताया झर सुमन ने
यह बताया मूक तृण ने
यह कहा बेसुध पिकी ने
चिर पिपासित चातकी ने
सत्य जो दिव कह न पाया था अमिट सन्देश में!"[284]

इन पंक्तियों में बिम्ब के रूप में प्रयुक्त अप्रस्तुत प्रतीक में परिवर्तित हो गए हैं। इसी प्रकार महादेवी की रचनाओं में प्रयुक्त उपमान भी प्रतीक की कोटि में पहुँच गए हैं। बीन, शलम, चातक, मेघ, पाहुन आदि ऐसे ही उपमान है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं-

'बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ।'[285]

अथवा

'नव घन आज बनों पलकों में!
पाहुन अब उतरो पलकों में!'[286]

अथवा

'शलभ मैं शापमय वर हूँ
किसी का दीप निष्ठुर हूँ!'[287]

महादेवी अपनी काव्य रचनाओं में परम्परागत और पौराणिक प्रतीकों का भी प्रयोग करती हैं। जैसे-शलभ दीपक, बुलबुल आदि ऐसे ही प्रतीक है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

नयन में जिसके जलद वह तृषित चातक हूँ
शलभ जिसके प्राण में वह निठुर दीपक हूँ

फूल को उर में छिपाए विकल बुलबुल हूँ।[288]

लेकिन महादेवी के प्रतीक विधान की वास्तविक शक्ति उनके आध्यात्मिक प्रतीकों के सन्दर्भों में देखी जा सकती है। जहाँ उनकी सूक्ष्म कल्पना के साथ साथ गहन अनुभूति के भी दर्शन होते हैं। एक उदाहरण प्रस्तुत है-

टूट गया वह दर्पण निर्मम
उसमें हँस दी मेरी छाया
मुझमें रो दी ममता माया
अश्रुहास से विश्व सजाया
खेल रहे थे आँख मिचौनी
प्रिय जिसके परदे में हम-तुम।[289]

महादेवी ने भावों की सूक्ष्म अभिव्यंजना के लिए प्रकृति से उपादान लेकर उन्हें प्रतीकों के रूप में प्रयुक्त किया है। उने काव्य में वर्षा करुणा का, ग्रीष्म क्रोध का, पतझर दुख का, बसंत आनंद का, मलय पवन मधु का , रश्मि सुख का, मकरंद, नक्षत्र तुहिनकण आँसू का, बादल अतिथि का, नौका जीवन का, तम अज्ञान का, प्रकाश ज्ञान और चैतन्य का, मधुप प्रेमी या साधक का, मधुमास आनंद का, प्रभात प्रसन्नता और प्रफुल्लता का, पतवार सहारा का, वीणा ह्रदय का, लहर मन के भावों का और सावन अश्रु या वर्षा के प्रतीक के रूप में प्रयुक्त है। महादेवी के प्रतीकों की सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि एक प्रतीक सर्वत्र एक ही भाव की व्यंजना नहीं करता। जैसे शलभ प्रतीक को ही ले। इसका प्रयोग महादेवी आदर्श प्रेमी के रूप में भी करती है और मोहासिक्त व्यक्ति के रूप में भी करती हैं। शलभ का मोहान्ध व्यक्ति के रूप में प्रयोग निम्न पंक्तियों में द्रष्टव्य है।

शलभ अन्य की ज्वाला से मिल
झुलभ कहाँ हो पाया उज्ज्वल
कब कर पाया वह लघुतन से
नव आलोक प्रसार।[290]

किन्तु नीचे की पंक्तियों में शलभ प्रतीक का प्रयोग आदर्श प्रेमी के रूप में हुआ है-

क्यों जग कहता मतवाली?

क्यों न शलभ पर लुट-लुट जाऊँ

झुलसे पंखों को चुन लाऊँ

उन पर दीपशिखा अँकवाऊँ

अलि मैंने जलने में ही जब

जीवन की निधि पा ली।[291]

इसी प्रकार महादेवी ने कहीं कहीं पर एक ही भाव की व्यंजना के लिए अलग-अलग प्रतीकों का प्रयोग किया है जिसके कारण उनका काव्य दुर्बोध हो जाता है क्योंकि जब तक समस्त प्रतीकों का अर्थ स्पष्ट नहीं होता, तब तक वांछित अर्थ का ग्रहण नहीं होता। जैसे महादेवी आँसू के लिए मोती, मकरंद और तुहिनकण- इन तीन प्रतीकों का प्रयोग करती हैं।

निम्न पंक्तियाँ उदाहरण के रूप में प्रस्तुत हैं-

उस सोने के सपने को

देखे कितने युग बीते

आँखों के कोष हुए हैं

मोती बरसाकर रीते।[292]

यहाँ पर आँसू के लिए मोती का प्रयोग किया गया है। मकरन्द प्रतीक का प्रयोग निम्न पंक्तियों में द्रष्टव्य है-

समीरण के पंखों में गूँथ

लुटा डाला सौरभ का भार,

दिया, ढुलका मानस मकरन्द

मधुर अपनी स्मृति का उपहार,[293]

आँसू के लिए तुहिनकणों का प्रयोग निम्न पंक्तियों में द्रष्टव्य है-

रजतकरों की मृदुल तूलिका

से ले तुहिन बिन्दु सुकुमार

कलियों पर जब आँक रहा था

करुण कथा अपनी संसार[294]

इस प्रकार स्पष्ट है कि इन प्रतीकों का अर्थ स्पष्ट करने के लिए मुख्यतया सन्दर्भ पर निर्भर रहना पड़ता है तभी उनकी रचनाओं में प्रयुक्त प्रतीकों का अर्थ खुलता है। सन्दर्भ का ध्यान न रखने पर भ्रांति हो जाना स्वाभाविक है।

संगीत, चित्रकला, मूर्तिकला तथा दर्शनशास्त्र से विशेष प्रेम के कारण महादेवी के काव्य में इन क्षेत्रों से लिए गए प्रतीक भी मिलते हैं। संगीत कला के क्षेत्र से लिए गए प्रतीकों में विहान, तरन, मूर्च्छना, तार, झंकार, वीणा आदि प्रमुख है। एक उदाहरण प्रस्तुत है-

वीणा होगी मूक, बजाने-

वाला होगा अन्तर्धान,[295]

चित्रकला से गृहीत प्रतीकों में चित्रकार रंग, रेखा, तूलिका आदि का प्राधान्य है। तूलिका प्रतीक का एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

रजतकरों की मृदुल तूलिका

से ले तुहिन बिन्दु सुकुमार[296]

दर्शनशास्त्र से गृहीत प्रतीकों में माया, छलना, विराट पुरुष, प्रकृति, लहर, बिन्दु सिन्धु और चेतना प्रमुख है। माया प्रतीक का एक उदाहरण प्रस्तुत है-

"सखे! यह माया का देश

क्षणिक है तेरा-मेरा संग"[297]

महादेवी ने रहस्यात्मक अनुभूतियों की अभिव्यक्ति प्रतीकों के माध्यम से की है इन प्रतीकों द्वारा साधना के माध्यम से साध्य तक पहुँचने की अनुभूति व्यक्त की है। यही कारणा है कि उनके काव्य में पथ, पाथेय तरी और नाविक जैसे प्रतीक बहुलता में मिलते हैं। एक उदाहरण प्रस्तुत है-

पथ मेरा निर्वाण बन गया

प्रति पग शत वरदान बन गया[298]

प्रतीकों के द्वारा महादेवी ने उस रहस्यमय प्रिय के प्रति माधुर्य भावों की व्यंजना भी की है। महादेवी की काव्य रचनाओं में मंदिर, पुजारी, दीपक नीराजना के प्रतीक भी बार-बार मिलते हैं।

वेदों और उपनिषदों के अध्ययन के कारण सूर्य, कमल, नक्षत्र, चन्द्रमा, रात-दिन, उषा, संध्या, शंख, मुरली, सम्पुट जैसे प्रतीक भी महादेवी की कविता में मिलते है। उपनिषदों में माता पिता को सीप सम्पुट की तरह माना गया है जिससे जीवन मुक्ता का जन्म होता है। महादेवी के काव्य में भी इस प्रतीक का प्रयोग मिलता है। निम्न पंक्तियाँ द्रष्टव्य है-

नीलम मरकत के सम्पुट दो

जिनसे बनता जीवन मोता [299]

अथवा

शंख में ले नाश मुरली में छिपा वरदान,

दृष्टि में जीवन अधर में सृष्टि ले छविमान।[300]

महादेवी के काव्य में कुछ स्वनिर्मित प्रतीक भी मिलते हैं। जैसे- बदली सेवा करने वाली, सांध्यगगन लौकिक के प्रति विराम और अलौकिक के प्रति अनुराम ओस, गीले फूल आँसुओं की लड़ी के रूप में वेदनाजल आँसू के रूप में, सरिता करुणा और प्रेम की वाहिका, बादल करुणा के रक्षक, उषा राग के रूप में, झंझा बाधाएँ के प्रतीक रूप में मिलते हैं।

स्पष्ट है कि महादेवी के प्रतीकों की प्रयोग भूमि अत्यंत व्यापक है। यद्यपि उनके प्रतीक अनेक अर्थ का वहन करने के कारण दुर्बोध तो अवश्य हैं किन्तु एक बार अर्थ स्पष्ट हो जाने पर वे भलीभाँति पाठकों द्वारा हृदयंगम कर लिए जाते हैं। निश्चय ही महादेवी में कल्पनाशक्ति अत्यंत उत्कृष्ट कोटि की है क्योंकि समृद्ध कल्पना शक्ति के द्वारा ही वे उत्कृष्ट बिम्बों और प्रतीकों का निर्माण करती है। साथ ही उनके बिम्ब विधान और प्रतीक योजना पर उनके परिवेश संस्कार, अध्ययन तथा लोक परम्परा का प्रर्याप्त प्रभाव पड़ा है। बिम्ब और प्रतीक के माध्यम से उन्होंने हृदय की सूक्ष्म से सूक्ष्मतम अनुभूतियों का भी भलीभाँति व्यक्त किया है। उन्होंने प्राचीन प्रतीकों को भी नये अर्थ सन्दर्भों में प्रयुक्त करके इस क्षेत्र में अपनी मौलिकता का परिचय दिया है।

महादेवी के काव्य को लेकर उठाए गए विवाद :-

महादेवी वर्मा के काव्य साहित्य के इस विश्लेषण के पश्चात हम आलोचकों के दो वर्ग पाते हैं। एक वर्ग वह है, जो उनके काव्य को पूर्णतया छायावादी काव्यप्रवृत्तियों से अनुप्राणित मानता है और दूसरा वर्ग वह है जो उनके काव्य में छायावादी प्रवृत्तियों का पूरी तरह से अभाव पाता है। इन दोनों वर्गों के अतिरिक्त भी कुछ आलोचक विद्वान ऐसे भी हैं जो दोनों ही वर्गों में स्थान नहीं पाते। शायद समस्त छायावादी कवियों में महादेवी वर्मा ही एकमात्र ऐसी कवयित्री रही है जिनके काव्य के सम्बंध में आलोचकों के मध्य यह विचित्र विरोधाभास पाया जाता है। आलोचकों द्वारा महादेवी के काव्य के सम्बंध में निरन्तर उठाये जा रहे विवादों के मध्य हम उन सबके बीच में महादेवी की स्थिति को समझ सकते हैं। महादेवी के सम्बंध में जो एक प्रश्न बार-बार उठाया जाता रहा है कि महादेवी 'दीपशिखा' की रचना के अनन्तर काव्यक्षेत्र का सर्वथा परित्याग करके गद्य क्षेत्र की ओर उन्मुख क्यों हो जाती है ? हो सकता है कि हम इस प्रश्न का समाधान भी महादेवी के काव्य की बराबर की जा रही आलोचना में ढूँढ़ सके।

प्रथम वर्ग जो महादेवी वर्मा के काव्य को पूर्णतया छायावाद से निष्पन्न मानता है उनमें नगेन्द्र प्रमुख हैं। जिनका मानना है कि महादेवी छायावाद को सिर्फ पढ़ती नहीं है वरन् छायावाद को महसूस भी करती हैं। अप्रैल 1944 में 'विशाल भारत' पत्रिका में वे महादेवी के सम्बंध में प्रमुख स्थापना करते हैं, जो इस प्रकार है कि- महादेवी के काव्य में हमें छायावाद का शुद्ध अमिश्रित रूप मिलता है। छायावाद की अन्तर्मुखी अनुभूति, अशरीरी प्रेम जो बाह्य तृप्ति न पाकर अमांसल सौन्दर्य की सृष्टि करता है, मानव और प्रकृति के चेतन संस्पर्श, रहस्य चिन्तन (अनुभूति नहीं), तितली के पंखों और फूलों की पंखुड़ियों से चुराई हुई कला और इन सबके ऊपर स्वप्न सा पुरा हुआ एक वायवीय वातावरण -ये सभी तत्व जिसमें घुले मिलते हैं, वह है- महादेवी की कविता। महादेवी ने छायावाद को पढ़ा नहीं है, अनुभव किया है।''[301] डा0 नगेन्द्र के कथन से स्पष्ट है कि वे महादेवी को पूर्णतया छायावादी कवयित्री मानते हैं लेकिन महादेवी की रहस्यानुभूतियों में जहाँ वे अज्ञात, अव्यक्त प्रिय का संकेत पाते हैं वहाँ वे इन संकतों के आधार पर एक बिल्कुल नई दृष्टि विकसित करते हैं, जहाँ वे इन संकेतों में काम का स्पन्दन निहित मानते हैं। वे स्पष्टतः स्वीकार करते हैं कि-''वास्तव में सभी ललित कलाओं के -विशेषतः काव्य के और उससे भी अधिक प्रणयकाव्य के मूल में अतृप्त काम की प्रेरणा मानने में आपत्ति के लिए स्थान नहीं है।''[302] विनय मोहन शर्मा भी महादेवी और छायावाद को एक दूसरे का पर्याय मानते हैं। वे अपने लेख में लिखते हैं कि - ''छायावाद-युग ने महादेवी को जन्म दिया और महादेवी ने छायावाद को जीवन। प्रगतिवाद (साम्यवाद) के नारे से प्रभावित हो जब छायावाद के मान्य कवियों ने अपनी आँखे पोंछकर भीतर से बाहर झाँकना

प्रारम्भ कर दिया, महादेवी की आँखें भीगती रहीं, हृदय सिहरन भरता रहा, ओंठों की ओटों में आहें सोती रही और मन किसी निष्ठुर की आरती उतारता ही रहा।"[303] लेकिन इन आलोचकों के मत से बिल्कुल अलग मत छायावाद के सुधी समालोचक नन्ददुलारे बाजपेई का है जो महादेवी की रचनाओं में छायावादी प्रवृत्तियों का अभाव पाते हैं। वे लिखते है कि- "हिन्दी में महादेवी जी का प्रवेश छायावाद के पूर्ण ऐश्वर्य काल में हुआ था किन्तु आरम्भ से ही उनकी रचनाएँ छायावाद की मुख्य विशेषताओं से प्रायः एकदम रिक्त थी।[304] यदि नन्ददुलारे बाजपेई के इस कथन को प्रमाण स्वरूप माना जाय तो निश्चय ही सम्पूर्ण छायावाद पर पुनर्विचार की आवश्यकता है क्योंकि फिर स्वभावतः यह प्रश्न उठता है कि वे कौन से छायावादी प्रतिमान हैं जो महादेवी की कविता में नहीं है। यदि प्रसाद की कविता में सांस्कृतिक दृष्टिकोण का प्राधान्य रहा है, निराला के काव्य में प्रगतिशील तत्व प्रधान रहे हैं तथा प्रकृति और सौन्दर्य के सुकुमार कवि के रूप में पंत की गणना होती रही है तो हमें यह भी मानने को तैयार रहना चाहिए कि अगर छायावाद में कहीं अध्यात्म और स्त्री को केन्द्र में रखा गया है तो वह महादेवी की कविता रही है। इसलिए निश्चय ही, महादेवी के काव्य को छायावादी प्रवृत्तियों से शून्य नहीं माना जा सकता।

आलोचकों का मत है कि महादेवी की कविता ऐसे संघर्षशील समाज में जन्म लेती है जबकि चारों ओर देश में उहापोह से भरा वातावरण व्याप्त है। ऐसे समय में महादेवी की कविता में एक काल्पनिक संसार का जाल बिछाया गया है। ऐसा काल्पनिक संसार-जो आज की कुरूपता से भरी वास्तविकता की ओर एक उपेक्षा का भाव दर्शाता है और जो जिन्दगी की समस्याओं का एकमात्र उत्तर उन ससस्याओं की ओर से आँख बन्द करके अपने अन्दर वाले असीम और शाश्वत सौन्दर्य में ढूँढ़ना चाहता है। महादेवी की कविता उनकी प्रथम रचना 'नीहार' से लेकर अन्तिम रचना 'दीपशिखा' तक एक-सी रही है। जबकि समय बदला और समय के साथ दुनिया भी बदली। कल का समय रीतिरिवाज, विचारधारा, ज्ञान की जिज्ञासा का स्वरूप-सब कुछ बदल गया। कल तक जो युवावर्ग सपनों की दुनिया में खोया रहता था, आज वह यथार्थ की ठोस भूमि से टकराकर उसके स्वप्न चूर-चूर हो गए। लेकिन फिर भी महादेवी की कविता की भावभूमि में कोई परिवर्तन नहीं होता। 'विशाल भारत' में भी टिप्पणी छपती है कि -"इसका एक कारण है-समय बदला; पर महादेवी नहीं बदली। उनका अस्तित्व, उनका दृष्टिकोण, उनके जीवन का क्रम एक रस रहा है। उनकी कल्पना की मादकता अक्षय रही है।"[305] और महादेवी भी अपनी पुस्तक में स्वीकार करती हैं कि -"मेरी दिशा और पथ एक रहा है, केवल इतना ही नहीं वे प्रशस्त से प्रशस्ततर और स्वच्छ से स्वच्छतर हो गए है।"[306] महादेवी के काव्य के विषय में उनकी यह स्वीकारोक्ति पूर्णतया सत्य है क्योंकि उनकी प्रारम्भिक काव्य रचना 'नीहार' में जहाँ उनकी अनुभूतियाँ बालरूप में थी वे 'दीपशिखा' तक आते-आते

अत्यन्त परिपक्व हो गई है, उन अनुभूतियों में कहीं शिथिलता नज़र नहीं आती। कहीं पर भी रस का अभाव दृष्टिगोचर नहीं होता। उनकी आत्मा और उनके व्यक्तित्व का पूर्ण प्रकाशन उनकी कविताओं में हो रहा है। महादेवी की कविता की विषयभूमि के सम्बंध मं एक अत्यन्त कटु टिप्पणी जनवरी 1940 में 'विशाल भारत' में छपती है, जो पूरी की पूरी यहाँ उद्धृत की जा रही है-"मनुष्य वर्तमान की उपज है- वह वर्तमान से ही बना है। वर्तमान की उपेक्षा करना जीवनहीनता का लक्षण है और सामने वाली चीजों के प्रति ज़बरदस्ती आँख बन्द कर लेने का इससे बढ़कर उदाहरण साहित्य में कहाँ मिलेगा? यह भक्ति, यह तन्मयता-यह सब अकर्मण्यता से भरी गुलामी के चित्र है, जो हमारी उलझनों को और भी भयानक बनाए देते हैं। जीवन कर्म है- संघर्ष है और यह कविता अपनी समस्याओं को तथा उनकी भयानकताओं को क्षण भर के लिए भुला देने का मीठा नशा भर है, जिसके उतरने के बाद हम अपने को और भी विकराल परिस्थिति में पाएँगे। असीम और अनन्त से हमारी रोटी का सवाल तो नहीं हल होता! फिर हम मनुष्य है- कर्ता है... हमारा कर्तव्य है काम करें, अपनी उलझनों को खुद दूर करें; न कि एक काल्पनिक भगवान की दुहाई देकर उसके सामने नाचकर, गाकर, हम आँसू बहा दें।"[307]

लेकिन वहीं एक दूसरे आलोचक महादेवी के स्त्री होने के कारण उन्हें थोड़ी छूट देते हैं क्योंकि हमारे समाज में कर्ता पुरुष को माना गया है, स्त्री इस उत्तरदायित्व से मुक्त है। इसलिए सामर्थ्य कर्म, सब पुरुष के हिस्से में आ जाते हैं। कोमलता, भावुकता, मधुरता, ममता आदि स्त्री की चारित्रिक विशेषताएँ मानी जाती हैं और महादेवी स्त्री होने के कारण इन विशेषताओं से युक्त हैं। इसीलिए उनकी कविता स्त्री की कविता है और स्त्री की कविता होने के कारण वह इतनी सफल कविता है। भावना की प्रखरता और कल्पना के सम्मोहन से उनकी कविता ओतप्रोत है। भगवती चरण वर्मा महादेवी की कविता के विषय में लिखते हैं कि- "महादेवी की कविता करुण रस प्रधान है। वियोग और पीड़ा उसका मुख्य विषय है। पर महादेवी का वियोग और उनकी पीड़ा इस दुनिया की न रहकर दूसरी दुनिया की हो गई है। उनका प्रेम उनकी भावना मानवीय सतह से ऊपर उठकर एक ऊँची सतह पर स्थित है।"[308] परन्तु यहीं से महादेवी की कविता के विषय में दूसरा प्रश्नचिह्न लगता है कि यह भक्ति, यह आराधना, यह उपासना इन सबका एक लक्ष्य होना चाहिए और महादेवी की कविता में लक्ष्य अस्पष्ट है अथवा इसी बात को हम यूँ भी कह सकते हैं कि भावना को केन्द्रीभूत करने के लिए कोई भौतिक वस्तु होना चाहिए, फिर वह भौतिक वस्तु पत्थर की ही क्यों न हो। मीरा के काव्य की सफलता का कारण भी यही माना गया है कि उनका आराध्य मोरमुकुट धारण करने वाला साँवला कृष्ण था और दर्शनशास्त्र का ब्रह्म निराकार होता है और निराकार होने के कारण उसकी पूजा नहीं की जा सकती। यद्यपि निराकार की उपासना कबीर भी करते हैं लेकिन कबीर में बुद्धि प्रधान और

भावना गौण हैं, इसलिए उनकी कविता में बौद्धिकता का प्राधान्य है, भावुकता भी है लेकिन वह बौद्धिकता की तुलना में कम है। जबकि महादेवी की कविता भावनात्मक है और निराकार असीम, अव्यक्त को अपनी भावना का केन्द्र बनाना आसान कार्य नहीं है। यही कारण है कि महादेवी की कविता को अस्पष्टता के दोष से मुक्त नहीं किया जा सकता। इसी बात की पुष्टि भगवती चरण वर्मा का निम्न कथन भी करता है कि- "असीम की कल्पना ही एक अस्पष्ट और धुँधली कल्पना है। उस कल्पना को अंकित करने में अस्पष्टता के दोष को बचाया नहीं जा सकता।"[309] यद्यपि भगवती चरण वर्मा महादेवी की कविता को सीधी सादी भावनामय संगीत की कविता मानते हैं लेकिन फिर भी वे उसमें कुछ दोष भी देखते हैं जैसे उसमें रूपक अधूरे हैं, भाव बिखरे हुए विश्रृंखल से हैं और कल्पना अस्पष्ट है। महादेवी की कविता पर जो एक सबसे बड़ा दोष लगाया जाता है- वह एकरसता है अर्थात 'नीहार' से लेकर 'दीपशिखा' तक कविताओं की भावभूमि एक रही है, उसमे वैविध्यता नहीं है। यही महादेवी जैसे कवि-कलाकर की सबसे बड़ी सीमा मानी गयी है क्योंकि अब वह समय तो निश्चय ही नहीं रहा है जबकि शरीर के नख-शिख सौन्दर्य के वर्णन पर हजारों दोहे लिखे जाते थे और वे सभी रस ले लेकर पढ़े जाते थे। आज के इस बौद्धिक युग में, जबकि नित्यप्रति नई-नई चीजें सामने आ रही हैं, सबसे बड़ी आवश्यकता कला की ताज़गी है इसलिए वही कलाकार महान माना जाता है जो ज़िन्दगी के विभिन्न पहलुओं पर विचार कर सके। भगवती चरण वर्मा विशालभारत में 'यामा' की समीक्षा लिखते समय इस ओर संकेत करते हैं कि-"महादेवी में एकरसता है- उनका एक व्यक्तित्व है- उनकी एक हस्ती है! पर उनमें एक बहुत बड़ा दोष है, उनमें ताज़गी नहीं है, उनमें एक भयानक मोनोटॉनी (monotony) है। उनके जीवन की परिधि बड़ी संकुचित सी है- उनकी चार कविताओं को पढ़ लेने के बाद एक साधारण पाठक के लिए उनकी बाकी कवितायें व्यर्थ सी हो जाती है। एकरसता ठीक है, पर विषय भी एक होना एक कलाकार में बहुत बड़ी कमी दर्शाता है।"[310]

लेकिन अधिकांश आलोचक महादेवी पर लगाए गए एकरसता के आरोप को उचित नहीं मानते। विशाल भारत में भगवती चरण वर्मा के लेख के प्रकाशित होने के बाद दूसरे ही अंक में शिवसिंह 'सरोज' महादेवी के काव्य को शुद्ध आध्यात्मिक और अनुभूति का काव्य मानते हैं। यह सच है कि महादेवी उन भौतिक वस्तुओं के प्रति आकर्षित नहीं होती जिनका प्रेम उनकी नश्वरता के साथ स्वयं नष्ट हो जाता है। इसके विपरीत उनका हृदय उस अनन्त की अनुभूति में छटपटा रहा है, जो चैतन्य और अमर है, जो स्वयं प्रेमरूप है जिसने केवल शुद्धप्रेम से ही सम्पूर्ण सृष्टि का निर्माण किया है। इस अनन्त और अज्ञात प्रिय के प्रति अमर प्रेम महादेवी के काव्य का आधार है। शिवसिंह 'सरोज' उनके काव्य में एकरसता का कारण भी इसी को मानते हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि महादेवी की कविताओं में कृत्रिम कल्पना नहीं वरन् उस अनन्त की

अनुभूतिभरी हुई है। शिवसिंह 'सरोज' का मानना है कि जब महादेवी की साधना ही उसी एक अभाव में, उसी एकरस में रंगी है तो उनकी कविता में बहुरसता ढूँढ़ना न्यायसंगत नहीं है। यह एकरसता इस प्रकार की सभी कविताओं में मिलेगी। शिवसिंह सरोज इस तथाकथित एकरसता के सम्बंध में लिखते हैं कि-'जिस प्रकार आँसुओं का खारा जल प्रति बार अपना वही खारापन लिए हुए हृदय के स्तर-स्तर को प्लावित कर जाता है। ठीक उसी तरह महादेवी का प्रत्येक गीत मानवहृदय को हर बार अनंत अनुभूति का आनन्द देता है। अस्तु, महादेवी की कला ने जिस आधार पर अपने को विकसित किया है। उसमें तथाकथित Monotony स्वाभाविक है, पर वह किसी प्रकार भी वास्तविक Monotony नहीं है, न उसको दोष ही कहा जा सकता है और न उसमें परिवर्तन करने की आवश्यकता है।''[311]

महादेवी के काव्य में सर्वत्र पीड़ा का जो अथाह सागर लहराता हुआ दिखाई देता है उसे भी अधिकांश आलोचक अनुमानजन्य मानते हैं। इसी प्रकार महादेवी के काव्य में मिलन की उत्कण्ठा के अभाव को भी आलोचकों ने उनमें विरह की पीड़ा को न जानना माना है। 'साहित्य संदेश' में जैनेन्द्र लिखते हैं कि- ''महादेवी जी के काव्य में ईशवेदना से घायल प्राणों की ध्वनि मुझे अनुभव नहीं हुई। हाँ! वैसा घाव चाहती हैं। चाहती है, इसी में है कि वह वहाँ है नहीं। वियोगी मिल चाहता है, वह वियोग ही चाहती दीखती है। इससे क्या यह अनुभव न हो कि वियोग की पीर उन्होंने जानी नहीं। इसी से मिलन का भरपूर उत्कण्ठा का स्वर उनके काव्य में नहीं है। तभी उस विषाद का रस भी उत्कट उल्लासमय दीख आता है। मीरा की कोटि तो मैं अलग मानता हूँ।''[312] फिर जैनेन्द्र प्रश्न करते हैं कि क्या महादेवी की कविता रसस्फूर्त है? सोची हुई सी फिर वह क्यों लगती है?

महादेवी द्वारा अपने काव्य में व्यक्त संयोग समय छिप जाने की अभिलाषा तत्कालीन पाठक वर्ग को भी आश्चर्य में डाले हुए थी। यह प्रश्न उन्हें इतना उद्वेलित करता है कि उस समय की पत्र पत्रिकाओं में निरन्तर इसको लेकर संवाद की स्थिति बनी हुई थी। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं- सितम्बर 1953 की 'साहित्य संदेश' में एक पाठक प्रश्न करते हैं कि ''महादेवी संयोग समय क्यों छिप जाना चाहती है?''[313] जिसका कारण सम्पादक महोदय महादेवी की व्यक्तिगत मानसिक स्थिति और निजी दृष्टिकोण को मानते हैं क्योंकि महादेवी वियोग में प्राप्त पीड़ा को मधुर मानती है जिसका संयोग होने पर अन्त हो जाएगा और दूसरा उनके अनुसार मिलन का अर्थ है- पीड़ा का अन्त हो जाना 2. व्यक्तित्व की समाप्ति। इन दो कारणों से ही महादेवी मिलन नहीं चाहती और वे प्रिय के सम्बंध से उत्पन्न वियोग पीड़ा को हृदय में सहेज रखना चाहती हैं। उन्हें जीवन में अतिशय प्यार-दुलार मिला अतः उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप भी उन्हें पीड़ा प्रिय हो गई है। संयोग हो जाने पर उनकी चिर प्रियपीड़ा के समाप्त हो जाने का भय है, अतः वे संयोग समय

छिप जाना चाहती हैं। कुछ विचारक इस प्रश्न का उत्तर कवयित्री के व्यक्तिगत जीवन में खोजते हैं और उनका मानना है कि महादेवी को लौकिक जीवन में भी वियोग का विषम भार उठाना पड़ा था। वे अपने स्वाभिमान को पीड़ा के पालने में पालती हैं। समर्पण उनके व्यक्तित्व के विरुद्ध है। चिरसुन्दर की स्मृति में घुलते रहना उन्हें प्रिय है, उन्हें वियोग साधना में निमग्न रहना इष्ट है। समर्पण द्वारा प्राप्त संयोग का आनन्द उन्हें प्रिय नहीं है। वे लिखती भी है कि-

"तुम अमर प्रतीक्षा हो, मैं
पग विरह पथिक का धीमा
चलते-चलते मिट जाऊँ
पाऊँ न पथ की सीमा।"

परन्तु साहित्य संदेश पत्रिका में संपादक द्वारा दिए गए इस प्रकार के उत्तर से एक दूसरे पाठक संतुष्ट नहीं होते। वे प्रश्न करते हैं कि "एक जगह तो वे अपने कल्पित प्रिय की कमी से प्रतीक्षा कर रहीं हैं और वे लिखती भी हैं कि-

जो तुम आ जाते एक बार
अथवा
यह सजल मुख देख लेते।

तथा प्रतीक्षा में लिखती हैं-

करुणामय को भाता है, तम के परदे में आना,
हे नभ की दीपावलियाँ, तुम क्षण भर को बुझ जाना,

इससे यही स्पष्ट होता है कि महादेवी जी संयोग चाहती है।"[314]

इस प्रश्न का उत्तर देते हुए उस पत्रिका में छपता है कि "प्रतीक्षा में अधिक आनन्द है और जब पीड़ा को उन्होंने अपना ध्येय बनाया तब उनके लिए संयोग का महत्व नहीं रहता। इसके अतिरिक्त यह पंक्ति उनकी त्यागभावना की भी द्योतक है। वे प्रियतम की प्रतीक्षा में रहना चाहती हैं। प्रियतम से मिलन चाहने में वह निःस्वार्थता प्रकट नहीं होती जो मिलन के समय छिप जाने में है। इसका दूसरा आध्यात्मिक अर्थ यह है कि वे मिलन के समय अपना व्यक्तित्व खो देना चाहती है। मिलन में 'मैं' का अभाव हो जाता है।

"प्रेम गली अति साँकरी जामैं दो न समाय।" इस भावना से 'जो तुम आ जाते एक बार' की पंक्तियों का भी विरोध नहीं है। ये पंक्तियाँ उनकी मिलन की चाह की भी द्योतक हैं। यह चाह चिरन्तन की चाह है, पपीहा की रट है। इसमें दया की याचना की ध्वनि अवश्य है किन्तु इसके आगे कुछ नहीं। तम के पर्दे में आने की बात उनके रहस्यवाद से सम्बंध रखती है। भगवान के दर्शन वैभव के प्रकाश में नहीं होते और न शास्त्र ज्ञान के आलोक में उनकी प्राप्ति होती है। वह एक धूमिल अंधकार में ही आते हैं। इसीलिए वे तारों के छिप जाने की बात कहतीं हैं। अधिकार में व्यक्तित्व की स्पष्ट रेखाएँ नहीं रहती। इसमें वैध और अवैध प्रेम की भी बात नहीं रहती।"[315]

कुछ आलोचक महादेवी की कविता को विश्वविद्यालय की कविता मानते हैं अर्थात इसमें विद्वता की अनिवार्य क्लिष्टता है और भाव तथा भाषा भी स्पष्ट नहीं है। आलोचक 'आँसू' कविता और 'जो तु आ जाते एक बार'- इन दो कविताओं को उद्धृत करके इनके अर्थ को स्पष्ट नहीं मानते। यद्यपि इसकी शैली अनुपम और भाषा लालित्यपूर्ण है परन्तु फिर भी वे महादेवी से विनती करते हैं कि -"हम जैसे अल्पज्ञों के लिए श्रीमतीजी सरल भाषा में भी अपने कुछ विचारों को व्यक्त करती तो बड़ा उपकार होता। यदि यह लेख कभी उनके दृष्टिगोचर हो तो इस पर वे कृपया विचार करें। एक अंगरेज कवि लिखता है कि काव्य जीवन की आलोचना है। यदि हम प्रार्थना करें कि यह आलोचना ऐसी हो जिसका तारतम्य हम ग्रहण कर सके, तो अनुचित न होगा।"[316]

इसी प्रकार सरस्वती पत्रिका में भी इस प्रकार के लेख छपते हैं कि महादेवी की कविता में भाव और भाषा का तारतम्य नहीं है। एकाध उदाहरण द्वारा वे अपनी बात की पुष्टि भी करते हैं-

"इन हीरक से तारों को
कर चूर बनाया प्याला।

पीड़ा का सार मिलाकर
प्राणों का आसव डाला।

अथवा

बेसुध से प्राण हुए थे
छूकर उन झनकारों को,

उड़ते थे, अकुलाते थे,

चुम्बन करते तारों का।।

अब वे आलोचक इन पंक्तियों का अर्थ करते हैं कि -'हीरों के समान तारों को चूरकर उनका प्याला बनाया और उसमें अपनी पीड़ा प्राण पीये गये।'' वे प्रश्न करते है कि ज्ञात नहीं है कि इन तारों का प्याला क्यों बना? परन्तु दूसरे ही पद में प्राण उड़-उड़कर तारों को चूमते हैं। पहले तारे चूर-चूर हो गए अब वे चूमे जाते हैं। भाव साम्य का कहीं पता नहीं। हाँ! शब्द अवश्य सुन्दर रखे गए हैं। इस कविता को पढ़े जाने पर स्वप्न का कुछ भी पता न चला। यदि इसका नाम स्वप्न के स्थान पर उड़ान रख दिया जाता तो अच्छा होता फिर महादेवी की एक अन्य कविता को उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत करते हैं कि-

झिलमिल तारों की पलकों में,

स्वप्निल मुस्कानों की ढाल।

मधुर वेदनाओं से भर के,

मेघों का छायामय थाल।

अर्थात, तारों की पलकों में स्वप्निल मुस्कान ढाल दी गई, इसका क्या अर्थ होगा तथा मेघों का छायामय थाल क्या होगा। शायद देवीजी ही पढ़ सकें यदि मेघ होगें तो उसमें वेदनायें भरी जाने पर देख पड़ेगी, इसका पता नहीं।''[317]

स्पष्ट है कि महादेवी की कविता के मनमाने अर्थ लगाकर ही आलोचक वर्ग संतुष्ट नहीं होता वरन् वे एक कदम और आगे बढ़कर महादेवी वर्मा को इस बात की सलाह देने लगते हैं कि यदि वे इस तरह की ही कविताएँ लिखना चाहती है तो उन्हें कविता लिखना बन्द कर देना चाहिए। जनवरी 1940 की सरस्वती पत्रिका में 'यामा' की समालोचना करते हुए कहा जाता है कि - ''संकोच के साथ इतना कहना आवश्यक जान पड़ता है कि 'सांध्यगीत' आधुनिक आध्यात्मिक कविता की चरम अभिव्यक्ति है। सम्भव है कि महादेवी जी और भी इसी प्रकार के गीत लिखे परन्तु उसमें हमें किस नवीनता के दर्शन मिलेंगे, इसके विषय में संदेह होना स्वाभाविक है। यदि आगे भी उन्हें वही बातें दुहरानी हैं तो उन्हें अपना माध्यम बदलना पड़ेगा।''[318] इसी से मिलती जुलती सलाह जनवरी 1940 के विशाल भारत में भगवती चरण वर्मा भी देते हैं। वे लिखते हैं कि ''महादेवी को नवीन दृष्टिकोण नहीं मिल सका- इसके लिए कोई महादेवी को दोष नहीं दे सकता, पर महादेवी अगर अपने जीवन को एक संकरे और सीमित दायरे में बाँधकर ही महान कला की साम्राज्ञी बनना चाहती हैं तो गलती करती हैं।[319]

इस प्रकार स्पष्ट है कि महादेवी की कविता को लेकर आलोचकों द्वारा उठाए गए उपर्युक्त प्रश्न और विवाद ने महादेवी की मनःस्थिति को निश्चय ही कहीं न कही बहुत गहरे प्रभावित किया होगा जिसका प्रतिक्रियास्वरूप अथवा परिणामस्वरूप पूरा तो नहीं कुछ हद तक उनका गद्य लेखन में प्रवेश माना जा सकता है। किसी भी संवेदनशील व्यक्ति अथवा कवि के लिए उसका रचनासंसार ही सब कुछ होता है किन्तु उस रचना के सत्य और असत्य को लेकर हुई अपने समय में ही अनेक चर्चाओं का गहरा प्रभाव भी उनके अर्न्तमन पर पड़ता है। इन्हीं प्रश्नों के आलोक में यदि महादेवी के गद्यलेखन की शुरुआत को कारण स्वरूप माना जाय तो शायद अनुचित न होगा।

* * *

सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची

1. वाल्मीकि रामायण, वाल्मीकि
2. पल्लव, सुमित्रानन्दन पंत, पृ0सं0 62
3. रश्मि, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 8
4. नीहार, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 43
5. सान्ध्य गीत, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 31
6. नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 67
7. महादेवी अभिनंदन ग्रन्थ सं0 देवदत्त शास्त्री, पृ0सं0 10
8. महीयसी महादेवी, गंगा प्रसाद पाण्डेय, पृ0सं0 185
9. नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 43
10. नीहार, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 10
11. हिन्दी साहित्यः बीसवीं शताब्दी, नन्ददुलारे बाजपेई, पृ0सं0 185
12. महादेवीः काव्यकला और जीवनदर्शन, शचीरानी गुर्टू पृ0सं0 236
13. महादेवी, शचीरानी गुर्टू, पृ0सं0 201
14. महादेवी, शचीरानी गुर्टू, पृ0सं0 74
15. महादेवी, शचीरानी गुर्टू, पृ0सं0 57
16. नीहार, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 12
17. नीहार, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 37
18. नीहार, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 74
19. रश्मि, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 7

20. साहित्य संदेश, सितम्बर-1938, पृ0सं0 9

21. हिन्दी साहित्यः बीसवी शताब्दी, नन्ददुलारे बाजपेई पृ0सं0 189

22. सुधा, मई-1939 पृ0सं0 311

23. नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 74

24. सांध्यगीत, महादेवी वर्मा, पृ0सं 41

25. सुधा, मई-1939 पृ0सं0 312

26. रश्मि, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 7

27. महादेवी, शचीरानी गुर्टू पृ0सं0 4

28. सांध्यगीत, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 30

29. नीहार, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 12

30. रश्मि, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 65

31. सांध्यगीत, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 23

32. रश्मि, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 66

33. नीहार, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 38

34. रश्मि, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 22

35. सांध्यगीत, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 79

36. विशाल भारत, जून 1954, पृ0सं0 402

37. महीयसी महादेवी, गंगा प्रसाद पाण्डेय, पृ0सं0 185

38. छायावाद और महादेवी, नन्दकुमार राय, पृ0सं0 15

39. पल्लव, सुमित्रानंदन पंत, पृ0सं0 151

40. आँसू, जयशंकर प्रसाद,

41. नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 26

42. भ्रमरगीत सार, सं0 श्यामसुन्दर दास,

43. साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 76

44. साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 78

45. महादेवी साहित्यसमग्र-3,सं0-निर्मला जैन, पृ0सं0 17

46. दीपशिखा, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 66

47. नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 101

48. दीपशिखा, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 103

49. नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 96

50. महीयसी महादेवी, गंगा प्रसाद पाण्डेय, पृ0सं0 196

51. नीहार, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 41

52. वीणा, सितम्बर 1942, पृ0सं0 979

53. साहित्यसंदेश, सितम्बर 1938, पृ0सं0 9

54. महादेवी अभिनन्दन ग्रन्थ, सं0 देवदत्त शास्त्री, पृ0सं0 19

55. महीयसी महादेवी, गंगा प्रसाद पाण्डेय, पृ0सं0 104

56. दीपशिखा, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 19

57. दीपशिखा, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 20

58. महादेवी अभिनन्दन ग्रन्थ, सं. देवदत्त शास्त्री, पृ. सं. 82

59. हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचंद्र शुक्ल, पृ0सं0 453

60. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, रामकुमार वर्मा

61. महीयसी महादेवी, गंगा प्रसाद पाण्डेय, पृ0सं0 225

62. साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 82

63. हिन्दी साहित्यः बीसवीं शताब्दी, नन्ददुलारे बाजपेई, पृ0सं0 178

64. कबीर ग्रन्थावली, सं0 श्यामसुन्दर दास

65. साहित्य संदेश, मई-1952, पृ0सं0 482

66. महादेवी, सं0-इन्द्रनाथ मदान, पृ0सं0 15

67. साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 83

68. साहित्य संदेश, दिसम्बर 1954, पृ0सं0 217

69. सांध्यगीत, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 48

70. रश्मि, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 16

71. नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 21

72. रश्मि, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 58

73. सांध्यगीत, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 23

74. नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 30

75. नीहार, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 54

76. नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 64

77. महादेवी, सं0 इन्द्रनाथ मदान, पृ0सं0 210

78. नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 27

79. साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 92

80. नीहार, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 20

81. नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 99

82. रश्मि, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 24

83. सांध्यगीत, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 35

84. सांध्यगीत, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 31

85. नीहार, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 28

86. सांध्यगीत, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 54

87. सांध्यगीत, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 22

88. नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 79

89. सुधा, मई-1939, पृ0सं0 310

90. नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 47

91. नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 33

92. महादेवी का काव्यः एक विश्लेषण, दुर्गा शंकर मिश्र, पृ0सं0 70

93. विशालभारत, जून-1954, पृ0सं0 401

94. हिन्दी साहित्य-बीसवीं शताब्दी, नन्ददुलारे बाजपेई, पृ0सं0 179

95. हिन्दी साहित्य-बीसवीं शताब्दी, नन्ददुलारे बाजपेई, पृ0सं0 188

96. महादेवी, सं0-इन्द्रनाथ मदान, पृ0सं0 203

97. महादेवी, सं0-इन्द्रनाथ मदान, पृ0सं0 204

98. महादेवी अभिनंदन ग्रन्थ, सं0 देवदत्त शास्त्री, पृ0सं0 216

99. महादेवी, सं0 इन्द्रनाथ मदान, पृ0सं0 92

100. सुधा, मई 1939, पृ0सं0 308

101. नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 7

102. महादेवी अभिनंदन ग्रन्थ, सं0 देवदत्त शास्त्री पृ0सं0

103. विशाल भारत, जून-1952, पृ0सं0 379

104. हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचंद्र शुक्ल, पृ0सं0 487

105. विशाल भारत, जून-1952, पृ0सं0 380

106. दीपशिखा, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 63

107. दीपशिखा, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 14

108. महादेवी का काव्यः एक विश्लेषण, दुर्गाशंकर मिश्र, पृ0सं0 95

109. महादेवी, सं0 इन्द्रनाथ मदान, पृ0सं0 163

110. पल्लव, सुमित्रानंदन पंत, पृ0सं0 84

111. साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 58

112. महादेवी साहित्य समग्र-1 सं0-निर्मला जैन, पृ0सं0 433

113. महादेवी साहित्य समग्र-1 सं0 निर्मला जैन, पृ0सं0 477

114. महादेवी साहित्य समग्र-9 सं0-निर्मला जैन, पृ0सं0 426

115. साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 58

116. साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 66

117. महादेवीः नया मूल्यांकन, गणपति चन्द्र गुप्त, पृ0सं0 237

118. रश्मि, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 13

119. सांध्यगीत, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 29

120. साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 59

121. नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 12

122. नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 39

123. नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 79

124. परिमल, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, पृ0सं0 104

125. नीहार, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 15

126. नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 102

127. दीपशिखा, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 88

128. सांध्यगीत, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 9

129. सांध्यगीत, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 41

130. नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 51

131. नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 89

132. विशाल भारत, जून 1952, पृ0सं0 377

133. रश्मि, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 26

134. रश्मि, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 49

135. नीहार, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 35

136. सांध्यगीत, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 52

137. महादेवीः नया मूल्यांकन, गणपति चन्द्र गुप्त, पृ0सं0 249

138. महादेवी, सं0 इन्द्रनाथ मदान, पृ0सं0 169

139. नीहार, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 41

140. नीहार, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 57

141. रश्मि, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 73

142. सांध्यगीत, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 30

143. सांध्यगीत, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 78

144. हिन्दी साहित्यः बीसवीं शताब्दी, नन्ददुलारे बाजपेई, पृ0सं0 177

145. हिन्दी साहित्यः बीसवीं शताब्दी नन्ददुलारे बाजपेई, पृ0सं0 176

146. नीहार, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 9

147. महादेवी, सं0 इन्द्रनाथ मदान, पृ0सं0 45

148. सुधा, मई-1939, पृ0सं0 437

149. रश्मि, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 14

150. महादेवी अभिनंदन ग्रन्थ, सं0 देवदत्त शास्त्री, पृ0सं0 119

151. महादेवी अभिनंदन ग्रन्थ, सं0 देवदत्त शास्त्री, पृ0सं0 142

174. नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 93

175. नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 36

176. नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 38

177. नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 91

178. नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 95

179. नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 81

180. नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 56

181. नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 83

182. महादेवी, सं0 शचीरानी गुर्टू, पृ0सं0 60

183. सुधा, मई 1939, पृ0सं0 439

184. दीपशिखा, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 51

185. नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 36

186. नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 91

187. नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 38

188. दीपशिखा, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 75

189. पल्लव, सुमित्रानंदन पंत, पृ0सं0 26

190. साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 55

191. नीहार, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 13

192. उत्तर प्रदेश, सितम्बर-1988, सं0 कौशल कुमार राय, पृ0सं0 141

193. दीपशिखा, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 92

194. नीहार, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 46

195. नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 34

196. नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 15

197. नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 81

198. सांध्यगीत, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 30

199. दीपशिखा, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 61

200. नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 64

201. महादेवी की काव्य साधना, सत्यपाल चुघ, पृ0सं0 136

202. नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 14

203. नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 28

204. महादेवी वर्मा, सं0 शचीरानी गुर्टू, पृ0सं0 72

205. नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 12

206. पल्लव, सुमित्रानंदन पंत, पृ0सं0 31

207. नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 27

208. नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 29

209. सांध्यगीत, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 41

210. दीपशिखा, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 81

211. रश्मि, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 51

212. नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 67

213. रश्मि, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 26

214. नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 82

215. सांध्यगीत, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 9

216. रश्मि, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 60

217. नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 28

218. रश्मि, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 89

219. दीपशिखा, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 120

220. वीणा, 1942, ब्रजकिशोर चतुर्वेदी, पृ0सं0 1068

221. नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 45

222. नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 36

223. रश्मि, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 23

224. नीहार, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 66

225. रश्मि, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 24

226. रश्मि, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 35

227. सांध्यगीत, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 18

228. नीहार, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 57

229. नीहार, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 27

230. नीहार, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 14

231. नीहार, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 15

232. नीहार, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 39

233. नीहार, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 25

234. नीहार, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 30

235. नीहार, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 33

236. नीहार, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 33

237. वीणा, नवम्बर 1942, ले0 ब्रजकिशोर चतुर्वेदी, पृ0सं0 43

238. नीहार, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 25

239. नीहार, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 11

240. रश्मि, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 24

241. रश्मि, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 28

242. नीहार, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 11

243. वीणा, नवम्बर-1942 ले0 ब्रजकिशोर चतुर्वेदी, पृ0सं0 43

244. नीहार, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 74

245. रश्मि, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 77

246. हिन्दी साहित्यः बीसवीं शताब्दी, नन्ददुलारे बाजपेई, पृ0सं0 187

247. महादेवी, सं0 परमानन्द श्रीवास्तव, पृ0सं0 11

248. महादेवी, सं0 इन्द्रनाथ मदान, पृ0सं0 134

249. महादेवी साहित्य समग्र, भाग-3, सं0 निर्मला जैन, पृ0सं0 415

250. महादेवी, सं0 इन्द्रनाथ मदान, पृ0सं0 72

251. वीणा, सितम्बर-1942, ले0 ब्रजकिशोर चतुर्वेदी, पृ0सं0 979

252. The Poetic Image, सी0डी0 लेविस, पृ0सं0 18-19

253. चिंतामणि-भाग-1, रामचंद्र शुक्ल, पृ0सं0 45

254. दीपशिखा, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 54

255. दीपशिखा, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 55

256. मेघदूत, (उत्तर मेघ-2) कालिदास

257. नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 26

258. रश्मि, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 17

259. रश्मि, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 16

260. नीहार, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 13

261. सांध्यगीत, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 20

262. महादेवी, सं0 शचीरानी गुर्टू, पृ0सं0 204

263. दीपशिखा, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 100

264. रश्मि, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 27

265. महादेवी का काव्य सौष्ठव, कुमार विमल, पृ0सं0 146

266. दीपशिखा, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 71

267. दीपशिखा, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 70

268. महादेवी का काव्य सौष्ठव, कुमार विमल, पृ. सं. 147

269. रश्मि, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 26

270. सांध्यगीत, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 41

271. सांध्यगीत, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 31

272. नीहार, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 19

273. नीहार, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 73

274. सांध्यगीत, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 18

275. सांध्यगीत, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 77

276. दीपशिखा, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 63

277. महादेवी का काव्य सौष्ठव, कुमार विमल, पृ0सं0 163

278. महादेवीः नया मूल्यांकन, गणपति चन्द्रगुप्त, पृ0सं0 269

279. नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 33

280. दीपशिखा, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 83

281. सांध्यगीत, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 52

282. रश्मि, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 51

283. रश्मि, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 23

284. दीपशिखा, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 90

285. नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 27

286. सांध्यगीत, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 70

287. सांध्यगीत, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 30

288. नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 27

289. नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 64

290. नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 25

291. नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 58

292. नीहार, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 20

293. नीहार, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 46

294. नीहार, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 11

295. नीहार, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 14

296. नीहार, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 11

297. नीहार, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 54

298. दीपशिखा, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 127

299. दीपशिखा, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 106

300. नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ0सं0 101

301. विशाल भारत, अप्रैल-1944, पृ0सं0 260

302. महादेवी, सं0 इन्द्रनाथ मदान, पृ0सं0 203

303. महादेवी, शचीरानी गुर्टू, पृ0सं0 50

304. हिन्दी साहित्यः बीसवीं शताब्दी, नन्ददुलारे बाजपेई, पृ0सं0 174

305. विशाल भारत, जनवरी, 1940, पृ0स0 93

306. 'यामा' भूमिका, महादेवी वर्मा, पृ0स0 5

307. विशाल भारत, जनवरी, 1940, पृ0स0 94

308. विशाल भारत, जनवरी, 1940, पृ0स0 94

309. विशाल भारत, जनवरी, 1940, पृ0स0 95

310. विशाल भारत, जनवरी, 1940, पृ0स0 96

311. विशाल भारत, मई, 1940, पृ0स0 525

312. साहित्य संदेश, सितम्बर 1940, पृ0सं0 25-30

313. साहित्य संदेश, सितम्बर 1953, पृ0सं0 128

314. साहित्य संदेश, अक्टूबर 1953, पृ0सं0 166

315. साहित्य संदेश, अक्टूबर 1953, पृ0सं0 166

316. विशाल भारत, मई 1931, 'स्त्री-कवि-कौमुदी', ईश्वरी प्रसाद , पृ0सं0 683 से 684

317. सरस्वती, जनवरी 1931 ले0 देवशंकर त्रिवेदी, पृ0सं0 144

318. सरस्वती, जनवरी 1940, पृ0सं0 89-90

319. विशाल भारत, जनवरी 1940, पृ0सं0 96

* * *

पंचम - अध्याय

महादेवी का गद्य साहित्य :

अन्तर्वस्तु, भाषा और शिल्प–स्वरूप और विश्लेषण

●

1. महादेवी का गद्य लेखन में प्रवेश
2. काव्य से गद्य का अन्तर
3. गद्य की विविध विधाएँ-
    क. रेखाचित्र
    ख. संस्मरण
    ग. आलोचकों द्वारा उठाया गया विधा का प्रश्न
    घ. महादेवी के संस्मरण और रेखाचित्र : अन्तर्वस्तु का विश्लेषण
4. महादेवी का निबन्ध लेखन
5. महादेवी की अन्य गद्य रचनाएँ
6. गद्य रचनाएँ : भाषा और शिल्प
7. महादेवी के गद्य को लेकर उठाए गए विवाद

महादेवी का गद्यलेखन में प्रवेश-

सन् 1936 के आसपास जब प्रगतिवाद के आकर्षक नारे से हिन्दी साहित्य जगत की गलियाँ गुँजायमान होने लगीं और सुमित्रानन्दन पन्त तथा सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला जैसे छायावाद के प्रमुख कवि भी छायावाद के धुंधले पथ को पर करके प्रगतिवाद के स्पष्ट पथ की ओर उन्मुख होने लगे तब अन्य कवियों के लिये क्या कहा जाये। प्रायः सभी कवि प्रगतिशील कहलाने के लिए आकुल होने लगे। प्रारम्भ से ही छायावाद को अछूत मानकर उसकी निरन्तर आलोचना करने वाले आलोचकों ने भी शीघ्र ही तत्कालीन पत्र पत्रिकओं में अपने लेखों द्वारा छायावाद के अन्त की घोषणा कर दी। यहाँ तक कि स्वयं सुमित्रानन्दन पन्त ने भी युगान्त की रचना द्वारा छायावाद का अन्त हुआ मान लिया और अपनी दूसरी कृति 'युगवाणी' द्वारा उन्होंने 'प्रगतिवाद' के उद्घोष को भी वाणी दे दी। ऐसे विषम समय में जब लगभग सभी महत्वपूर्ण सम्मेलन एवं मंचों द्वारा प्रगतिवाद का जय-जयगान किया जा रहा था और 1936 में तो प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना भी हो गई थी। तब भी महादेवी वर्मा ने अपनी काव्यकृति 'दीपशिखा' के द्वारा छायावाद की ज्योति को प्रज्जवलित करने का आखिरी सफल प्रयास तो अवश्य किया और लेकिन युगीन परिस्थितियों और समाज की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए अब महादेवी वर्मा के लिए भी यह सम्भव नहीं था कि वह निरन्तर छाया-पथ की ही अनुगामिनी बनी रहे। क्योंकि बार-बार वही भाव, वही विचार, वही बिम्ब, वही प्रतीक कविता में प्रयुक्त होकर अपना जादू खोने लगे थे और पुनरावृत्ति की संभावना अधिक प्रबल हो रही थी। यद्यपि यह तो महादेवी वर्मा ने भी स्वीकार किया कि 'छायावाद का जीवन के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण नहीं रहा।[1] उन्होंने यह भी स्वीकार किया-'छायावाद ने कोई रूढ़िगत अध्यात्म या वर्गगत सिद्धान्तों का संचय न देकर हमें केवल समष्टिगत चेतना और सूक्ष्मगत सौन्दर्य सत्ता की ओर जागरूक कर दिया था, इसी से उसे यथार्थ रूप में ग्रहण करना हमारे लिए कठिन हो गया ।' [2] परन्तु 'फिर भी उन्होंने समान धर्माओं की तरह राहें नहीं बदली'[3] और 'अपने शेष दो सहयात्रियों के समान, महादेवी ने समय और प्रवृत्ति दोनों ही दृष्टियों से छायावाद का अतिक्रमण करने का प्रयास नहीं किया।'[4] वरन् इसके विपरीत उन्होंने छायावादी प्रवृत्तियों को विराम देते हुए 'दीपशिखा' के साथ अपने कवि जीवन का अन्त स्वीकार करके अपनी विचारधारा में आए हुए इस परिवर्तन को महत्व दिया लेकिन उनकी लेखनी के लिए तो यह यह सम्भव ही नहीं था कि वह विराम पा जाए। अब तो समाज का अधिक विस्तृत एवं व्यापक क्षेत्र मानों उनकी प्रतीक्षा कर रहा था और अपने उत्पीड़न, शोषण की मूक कहानी को उनकी लेखनी द्वारा अभिव्यक्ति की आकांक्षा व्यक्त कर रहा था। महादेवी

वर्मा भी अपने काव्य में अभिव्यक्त आत्मपीड़ा को, करूणा तथा संवेदना को समाज में विद्यमान दीन-हीन शोषित जन की पीड़ा तथा संवेदना के साथ एकात्म स्थापित कर उनके मौन को मुखर अभिव्यक्ति देने में लग गई, जो तत्कालीन समाज की आवश्यकता भी थी। अब उनको अपनी अभिव्यक्ति के लिए एक विराट फलक दिखाई दे रहा था, उन्हें राजनीतिक क्षेत्र में छाये जनअसंतोष क कारण आशा निराश की डाँवाडोल स्थिति से विचलित मन को शक्ति और संबल भी देना था, दीन-हीन जन की समस्याओं को वाणी देकर समाज के तथाकथित प्रहरियों का ध्यान भी इस ओर आकृष्ट करना था और नारी की दीर्घकालीन जड़ता की स्थिति को समाप्त करना था, आधुनिक परिवेश में पली-बढ़ी नारी को आधुनिकता के सही मायने भी सिखाने थे। इसके लिए सर्वाधिक उपयुक्त माध्यम गद्य ही हो सकता था और उन्होंने गद्य को ही अपनी अभिव्यक्ति के लिए चुना। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं लगाना चाहिये कि काव्य में महादेवी चुक गई थी, इसीलिए गद्य को स्वीकार किया वरन् इसे हम साधारण ढंग से विचारधारा में आया हुआ परिवर्तन मान सकते हैं। महादेवी ने स्वीकार किया है'-'विचार के क्षणों में मुझे गद्य लिखा ही अच्छा लगता रहा है, क्योंकि उसमें अपनी अनुभूति ही नहीं बाह्य परिस्थितियों के विश्लेषण के लिए भी पर्याप्त अवकाश रहता है।[5] ऐसा भी नहीं था कि गद्य के क्षेत्र में महादेवी का यह आकस्मिक प्रवेश हो वरन् उनका पहला सामाजिक निबन्ध तभी लिखा जा चुका था जब वे सातवीं कक्षा की छात्रा थी। महादेवी स्वयं स्वीकार करती हैं कि 'अतः जीवन की वास्तविकता से मेरा परिचय कुछ नवीन नहीं है।'[6] साहित्य-सर्जना के सम्बन्ध में अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हुए वे लिखती हैं-'मेरे सम्पूर्ण मानसिक विकास में उस बुद्धि प्रसूत चिन्तन का भी विशेष महत्व है, जो जीवन की बाह्य व्यवस्थाओं के अध्ययन में गति पाता रहा है। अनेक सामाजिक रूढ़ियों में दबे हुए, निर्जीव संस्कारों का भार ढोते हुए और विविध विषमताओं में साँस लेने का भी अवकाश न पाते हुए जीवन के ज्ञान ने मेरे भाव-जगत की वेदना को गहराई और जीवन को क्रिया दी है। उसके बौद्धिक निरूपण के लिए गद्य को स्वीकार किया।[7]

महादेवी वर्मा की विचारधारा में आए हुए परिवर्तन का ही परिणाम है कि जीवन की दृष्टि से बहुधन्धी होने के कारण वे एकान्त काव्य साधना करने को व्यर्थ मानती हैं। उन्हें भाव-जगत और विचार जगत दोनोंसमान रूप से आकृष्ट करते हैं और इन दोनों से किसी एक में ही जीवन की पूर्णता पा लेने को वह पर्याप्त नहीं मानतीं। इसलिए महादेवी वर्मा ने भिन्न-भिन्न कार्य क्षेत्रों का निर्धारण किया है- वे लिखती हैं कि 'विशाल साहित्यिक परिवार के हर्ष शोक मेरे अपने हैं, परन्तु उससे बाहर खड़े व्यक्तियों की सुख-दुख कथा भी मुझे पराई नहीं लगती। अपने सुशिक्षित, सुसंस्कृत विद्यार्थियों से साहित्यालोचन करके मुझे प्रसन्नता होती है, परन्तु अपने मलिन दुर्बल जिज्ञासुओं को वर्णमाला पढ़ाने में मुझे कम सुख नहीं मिलता।[8]

महादेवी को गद्य लेखन की ओर प्रेरित करने के लिए एक अन्य दृष्टिकोण, जिसकी ओर हमारा ध्यान जाता है वह है-'गद्य कविनाम् निकषं वदन्ति।' अर्थात किसी भी कवि की काव्यप्रतिभा की सच्ची परख उसके गद्यात्मक कौशल से होती है। इस पंक्ति को आधार बनाकर तत्कालीन आलोचकों ने महादेवी की आलोचना भी की जो उनकी काव्य प्रतिभा के नित नये आयाम देखकर चमत्कृत हो रहे थे और स्वयं को उसकी उचित समीक्षा करने में असमर्थ पा रहे थे। महादेवी ने अपनी गद्य कृतियों द्वारा हिन्दी साहित्य जगत में एक युगान्तर उपस्थित किया। यद्यपि वे स्वयं इस कसौटी की उपयुक्त नहीं मानतीं। वे लिखती हैं कि "हमारे यहाँ कहा गया है कि गद्य कवि का निकष है-'गद्यं कविनाम् निकषं वदन्ति।' कवि के लिए उन्होंने गद्य को कविता की कसौटी निश्चित किया है। यह मेरे विचार में बहुत उचित नहीं जान पड़ता, क्योंकि कविता से गद्य का कोई सीधा संबंध नहीं है और अच्छा कवि होने के लिए कवि अच्छा गद्यकार हो, यह भी आवश्यक नहीं है। इस कसौटी को यदि हम भी प्रमुख न मानें तो भी महादेवी वर्मा ने ओज से भरे हुए विचारपूर्ण और चिन्तन प्रधान लेखों द्वारा जो कुछ भी कहा अथवा लिखा, वह दशकों का व्यवधान पार करने के बाद आज भी इतना अधिक प्रासंगिक है कि हम जब भी उनक गद्य साहित्य का अध्ययन करने बैठते हैं तो आश्चर्य होता है कि कैसे महादेवी उस युग में रहकर भी अपने युग से इतना आगे बढ़ चुकी थीं। या फिर निर्मला जैन के शब्दों को उधर लेकर कहें- कि 'महादेवी अपने समय से बहुत आगे थीं या हम अपने समय से बहुत पिछड़े हुए हैं।'[10]

काव्य से गद्य का अन्तर

जिस समय महादेवी वर्मा ने 'अतीत के चलचित्र' की रचना के साथ गद्य के क्षेत्र में प्रवेश किया, तब तक काव्यक्षेत्र में छायावादी प्रवृत्तियों का युग समाप्त हो चुका था। सभी प्रमुख छायावादी कवि अपनी रचनाओं में छायावाद की प्रवृत्तियों का पूर्णतया परित्याग कर चुके थे और प्रगतिशीलता तथा जनोन्मुखता से सम्बन्धित प्रवृत्तियों को अपनी रचनाओं में प्रश्रय देने लगे थे। ऐसे में यद्यपि महादेवी वर्मा ने छायावाद को तो नहीं छोड़ा। वे लिखती हैं कि 'मुझसे जहाँ ठहरा गया, वहाँ मैं ठहरी। मैंने प्रयत्न भी नहीं किया कि लोग मुझको प्रगतिशील माने या न माने यह चिंता मैंने कभी नहीं की।[12] लेकिन उनके गद्य साहित्य में यथार्थवादी विशेषताएँ पूरी तरह से झलकती हैं। काव्य क्षेत्र में जहाँ वे छायावाद के काल्पनिक जगत में विचरण करती रही थीं, वहीं गद्य में वे यथार्थ की ठोस भूमि पर उतर आती हैं। काव्य में जहाँ वैयक्तिता का प्राधान्य है, वहीं गद्य में पूर्ण रूप से उन पर सामाजिकता हावी हो जाती है। गद्य साहित्य के अन्तर्गत हमें महादेवी वर्मा के काव्य से सर्वथा भिन्न, एक नये रूप के दर्शन होते हैं, जो समाज में व्याप्त असमानताओं और विषमताओं को देखकर पूर्णतया विद्रोही हो जाता है। उन्होंने दीन-हीन शोषित, उत्पीड़ित और कठोर परिश्रम के द्वारा

अपनी जीविका चलाने वाले सामान्य जन को अपनी सहानुभूति तथा करूणा का पात्र बनाया है। इस वर्ग के प्रति अन्याय होता देखकर वे असहिष्णु हो जाती हैं और उसका प्रतिकार करते हुए, समाज का उच्च वर्ग, जो इस अन्याय के लिए उत्तरदायी है, उसके प्रति उनकी गद्य रचनाओं में तीव्र आक्रोश और व्यंग्य अभिव्यक्त होता है। महादेवी वर्मा का अन्तर्मुखी व्यक्तित्व, जो उनके काव्य में चारों ओर व्याप्त दिखाई देता है, उनके गद्य में वही व्यक्तित्व पूर्णतया बहिष्कृत हो जाता है और उनकी अन्तर्मुखी वृत्तियाँ बहिर्मुखी होकर सामाजिक असंगतियों और विद्रूपताओं को गद्य में व्यक्त करती हैं। सूर्य प्रसाद दीक्षित लिखते हैं कि 'महादेवी जी प्रारम्भिक रूप से कवि हैं और शनैः शनैः क्रमशः प्रौढ़ता के विकास के साथ नम्र पथ पर उतरती जाती हैं। भाव से विचार, हार्दिकता से बौद्धिकता और राग से दर्शन की बुद्धि के साथ गद्य लेखन में वह अधिकाधिक प्रवृत्त होती हैं।''[13]

महादेवी वर्मा ने काव्य और गद्य को दो भिन्न-भिन्न विचारभूमि में स्थित माना है। उन्होंने गद्य के लिए तर्कशक्ति का होना अनिवार्य माना है क्योंकि तर्क के माध्यम से ही हम दूसरे में यह विश्वास उत्पन्न करते हैं कि वह हमारे द्वारा लिखे हुए को सही माने और उसका प्रत्युत्तर दे सके। जबकि कविता में तो तर्क की आवश्यकता ही नहीं है क्योंकि उसमें प्रतिउत्तर ही नहीं देना होता और यदि ऐसा किया जाता तो ऐसा करने पर वह कविता न रहकर 'पैरोडी' बन जाएगी। गद्य लिखने से पूर्व महादेवी उस विषय पर पूर्ण रूप से विचार करती हैं कि इस विषय को प्रामाणिक बनाने के लिए कौन-कौन से तर्क देने चाहिए। जबकि कविता में वे अपने-आपको बिल्कुल आत्मसात कर लेती हैं। गद्य साहित्य के अन्तर्गत विद्यमान निबन्ध विधा में यह प्रक्रिया पूरे वेग से मिलती है। उसमें विषय कठिन होने पर शोधकार्य भी करना पड़ता है गहराई से विचारविमर्श करना पड़ता है और तटस्थ होकर लिखना पड़ता है और संस्मरण में प्रयुक्त गद्य को वे कविता की कोटि में पहुँचा हुआ मानती हैं। यहाँ तक कि महादेवी संस्मरण को अपनी कविता के लिए कसौटी भी मानती हैं। महादेवी का मानना है कि किसी दुखी मनुष्य की आँखों से गिरा एक बूँद आंसू शीघ्र ही उस व्यक्ति के साथ तादात्म्य स्थापित कर देता है और उसकी अभिव्यक्ति वे गद्य में कर देती है लेकिन कविता में वह यथार्थ को नहीं दर्शा पाती क्योंकि उनके लिए कविता आत्मा की अभिव्यक्ति है। उन्होंने स्वीकार किया है कि -'हाँ गद्य में कुछ और कहती हूँ। पद्य में वह न कहूँ, यानी वही बात कहूँ जो गद्य में कहती हूँ तो मुझे बल नहीं मिलेगा। मेरा अंतर्जगत दूसरे प्रकार का है। वह दूसरी अभिव्यक्ति चाहता है।'[14]

महादेवी की काव्य रचनाओं का अध्ययन करने के बाद यदि कोई उनकी गद्य रचनाओं का अध्ययन करे तो सहसा उसे विश्वास ही नहीं होगा कि इन दोनों माध्यमों के द्वारा साहित्य को समृद्ध बनाने वाली महादेवी एक ही हैं। अपनी कविताओं में वे कल्पना लोक में निवास करने वाली लगती हैं। वेदना, विरह, मिलन, प्रेम आदि ही उनके काव्य विषय नजर आते हैं। काव्य में वे लिखती हैं कि

पर शेष नहीं होगी यह

मेरे प्राणों की क्रीड़ा,

तुमको पीड़ा में ढूँढ़ा

तुममें ढूँढूँगी पीड़ा।'[15]

अथवा

'मिलन का मत नाम ले, मैं विरह में चिर हूँ।'[16]

वहीं गद्य में भी वेदना और पीड़ा का असीम साम्राज्य विद्यमान है लेकिन वह वेदना और पीड़ा महादेवी की स्वयं की वेदना नहीं है वरन् समाज के दीन-हीन शोषित जन की वेदना और पीड़ा है जिसे अपनी करूणा और सहानुभूति का आश्रय देकर वे स्वर देती हैं। रामा, सबिया, गुँगिया, बाल विधवा, भाभी, बिन्दा, बिट्टो आदि पात्रों की वेदना ने उनके मन मस्तिष्क में गहरा प्रभाव डाला है। पुरूष के व्यभिचार का शिकार हुई एक बाल विधवा की हीन दशा को देश कर वह आक्रोश में भरकर पुकार उठती हैं-'यदि यह स्त्रियाँ अपने शिशु को गोद में लेकर साहस से कह सके कि 'बर्बरों तुमने हमारा नारीत्व, पत्नीत्व सब ले लिया, पर हम अपना मातृत्व किसी प्रकार न देगी' तो इनकी समस्याएँ तुरन्त सुलझ जावें। जो समाज उन्हें वीरता, साहस और त्याग भरे मातृत्व के साथ नहीं स्वीकार कर सकता, क्या वह इनकी कायरता और दैन्य भरी मूर्ति को ऊँचे सिंहासन पर प्रतिष्ठित कर पूजेगा? युगों से पुरुष स्त्री को उसकी शक्ति के लिए नहीं, सहनशक्ति के लिए ही दण्ड देता आ रहा है।'[17]

काव्य में महादेवी ने अपने भावों की अभिव्यक्ति के लिए अज्ञात, अव्यक्त प्रियतम को आलम्बन के रूप में ग्रहण किया है। कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं-

कौन तुम मेरे हृदय में?[18]

अथवा

तुम मुझमें प्रिय! फिर परिचय क्या?[19]

वहीं गद्य में वे समाज की जागरूक नागरिक बनकर उसमें विद्यमान समस्याओं की ओर उन्मुख होती हैं। भक्तिन, पर्वत कन्या लछमा, ब्रह्मण वधू बूटा और चीनी फेरी वाला आदि के चित्रांकन द्वारा ग्रामीण समाज में व्याप्त विषमताओं की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करती हैं। और इस पुरुष प्रधान समाज में नारी पर होने वाले अत्याचारों को अपना निशाना बनाती हैं। परिश्रमी बूटा के लिए ग्रामीण समाज द्वारा की गई

आपत्तियों पर व्यंग्य करती हुई वे लिखती हैं- "परिश्रमी के तप में पली यह नारी यदि भिक्षाजीवी ब्राह्मणत्व से मिट्टी ढोने को अच्छा समझती है, तो यह उसकी व्यक्तिगत विवशता है। किन्तु लीक-लीक चलने वाला समाज यदि ऐसे आडम्बरों को निरंकुश बहने दे तो उसकी एक लीक भी बच सके। इसी से मजदूरिन ब्राह्मण वधू ब्रह्म तेज सम्पन्न भिक्षुक समाज की आँख की किरकिरी हैं।[20] गद्य में महादेवी अपने चारों ओर विद्यमान और परिस्थितियों के प्रति अत्यधिक जागरूक हैं। काव्य में विद्यमान आत्मगोपनता की प्रवृत्ति गद्य में आकर पूर्णतया विलीन हो जाती हैं और वे एक जागरूक सामाजिक के समान समाज की सारी गतिविधियों में हिस्सा लेती हैं, उसकी आलोचना भी करती हैं और उसमें विद्यमान समस्याओं का समाधान करने का प्रयास भी करती हैं।

महादेवी वर्मा का गद्य साहित्स और पद्य साहित्य एक दूसरे के प्रतिद्वन्द्वी नहीं हैं जैसा कि प्रथम दृष्टि में देखने पर लगता है वरन् उसका गहन अनुशीलन करने पर वे एक दूसरे के पूरक प्रतीत होते हैं। दोनों में ही उनका व्यक्तित्व समाया हुआ है। काव्य में जहाँ उनके व्यक्तित्व का अन्तर्मुखी रूप प्रतिबिम्बित होता है वहीं गद्य में उनके बहिर्मुखी रूप के दर्शन होते हैं। जिसने महादेवी के काव्य रचनाओं में केवल दुखः पीड़ा, वेदना का ही साम्राज्य देखा है, वह जब उनके गद्य साहित्य-क्षत्र में प्रवेश करता है तो यहाँ उनकी चिन्तनशील दृष्टि, आक्रोशपूर्ण विचारों को देखकर आश्चर्यचकित हो उठता है, क्योंकि उनके ये दोनों रूप पूर्णतया भिन्न नजर आते हैं। ओंकार शरद भी इस भिन्नता की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करते हुए लिखते हैं कि -"कवि रूप में महादेवी जितनी कोमल, करूण और पीड़ित दिखाई पड़ती है, गद्यकार के रूप में वे उतनी ही चट्टानी, प्रखर, ओजस्वी और उग्र हैं। महादेवी का काव्य जहाँ पाठक को पीड़ा लोक में ले जाकर थपकियाँ देकर सुलाने का प्रयास करता है, वहीं उनका गद्य मुरदे में कफन फाड़कर उठ बैठने की शक्ति संचारित करता है।[21]

गद्य की विविध विधाएँ-

काव्य विधा को विराम देने के उपरान्त महादेवी वर्मा के साहित्य का दूसरा चरण संस्करण और रेखाचित्रों के माध्यम के द्वारा शुरू होता है। इसके अतिरिक्त उनके द्वारा लिखे गये आलोचनात्मक और विचारात्मक निबन्ध, ललित निबन्ध, विभिन्न जीविकाओं के सम्पादकीय लेख तथा काव्य ग्रन्थों की भूमिकाओं के रूप में लिखा गया गद्य भी महत्वपूर्ण है और साथ ही एक नयी विधा भी है, 'जिसका उपयुक्त नामकरण होने में अभी समय लगेगा।' महादेवी की गद्य रचनाओं में 'अतीत के चलचित्र', 'स्मृति की रेखाएँ', 'शृंखला की कड़ियां', 'पथ के साथी', 'मेरा परिवार', 'साहित्यकार की आस्था' तथा अन्य निबन्ध', 'क्षणदा' आदि प्रमुख हैं। जिसमें 'साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध' में उनके विचारात्मक तथा आलोचनात्मक

निबन्ध संग्रहीत हैं और 'क्षणदा' ललित निबन्धों का संग्रह है। लेकिन उनकी प्रारम्भिक गद्य कृतियों 'अतीत के चलचित्र', 'स्मृति की रेखाएँ', 'पथ के साथी' और 'शृंखला की कड़ियाँ' को किस विधा के अन्तर्गत रखा जाय, इसे लेकर विद्वानों में पर्याप्त वाद-विवाद हुआ है। कुछ इन्हें रेखाचित्र मानते हैं और कुछ इनको संस्मरण विधा के अन्तर्गत स्वीकार करते हैं। विद्वानों का एक वर्ग इसमें संस्मरण और रेखाचित्र दोनों की विशेषतायें समाहित मानते हैं। आखिरकार संस्मरण और रेखाचित्र क्या है? इसका एक संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है-

रेखाचित्र-रेखाचित्र शब्द अंग्रेजी के स्केच (Sketch) का हिन्दी रूपान्तर है, जो दो शब्दों के योग से बना है- रेखा और चित्र। जिस प्रकार चित्रकला में चित्रकार टेढ़ी मेढ़ी रेखाओं के सहारे एक सुन्दर सजीव चित्र खड़ा कर देता है, उसी प्रकार साहित्य में जब लेखक कुछ गिने चुने शब्दों द्वारा वर्णित विषय का भावपूर्ण अंकन करके उसके स्वरूप को उदघाटित करता है, तो उसे रेखाचित्र कहते हैं। 'शब्द रेखाओं द्वारा अंकित चित्र ही रेखाचित्र कहलाता है।[22] डा. विश्वनाथ शुक्ल ने रेखाचित्र को परिभाषित करते हुए लिखा है-'रेखाचित्र शब्दों के माध्यम से की गई फोटोग्राफी है।'[23] रेखाचित्र में साहित्यकार सर्वाधिक उपयुक्त शब्दों के द्वारा व्यंग्यात्मक उक्ति वैचित्य तथा काव्यात्मक ढंग से वर्ण्य विषय का ऐसा वर्णन करता है कि पढ़ने वाले के नेत्रों के सम्मुख उस वस्तु का बिम्ब ही उपस्थित हो जाता है। लेकिन रेखाचित्रकार के लिए आवश्यक है कि उसकी दृष्टि सूक्ष्म, पर्यवेक्षण में निपुण और मर्म को ग्रहण करने वाली हो क्योंकि तभी वह कम से कम शब्दों में सजीव रूप-विधान तथा छोटे से छोटे वाक्य के अधिक से अधिक तीव्र और मर्म स्पर्शी भाव व्यंजना कर सकता है। रेखाचित्र में पात्र का भावपूर्ण अंकन से रेखा चित्रकार की भी कलात्म्क एवं वैयक्तिक विशिष्टता प्रकट होती है क्योंकि रेखाचित्रकार द्वारा एक ही पात्र का वर्णन हमारे हृदय में जुगुप्सा और घृणा भी उत्पन्न कर सकता है तो दूसरे रेखाचित्रकार द्वारा उसी पात्र का अंकन करूणा एवं सहानुभूति को भी जाग्रत कर सकता है ओर ऐसा करना वर्णन की विशेष प्रणाली पर ही निर्भर करता है। डा. नगेन्द्र रेखाचित्र शब्द को ऐसी रचना के लिए प्रयुक्त करते हैं जिसमें मूर्त रूप में रेखाएँ हों। कथानक का उतारचढ़ाव न हो और तथ्यों का उद्घाटन मात्र हो। पूर्व आयोजन अथवा आयोजित विकास न हो। रेखाचित्र में तथ्य खुलते जाते हैं, संयोजित नहीं होते। रेखाचित्र के लिए घटना का होना जरूरी है क्योंकि रेखाचित्र घटना का भराव वहन नहीं कर सकता।

संस्मरण-सामाजिक प्राणी होने के कारण मनुष्य अपने जीवन में अनेक व्यक्तियों के सम्पर्क में आता है लेकिन उनमें से कुछ ही हमारे ऊपर अपना गहन प्रभाव छोड़ पाते हैं, ओर वह हमारी स्मृति में सुरक्षित रह जाता है। इस स्मृति में अपने जीवन की घटनाएँ भी शामिल रहती हैं। साहित्य में वर्णित होकर यही स्मृतियाँ संस्मरण का रूप धारण कर लेती हैं। संस्मरण शब्द अंग्रेजी के memoirs का हिन्दी रूपान्तर है

लेकिन memoirs में ऐतिहासिक, महान और प्रसिद्ध पात्रों को ही चित्रण का विषय बनाया जाता है। वही संस्मरण विधा में ऐसा कोई प्रतिबन्ध नहीं होता। समाज में रहने वाले उपेक्षित, दीन-हीन जन को भी संस्मरण का विषय बनाया जा सकता है। संस्मरण में घटना अथवा पात्रों का स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं रहता वरन् इसमें संस्मरणकार की भावनाओं और प्रतिक्रियाओं का अवश्य प्रमुख स्थान रहता है। संस्मरण लिखने के लिए उस पात्र के साथ आत्मीयता प्रमुख शर्त है। संस्मरण काव्य की कोटि में भी आ जाता है। यह स्वान्तः सुखाय ही लिखा जाता है। संस्मरण और कविता में समानधर्मी तत्व अनुभूति की गहन तीव्रता है लेकिन दोनों में अन्तर अभिव्यक्ति का है। अनुभूति की कलात्मक अभिव्यक्ति गद्य के माध्यम से संस्मरण में होती है। संस्मरण में संस्मरणकार उन क्षणों को शब्दों में व्यक्त करता है, जिन्हें उसने स्वयं जिया है। गोविन्द बिगुणायत ने संस्मरण को परिभाषित करते हुए लिखा-"भावुक कलाकार जब अतीत की अनन्त स्मृतियों में से कुछ रमणीय अनुभूतियों को अपनी कोमल कल्पना से अतिरंजित कर व्यंजनामूलक संकेत शैली में अपने व्यक्तित्व की विशेषताओं से विशिष्ट कर रोचक ढंग से यथार्थ रूप में व्यक्त कर देता है, तब उसे संस्मरण कहते हैं।"[24]

महादेवी वर्मा रेखाचित्र शब्द की व्युत्पत्ति और उसके अर्थ का विस्तार चित्रकला के क्षेत्र से हुआ मानती हैं जहाँ पर रेखाओं द्वारा अंकित किया गया चित्र रंग और छायालोक से भिन्न किसी वस्तु या व्यक्ति की विशेषताओं का ज्ञान कराता है और संस्मरण में हमारी स्मृति, अपनी निरीक्षण शक्ति धारणा और प्रत्यभिज्ञान आदि के माध्यम से हमारे अनुभवों में स्थिर अव्यक्त संस्कारों का पुनर्निमाण इस प्रकार प्रस्तुत करती हैं कि वह देश काल की सीमा से भी परे हो जाता है। महादेवी वर्मा संस्मरण और रेखाचित्र में बहुत सूक्ष्म अन्तर मानती है लेकिन फिर भी यह अन्तर इतना तो अवश्य है कि पाठक दोनों को अलग-अलग पहचान सकता है। रेखाचित्र में वर्णित घटना हमारी स्मृति में सुरक्षित ही रहे, यह आवश्यक नहीं है जबकि संस्मरण पूर्णरूपेण स्मृति पर निर्भर रहने के कारण उससे घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित रहते हैं। संस्मरण में वर्णित पात्र का लेखक से घनिष्ठ परिचय होना आवश्यक है। रेखाचित्र लिखते समय लेखक तटस्थ भी हो सकता है लेकिन संस्मरण में तटस्थता के लिए कोई स्थान नहीं है। महादेवी संस्मरण के सम्बन्ध में लिखती हैं कि "हम यदि किसी से प्रगाढ़ और आत्मीय परिचय रखते तो उस व्यक्ति को अनेक मनोवृत्तियों तथा उनके अनुसार आचरण करते देखना भी सहज हो जाता है और अपनी प्रतिक्रिया की स्थिति रखना भी स्वाभाविक हो जाता है। इन्हीं क्षणों का सुखद या दुखद प्रत्यावर्तन संस्मरण कहा जा सकता है।"[25]

आलोचकों द्वारा उठाया गया विधा का प्रश्न-

संस्मरण और रेखाचित्र की उपर्युक्त विशेषताओं के आधार पर डा. वीरेन्द्र कुमार बड़सूवाला 'अतीत के चलचित्र' और 'स्मृति की रेखाएँ' को संस्मरण मानते हैं। उन्होंने लिखा है-'अतीत के चलचित्र में महादेवी

वर्मा ने समय-समय पर अपने सम्पर्क से उसके चिन्तन को दिशा और संवेदन को गति देने वाले व्यक्तियों के विषय में संस्मरण लिखे हैं।'[26] इन स्मृति चित्रों में महादेवी का जीवन भी अनायास ही संग्रथित हो गया है। 'स्मृति की रेखाएँ' में महादेवी का व्यक्तित्व इतना अधिक उसके पात्रों के साथ घुल मिल गया है कि वह आत्मकथा जैसा भी लगने लगता है। इन दोनों को वे रेखाचित्र कहा जाना स्वीकार नहीं करते। उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि "मुझको यह संस्मरण ही अधिक प्रतीत हुए हैं रेखा-चित्र कम क्योंकि उनमें महादेवी का अपना व्यक्तित्व इस सीमा तक गुँथा हुआ है कि आत्मकथा की सीमा तक पहुँच गया है।[27] लेकिन बाद में वे इन्हें रेखाचित्र कहकर सम्बोधित करते हैं जो व्यक्तिपरक अधिक हैं, वस्तुपरक कम वे लिखते हैं कि हर कथा में महादेवी केवल मूक दर्शक नहीं हैं बल्कि कभी वह सूत्रधार हैं तो कभी कोई अभिनेता, जिसके अभाव में रेखाचित्र का रूप निर्माण असम्भव हो जाता।[28] लेकिन 'पथ के साथी' को वे पूरी तरह से रेखाचित्र की कोटि में परिगणित करते हैं, जिसमें रवीन्द्र नाथ टैगोर, मैथिलीशरण गुप्त, सुभद्रा कुमारी चौहान, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानन्दन पंत और सियाराम शरण गुप्त के व्यक्तित्व तथा कृतित्व का ज्ञान संस्मरणात्मक रूप में दिया गया है। विषय वस्तु की दृष्टि से ये सभी रेखाचित्र एक-दूसरे से स्वतन्त्र हैं। रचनाशैली की दृष्टि से 'पथ के साथ' की एक विशेषता की ओर वह हमारा ध्यान आकृष्ट करते हुए लिखते हैं कि 'जहाँ महादेवी के अन्य रेखाचित्रों में कथातत्व की अतिशयता के कारण संस्मरण अथवा कहानी का भ्रम होता है, वहाँ ये रेखाचित्र इस दोष से मुक्त है।"[29] वीरेन्द्र कुमार बड़सू वाला ने इन्हें बिखरे हुए स्मृतिचित्र माना है जिन्हें एक साथ रखकर रेखाचित्र की संख्या दे दी गई है। एक स्थान पर वीरेन्द्र कुमार बड़सूवाला 'पथ के साथी' को ललित निबन्ध कला कहा जाना भी उपयुक्त मानते हैं।

माधवी राजगोपाल ने भी 'अतीत के चलचित्र' और 'स्मृति की रेखाएँ' को संस्मरण तथा 'पथ के साथी' को रेखाचित्र की संज्ञा देना स्वीकार किया है। यद्यपि वे मानती है कि कुछ विद्वानों ने 'अतीत के चलचित्र' और 'स्मृति की रेखाएँ' को रेखाचित्र की संज्ञा दी है लेकिन यह मूल रूप में संस्मरण ही हैं क्योंकि वे लिखती है कि 'इनमें महादेवी जी का अपना जीवन भी आ गया है तथा इन पात्रों से आपका सम्बन्ध भी दृष्टिगोचर होता है।'[30] 'पथ के साथी' को रेखाचित्र के रूप में स्वीकार करते हुए वे लिखती हैं कि "आपने अपने पथ अर्थात साहित्यपथ के छः साथियों का रेखाचित्र प्रस्तुत पुस्तक में खींचा है तथा प्रणाम के रूप में कवीन्द्र रवीन्द्र नाथ ठाकुर का रेखाचित्र प्रस्तुत किया है। इन सभी कलाकारों से वे प्रत्यक्ष रूप से परिचित हैं। अतः इनके रेखाचित्रों में एक निजत्व का भाव आ जाना स्वाभाविक है। परन्तु प्रशंसनीय बात यह है कि निजता के आने पर भी यह रेखाचित्र ही रहा है, संस्मरण नहीं बना है।"[31] अतीत के चलचित्र' और 'स्मृति की रेखाएँ' को वे संस्मरण ही मानती हैं और लिखती हैं कि 'कुछ लोग आपकी 'स्मृति की रेखाएँ' तथा 'अतीत के चलचित्र' नामक दो पुस्तकों को भी रेखाचित्र मानते हैं, परन्तु इनको मैं संस्मरण ही समझती हूँ।'[32]

चरनसखी शर्मा ने महादेवी के सम्पूर्ण गद्य साहित्य को दो भागों में विभाजित किया है-(1) विचारात्मक गद्य। (2) संस्मरणात्मक गद्य। विचारात्मक गद्य के अन्तर्गत शृंखला की कड़ियाँ, क्षणदा, साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध आदि आते हैं, वहीं संस्मरणाात्मक गद्य के अन्तर्गत उन्होंने 'अतीत के चलचित्र', 'स्मृति की रेखाएँ' और 'पथ के साथी' तथा 'क्षणदा' में संग्रहीत दो यात्रा संस्मरण 'स्वर्ग का एक कोना' तथा 'सुई दे रानी' को परिगणित किया है। यद्यपि अन्य विद्वानों द्वारा इन्हें रेखाचित्र की संज्ञा दिये जाने को वे उपयुक्त नहीं मानतीं। उन्होंने लिखा है-'महादेवी प्रमुखतः कवियित्री हैं, इसलिए उनके संस्मरणों में चित्रात्मकता स्वयं ही आस्यूत हो गई हैं; उनको रेखाचित्र कहना भ्रम में डालना है।'[33]

डा. विजय प्रकाश उपाध्याय ने महादेवी के गद्य को दो भागों में बांटा है-1. बुद्धि वृत्ति प्रधान गद्य। 2. बुद्धिवृत्ति तथा हृदय वृत्ति का सामंजस्य प्रधान गद्य। प्रथम के अन्तर्गत उन्होंने 'शृंखला की कड़ियाँ', 'क्षणदा', 'साहित्यकार की आस्था', 'विवेचनात्मक गद्य', 'संकल्पिता', व अन्य निबन्ध को रखा है।' 'अतीत के चलचित्र', 'स्मृति की रेखाएँ', 'पथ के साथी' और 'मेरा परिवार' को वे द्वितीय कोटि में रखते हैं और उन्हें संस्मरणात्मक रेखाचित्र की संज्ञा देते हैं। वे लिखते हैं कि 'ये संस्मरणात्मक रेखाचित्र नवीनता सम्पन्न भी है, यह रेखचित्र की विधा नवीन है, रेखाचित्रों के आधार पर नवीन दृष्टिकोण से चुने गए हैं।[34]

गंगा प्रसाद पाण्डेय महादेवी के संस्मरणों में कहानी का भी कुछ अंश देखते हैं। कहानी के लिऐ यथार्थता को अनिवार्य शर्त मानते हैं और संस्मरण में यर्थाथता का तत्व अनायास ही आ जाता है। वे लिखते हैं कि 'महादेवी के संस्मरणों की यथार्थता को यदि स्वाभाविक कहा जाय तो अधिक अच्छा हो क्योंकि उनके यथार्थ पर आदर्श उसी प्रकार स्थापित है, जिस प्रकार पृथ्वी पर आकाश।...... महादेवी ने अपनी समवेदना शक्ति से उसे एक नवीन गति दी है। इन सभी कहानियों में करूणा का एक अबाध स्रोत है, पीड़ितों और उपेक्षितों के प्रति हार्दिक समवेदना है, मनुष्यत्व को जगा देने की कामना है और है, विश्व कल्याण की एक भावना।'[35] 'अतीत के चलचित्र' को वे महादेवी वर्मा की संस्मरणात्मक कहानियों का संग्रह मानते हैं।

गोपाल कृष्ण कौल ने 'अतीत के चलचित्र', 'स्मृति की रेखाएँ' और 'पथ के साथी' को रेखाचित्र माना है, जिसमें महादेवी के जीवन का प्रतिबिम्ब भी मिलता है और उसमें महादेवी के समय के सामाजिक परिवेश और जनजीवन को भी विशिष्ट स्थान मिला है। वे स्वीकार करते हैं कि यद्यपि स्मृति की रेखाएँ, 'अतीत के चलचित्र' और 'पथ के साथी' में महादेवी के जीवन स्मरण भी निहित है, फिर भी उनमें रेखाचित्र के तत्व ही अधिक हैं। वे लिखते हैं कि "उनके रेखाचित्रों के पात्र ऐतिहासिक महापुरुष नहीं बल्कि भारतीय जनजीवन के वे कुरूप चित्र हैं जो कुछ तो अशिक्षा और शोषण से दीन और सरल बन गए हैं और कुछ महादेवी की ममता और करूणापूर्ण सहानुभूति से। दलित और पिछड़ा हुआ मानकर जिन व्यक्तित्वों की हम

उपेक्षा कर देते हैं; महादेवी ने अपनी विराट सहानुभूति के सहारे उनका अंतरंग अध्ययन कर इन रेखाचित्रं में प्रस्तुत किया है।'[36]

गोविन्द त्रिगुणायत ने महादेवी वर्मा के 'अतीत के चलचित्र', 'स्मृति की रेखाएँ' और 'शृंखला की कड़ियाँ' में रेखाचित्र, कहानी और संस्मरण तीनों के ही तत्वों का समावेश माना है लेकिन मुख्य रूप से यह रेखाचित्र ही है।वे लिखते हैं कि हिन्दी की भावुक कवियित्री ने कुछ सुन्दर रेखाचित्र भी लिखे हैं, जो संस्मरणात्मक कहानियों का आनन्द देते हैं। इनके रेखाचित्र 'अतीत के चलचित्र', 'स्मृति की रेखाएँ', और 'शृंखला की कड़ियाँ' नामक संग्रहों में संग्रहीत हैं।'[37]

इसके अतिरिक्त तत्कालीन पत्र पत्रिकाओं में भी इस विवाद को पर्याप्त जगह मिली और अनेक लेखकों ने इन कृतियों की विधा का निर्धारण करने के लिए अपने लेख भी प्रकाशित करवाए। फरवरी, 1955 में साहित्य संदेश में प्रकाशित अपने लेख में श्री आनन्द माधव मिश्र ने 'अतीत के चलचित्र' और 'स्मृति की रेखाएँ' को तो संस्मरण माना ही है। किन्तु 'शृंखला की कड़ियाँ' को भी उन्होंने संस्मरण विधा के अन्तर्गत स्वीकार किया है।

श्री ओंकार राही ने महादेवी पर लगाए गए अपार्थिकता, रहस्यमयता और अलौकिकता जैसे आरोपों को शान्त करने में उनके रेखाचित्रों को समर्थ माना है। वे लिखते हैं कि 'अतीत के चलचित्र' और 'स्मृति की रेखाएँ' इसके गवाह हैं। 'दीपशिखा' की 'यदि मैं चित्र बना पाती' वाली भावना अब कल्पना और सम्भावना एवं अविश्वास पर नहीं, विश्वास और निष्ठा पर आश्रित हो गई है। चित्र उनके निर्माण की क्रिया में नहीं है; अपितु पूर्ण हो चुके हैं और उनका स्वरूप करूणा के रंगों से रंजित होकर खिल उठा है।'[38] श्री ओंकार राही ने महादेवी की गद्यकृतियों के विषय में उठे हुए वाद विवाद को शान्त करने का प्रयास करते हुए लिखा है-"उनके इन रेखाचित्रों से लोगों को संस्मरणों का भ्रम हो जाता है। कोई कहानी के तत्व ढूँढ़ता है, परन्तु सत्य तो यह है कि वे सभी कुछ हैं। अधिक स्पष्टीकरण के लिए यह कहा जा सकता है कि यदि 'शृंखला की कड़ियाँ' 'संस्मरणात्मक निबन्ध हैं तो अवश्य ही उनके रेखाचित्र अपनी संस्मरणात्मक शैली में व्यक्तिगत निबन्धों के अधिक समीप हैं। कहानी का प्रवाह उनमें सर्वत्र हैं और व्यक्तित्व की छाप के कारण ममता और सहानुभूति उनमें बिखरी पड़ी हैं। इसी कारण वे अपने क्षेत्र के अन्य कलाकारों रामवृक्ष जी बेनीपुरी तथा बनारसीदास जी चतुर्वेदी की परम्परा से अलग हो गई हैं।"[39] श्री ओंकार राही ने 'अतीत के चलचित्र', 'स्मृति की रेखाएँ' और 'पथ के साथी' को रेखाचित्र की संज्ञा दी है। वे स्वीकार करते हैं कि यह मान्य है कि महादेवी के अब तीन रेखाचित्र संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं-'अतीत के चलचित्र', 'स्मृति की रेखाएँ', और 'पथ के साथी'। इनकी उत्कृष्टता पर कोई शंका नहीं उठाई जा सकती है।'[40]

प्रकाश चन्द्र गुप्त अतीत के चलचित्र और स्मृति की रेखाएँ को संस्मरण नहीं मानते हैं। वरन् उनका मानना है कि इन दोनों गद्य कृतियों के माध्यम से महादेवी ने नए कलारूप के सृष्टि की है। इसको वे संस्मरण और सामाजिक इतिहास का सम्मिश्रण मानते हैं। अपने लेख में वे लिखते हैं कि "इनको हम संस्मरण नहीं कह सकते क्योंकि इनमें अहम्मन्यता का सर्वथा अभाव है। क्योंकि लेखिका के व्यक्तित्व ने इन चित्रों के चतुर्दिक अतीव घनिष्ठता और आत्मीयता का वातावरण बना रखा है। संस्मरण और सामाजिक इतिहास दोनों का सम्मिश्रण ये चित्र हैं।"[40 (1)]

श्री ध० गो० वेद ने अपने लेख में 'अतीत के चलचित्र', और 'स्मृति की रेखाएँ' के साथ-साथ 'शृंखला की कड़ियाँ' को भी संस्मरण माना है। अपने लेख में वे लिखते हैं कि 'महादेवी के ये संस्मरण 'अतीत के चलचित्र', 'शृंखला की कड़ियाँ' और 'स्मृति की रेखाएँ' इन तीन संग्रहों में एकत्र किए गए हैं। प्रत्येक संस्मरण रोचकपूर्ण अपने आप में अनोखी कहानी है। महादेवी वर्मा का पूरा चित्र आपके हृदय की कहानी है। महादेवी वर्मा का पूरा चित्र आपके हृदय की गठन, आत्मा की कम्पन और पूरा व्यक्तित्व संस्मरणों में अमिट सा छप गया है।'[41] उनके अनुसार यद्यपि 'अतीत के चलचित्र' और 'स्मृति की रेखाएँ' तो संस्मरण विधा के अन्तर्गत आते हैं लेकिन 'शृंखला की कड़ियाँ' को किसी भी दृष्टिकोण से संस्मरण नहीं माना जा सकता है वरन् वह तो शुद्ध विचारात्मक निबन्धों की कोटि में आता है। जिसमें जड़ता की बेड़ियों में जकड़े हुए नारी जीवन की शृंखला की कड़ियों को तोड़ने का प्रयास किया गया है।

डा. कृष्ण कुमार शर्मा ने इस विवाद में भाग लेते हुए इन कृतियों को संस्मरण ही माना है। अपने लेख में उन्होंने लिखा है कि, "कहीं-कहीं लेखकों ने महादेवी के संस्मरणों को रेखाचित्र कह दिया है। वे रेखाचित्र नहीं हैं, संस्मरण ही हैं। महादेवी ने स्वयं इन्हें संस्मरण और स्मृति चित्र ही कहा है। महादेवी जी चूँकि कवियित्री हैं और शब्द शिल्पी हैं, अतएव चित्रात्मकता इन संस्मरणों में स्वयं अनुस्यूत हो गई है। पात्र साकार हुए हैं, इतने से ही ये संस्मरण रेखाचित्र नहीं कहे जा सकते।"[42] वैसे तो कृष्ण कुमार शर्मा रेखाचित्र शब्द को ही उचित नहीं मानते और उनके स्थान पर 'शब्दचित्र' शब्द का प्रयोग करते हैं और यह मानते हैं कि संस्मरण को पूर्ण बनाने के लिए महादेवी शब्दचित्र को साधन के रूप में स्वीकार करती हैं।

सुश्री प्रा० कु० प्रेमलता ने इन कृतियों को न तो केवल रेखाचित्र माना है और न ही केवल संस्मरण। वरन् वे इसमें दोनों की विशेषतायें अनुस्यूत मानती हैं। उन्होंने रेखाचित्रों को तीन भागों में विभाजित किया गया है। 1. संस्मरणात्मक, 2. कथात्मक, 3. रूपकात्मक। महादेवी के रेखाचित्रों को वे संस्मरण की कोटि में रखती हैं। क्योंकि इनमें वर्णित सभी पात्रों को साथ महादेवी का आत्मीयता का सम्बन्ध रहा है। वे लिखती हैं कि "इस प्रकार पात्रों का कौशलपूर्ण रेखांकन जहाँ इन कृतियों को रेखाचित्रों की कोटि में पहुँचा देता है

वहाँ उनमें उपलब्ध लेखिका के निजी राग विराग और क्षोभ-क्रोध की भावना उन्हें संस्मरण के निकट ले आत हैं। अतः वे शुद्ध रूप से रेखाचित्र या संस्मरण न होकर संस्मरणात्मक रेखाचित्र बन गए हैं।''[43]

श्री रामशरण तिवारी ने अपने लेख में 'अतीत के चलचित्र', 'स्मृति की रेखाएँ' और 'पथ के साथी' को संस्मरण माना है, जिनमें विशिष्ट वर्ग के नहीं वरन् सामान्य जन के संस्मरण संग्रहीत हैं। उनका मानना है कि ''इन कृतियों में संस्मरण संकलित हैं, ये न तो धनी लोगों के हैं, न ऐसे लोगों के जिनकी समाज में प्रतिष्ठा है। लेखिका ने ऐसे बहिष्कृत व्यक्तियों की स्मृति को रखा है जिन्हें दुनियाँ कूड़ा करकट समझ भूल जाया करती है। वे हैं सामान्य जन, समाज से एक प्रकार से निर्वासित निम्न वर्ग के लोग, मजदूर।''[44]

डा. कुमारी प्रेमलता वर्मा ने अपने लेख में 'अतीत के चलचित्र' और 'स्मृति की रेखाएँ' और 'पथ के साथी' को रेखाचित्र की संज्ञा दी है।

इस सम्पूर्ण विवरण से स्पष्ट किया है कि यदि उपर्युक्त विवाद का शमन करने के लिए महादेवी की गद्य कृतियों के प्रारम्भ में दी गई भूमिकाओं को दृष्टि में रखा जाये तो पर्याप्त सीमा तक इस समस्या का समाधान हो जाता है। महादेवी ने स्पष्टतः स्वीकार किया है कि मेरे अधिकांश रेखाचित्र कहे जाने वाले शब्दचित्र संस्मरण की कोटि में ही आते हैं क्योंकि किसी भी क्षणमात्र की झलक पाकर मैं उसके सम्बन्ध में अपनी प्रतिक्रिया प्रायः अपने लेखों में व्यक्त कर देती हूँ। रेखाचित्र के लिए पात्रों का रेखांकन करते समय तटस्थता प्रमुख विशेषता मानी गई है और महादेवी के लिए यह सम्भव ही नहीं था कि वे अपने वर्णित पात्रों के विषय में तटस्थ रह सकें। अपने पात्रों के वर्णन में आत्मीयता के तत्व को वे प्रमुख स्थान देती हैं। वे स्वयं मानती हैं कि उनके संस्मरणों में रेखाचित्र के कुछ तत्व अवश्य विद्यमान रहते हैं। वे स्वीकार करती हैं कि मेरे संस्मरणों में रेखाचित्र भी सम्मिश्रित हो जाते हैं जिसका स्पष्ट कारण मेरा रेखांकन प्रेम ही कहा जायेगा। किसी भी प्रत्यक्ष या कल्पनाश्रित व्यक्ति या वस्तु को कुछ रेखाओं में आँकना मेरे लिए स्वाभाविक हो जाता है। यदि ऐसा रेखांकन सम्भव नहीं होता तो शब्दांकन अनिवार्य आवश्यकता बन जाता है। मेरे विचार में शब्दांकन के साथ यदि पूर्ण मनोयोग हो तो वे रेखांकन से अधिक प्रभावशाली हो सकता है। रेखांकन को इच्छानुसार परिवर्तित कर लेना देखने वाले के लिए संभव नहीं है। किन्तु शब्दांकन के प्रत्येक पाठक को अपने मनोजगत के अनुकूल ढालता बनाता रहता है।

'स्मृति की रेखाएँ' में मैंने दोनों का उपयोग किया था किन्तु आज भी मुझे उसके शब्दांकन ही प्रिय हैं।[45]

'अतीत के चलचित्र' को भी वे संस्मरण ही मानती हैं और इन संस्मरणों की रचना का श्रेय उन व्यक्तियों के सम्पर्क को देती है जिन्होंने उनके चिन्तन को दिशा और संवेदना को गति दी है। 'अतीत के

चलचित्र' की रचना का श्रेय वह एक वृद्ध सेवक को देते हुए लिखती हैं कि ''सन् 1930 में उसी भृत्य को देखकर मुझे अपना बचपन और उसे अपनी ममता से घेरे हुए रामा इस तरह स्मरण आये कि अतीत की अधूरी कथा लिखने के लिए मन आकुल हो उठा। फिर धीरे-धीरे रामा का परिवार बढ़ता गया और अतीत चित्रों में वर्तमान के चित्र भी सम्मिलित होते गये। उद्देश्य केवल यही था कि जब समय अपनी तूलिका फेरकर इन अतीत चित्रों की चमक मिटा दे, तब इन संस्मरणों के धुंधले आलोक में मैं उन्हें फिर पहचान सकूँ।[46]

'पथ के साथी' को भी वे संस्मरण मानती हैं जिसमें अपने अग्रज और समकालीन साहित्यकारों के जीवन, व्यक्तित्व, कृतित्व तथा अपने साथ उनके सम्बन्धों का विवेचन किया है। वे लिखती हैं कि ''मेरा यह सौभाग्य रहा है कि अपने युग के विशिष्ट व्यक्तियों का मुझे साथ मिला और मैंने उन्हें निकट से देखने का अवसर पाया। उनके जीवन के तथा आचरित आदर्शों ने मुझे निरन्तर प्रभावित किया है। उन्हें आशा-निराशा, जय-पराजय, सुख-दुख के अनेक क्षणों में मैंने देखा अवश्य, पर उनकी अडिग आस्था ने मुझ पर जीवन व्यापी प्रभाव छोड़ा है। उनके सम्बन्ध में कुछ लिखना उनके अभिनंदन से अधिक मेरा पर्व स्नान है।''[47]

'शृंखला की कड़ियाँ' को महादेवी ने विचारात्मक निबन्ध के अन्तर्गत स्वीकार किया है। 'अपनी बात' के अन्तर्गत वे लिखती हैं कि ''प्रस्तुत संग्रह में कुछ ऐसे निबन्ध जा रहे हैं जिनमें मैंने भारतीय नारी की विषम परिस्थितियों को अनेक दृष्टि बिन्दुओं से देखने का प्रयास किया है। अन्याय के प्रति मैं स्वभाव से असहिष्णु हूँ, अतः इन निबन्धों में उग्रता की गंध स्वाभाविक है, परन्तु ध्वंस के लिए ध्वंस के सिद्धान्त में मेरा कभी विश्वास नहीं रहा। मैं तो सृजन के उन प्रकाशतत्वों के प्रति निष्ठावान हूँ जिनकी उपस्थिति में विकृति अन्धकार के समान विलीन हो जाती है।''[48]

स्पष्ट है कि 'अतीत के चलचित्र' 'स्मृति की रेखाएँ और 'पथ के साथी' मूलरूप में संस्मरण हैं जिसमें रेखाचित्र की भी विशेषताओं का भी समावेश है। इसी कारण विद्वान आलोचकों के मध्य इनकी विधा को लेकर भ्रम बना रहा। इनमें वर्णित पात्रों के साथ महादेवी की आत्मीयता इन कृतियों को संस्मरण के निकट ले आती हैं और इन संस्मरणों को प्रस्तुत करने की प्रणाली इन्हें रेखचित्र के समीप पहुँचा देती हैं। 'शृंखला की कड़ियाँ' तो शुद्ध रूप से वैचारिक निबन्धों का संग्रह है।

महादेवी के संस्मरण और रेखाचित्र : अन्तर्वस्तु का विश्लेषण

छायावादी लेखक बीसवीं शताब्दी के नवजागरण काल से प्रभावित रहे हैं और उनके साहित्य के अधिकांश भाग में राष्ट्रीय आन्दोलन के तीव्रतम संघर्ष को ही वाणी मिली है। किन्तु परतन्त्र देश में उन्हें संघर्ष के ऐसे क्षणों में साहित्यकार का दायित्व और भी महान हो जाता है क्योंकि एक ओर तो वे अपने साहित्य

के माध्यम से देशवासियों के मध्य राष्ट्र प्रेम की ज्योति को भी प्रज्जवलित रखना है तो वहीं दूसरी ओर उसे सामाजिक विकास के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करना है। ऐसी विषम परिस्थितियों में घात प्रतिघातों के जो संघात उसके मन पर पड़ते हैं, उन्हें आत्मसात करके उन भावों को वह साहित्य में अभिव्यक्त करता है। इस पृष्ठभूमि को यदि हम दृष्टि में रखें तो महादेवी वर्मा की राष्ट्रीय आन्दोलन में यद्यपि कोई प्रत्यक्ष भूमिका नहीं दिखाई पड़ती लेकिन सामाजिक संचेतना को जाग्रत करने में उनकी रचनाओं के योगदान को विस्मृत नहीं किया जा सकता। महादेवी के संस्मरणात्मक साहित्य में उनका जीवन तो स्मृति चित्रों के रूप में आ ही गया है लेकिन तत्कालीन सामाजिक परिवेश और युगीन जनमानस की छटपटाहट को भी वाणी मिली है। आनन्द माधव मिश्र 'साहित्य संदेश' में लिखते हैं कि "वह स्वयं जनजीवन के निकट पहुँचती है और अपने पाठक को भी ले जाती हैं। पाठकों की शिराओं में चेतना भरकर यथार्थ जीवन में झाँकने की शक्ति प्रदान करती हैं। वह यहीं पर रूक नहीं जाती, वरन् पूरे वेग से समाज की युग व्यवस्था को चुनौती देती हैं।"[49]

महादेवी वर्मा के काव्य में पीड़ा का जो अथाह सागर लहराता हुआ दिखाई पड़ता है, उसका मूल उद्गम स्वयं उनका अपना व्यक्तिगत जीवन न होकर समाज में नारी की व्यथापूर्ण स्थिति और दीन-हीन दलित वर्ग के प्रति समान के उच्च वर्ग के उपेक्षित व्यवहार में देखा जा सकता है। नारी की स्थिति इतनी विचित्र है कि उसे सिर्फ अपने अपराध का ही नहीं वरन् पुरुष द्वारा किए जा रहे अपराधों का भी दण्ड सहना पड़ता है। नारी की ऐसी स्थिति ने महादेवी के संवेदनशील ह्रदय में ऐसी पीड़ा भर दी, जो नासूर बन कर रह गई और इसी पीड़ा की अभिव्यक्ति उनकी रचनाओं में हुई। महादेवी का संस्मरण साहित्य समाज में नारी की हीन-दीन दशा के अनेक व्यथा एवं आक्रोशपूर्ण चित्र प्रस्तुत करता है। तत्कालीन पत्रिका 'साहित्य संदेश' में एक टिप्पणी छपती है। "समाज के परम उपेक्षित तत्व ही उनके संस्मरणों की कड़ियाँ हैं, जिन पर उनकी कोमल करूण स्मृतियों का वितान तना है।'[50] अतीत के चलचित्र और स्मृति की रेखाएँ के ये नारी पात्र पुरुष प्रधान समाज की ह्रदयहीनता और निष्ठुरता के शिकार हैं। अतीत के चलचित्र के द्वितीय संस्मरण में विधवा का चित्रण है, जो वृद्धा होने की साधना में निरन्तर लीन है- 'उस समाधि जैसे घर में लोहे के प्राचीन से घिरे फूल के समान वह किशोरी बालिका- बिना किसी संगी साथी, बिना किसी प्रकार के आमोद-प्रमोद के, मानों निरन्तर वृद्धा होने की साधना में लीन थी।[51] इतना ही नहीं न तो वह रंगीन कपड़े धारण कर सकती है, न दोनों समय भोजन ग्रहण कर सकती है और न ही कहीं आ जा सकती है क्योंकि ऐसा करना ही यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त था कि "उसका मन विधवा के संयम प्रधान जीवन से ऊब कर किसी विपरीत दिशा में जा रहा है।"[52] और उसके जीवन में सबसे कठिन तब आते थे जब उसकी ननद मायके आती थी क्योंकि उस ननद को वापस जाने पर भाभी के हाथों पर जलने के लम्बे काले निशान, पैरों पर नीले दाग आम बात थी। इस पात्र के साथ महादेवी का आत्मीय सम्बन्ध भी रहा था। अतः उसके कष्टपूर्ण जीवन को देखकर

उनका व्यथित होना स्वाभाविक था। वे लिखती हैं कि "उस 19 वर्ष की युवती की दयनीयता आज समझ पाती हूँ, जिसके जीवन के सुनहरे स्वप्न गुड़ियों के घरौंदे के समान दुर्दिन की वर्षा में केवल वह ही नहीं गए, वरन् उसे इतना एकाकी छोड़ गए कि उन स्वप्नों की कथा कहना भी सम्भव नहीं हो सका।'[53] तृतीय संस्मरण के अन्तर्गत बिन्दा को केवल "अपराध का ही नहीं, वरन् अपराध के अभाव का भी दण्ड सहना पड़ता था।"[54] चौथा संस्मरण सबिया का है जो अशिक्षित तथा दीन-हीन होने पर भी बलिदान और उत्सर्ग की भावना से ओत-प्रोत है। पति द्वारा परित्यक्त होने पर भी वह पूरी निष्ठा से उसकी अंधी माँ और दोनों बच्चों का पालन पोषण करती है। लेकिन महादेवी पुरुष द्वारा दिखाई गई ऐसी निष्ठुरता पर आक्रेश से भर कर कह उठती हैं "पुरुष भी विचित्र है। वह अपने छोटे से छोटे सुख के लिए स्त्री को बड़े से बड़ा दुख दे डालता है। और ऐसी निश्चिन्तता से मानो वह स्त्री को उसका प्राप्य ही दे रहा हो।"[55] बिट्टो के संस्मरण द्वारा महादेवी ने समाज में बाल विवाह और अनमेल विवाह की समस्या की ओर ध्यान आकृष्ट किया है। तत्कालीन समाज में एक तो कन्या का विवाह इतनी कम उम्र में कर दिया जाता था कि वह विवाह का मतलब भी नहीं समझती थी। और यदि ऐसे में वह विधवा हो जाये तो उसे केवल समाज में नहीं वरन् अपने परिवार में भी अनेक लांछनों और यंत्रणाओं को सहन करना पड़ता था, फिर विधवा का पुनर्विवाह तो और भी कठिन समस्या थी। ऐसी सामाजिक व्यवस्था और परम्परागत संस्कारों पर महादेवी ने तीखा व्यंग्य किया है'-जिस समाज में 64 वर्ष का व्यक्ति 14 वर्ष की पत्नी चाहता है वहाँ 32 वर्ष के बिट्टो के पुनर्विवाह की समस्या सुलझा लेना टेढ़ी खीर थी। उसके भाग्य से ही 150 वर्ष की पूर्णायु वाला कोई पुरुष न मिला और उसके जन्म जन्मान्तर के अखण्ड पुण्य फल से हमारे 54 वर्ष के बाबा ने उसके उद्धार का बीड़ा उठाया।[56] एक अन्य संस्मरण में पुरुष के व्यभिचार का शिकार बाल विधवा का चित्रण है। महादेवी का हृदय ऐसे पुरुषों के प्रति आक्रोश से भर उठता है, जो नारी का उपभोग करने के बाद स्वयं तो समाज में बिना किसी की परवाह किए रहते हैं और नारी को अज्ञातवास क लिए मजबूर होना पड़ता है। यद्यपि मातृत्व नारी जीवन के लिए वरदान है और अपनी सन्तान को हृदय से लगाकर माता सारे संसार को चुनौती दे सकती है। इसलिए यह समाज सर्वप्रथम उसके बच्चे को ही अवैध घोषित कर देता है। महादेवी समाज में स्त्रियों की ऐसी दशा देखकर क्षुब्ध हो उठती है और यहीं पर उनकी विद्रोही वाणी मुखरित हो उठती है जो अपने में सामाजिक चेतना को भी परिव्याप्त किए रहती है लेकिन यह विद्रोह प्रतिशोध की भावना से प्रेरित नहीं है। वे लिखती हैं कि "यदि यह स्त्रियाँ अपने शिशु को गोद में लेकर साहस से कह सकें कि बर्बरों, तुमने हमारा नारीत्व पत्नीत्व सब ले लिया, पर हम अपना मातृत्व किसी प्रकार न देंगी, तो इनकी समस्यायें तुरन्त सुलझ जावें। जो समाज इन्हें वीरता, साहस और त्याग भरे मातृत्व के साथ नहीं स्वीकार कर सकता, क्या वह उनकी कायरता और दैन्य भरी मूर्ति को ऊँचे सिंहासन पर प्रतिष्ठित कर पूजेगा? युगों से पुरुष स्त्री को उसकी शक्ति के लिए नहीं सहन शक्ति के लिए ही दण्ड देता आ रहा है।"[57]

महादेवी ने अपने संस्मरणों में वेश्याजीवन की समस्याओं को भी उठाया है। समाज में नारी यदि एक बार वेश्या नाम से सम्बोधित हो गई तो लाख प्रयत्न करने पर भी वह स्वयं को इस शब्द से मुक्त नहीं कर सकती। वेश्या की सन्तान, जो वेश्या नहीं है, परन्तु माँ के वेश्या होने के कारण समाज द्वारा स्वीकार नहीं की जाती। महादेवी के सम्पर्क में भी एक ऐसी नारी आती है, जो अपने और अपने पति के आत्म सम्मान के रक्षार्थ निरन्तर कटिबद्ध है लेकिन फिर भी समाज उसे किसी काम के उपयुक्त नहीं मानता और यहाँ तक कि महादेवी भी उसे काम देने के लिए उत्सुक नहीं जान पड़ती क्योंकि वे जानती हैं कि उसे एक बार काम पर रख लेने पर किस तरह की समस्यायें खड़ी हो जायेंगी। वे लिखती हैं कि "काम देने की बात स्मरण कर मेरे ओठों में एक व्यंग्य की हँसी आये बिना न रह सकी। वह क्या जाने कि उसकी उपस्थिति क्या-क्या अनर्थ कर सकती है।"[58] वेश्याओं के प्रति समाज के दृष्टिकोण को उजागर करती हुई वे लिखती हैं-"वह पतित कही जाने वाली माँ के पुत्री है और बिना समाज के प्रवेश पत्र के ही साध्वी स्त्रियों के मन्दिर में प्रवेश करना चाहती थी। उसे पता नहीं, समाज के पास वह जादू की छड़ी है, जिससे छूकर वह जिस स्त्री को सती कह देता है, केवल वही सती होने का सौभाग्य प्राप्त कर सकती है।"[59] नारी की प्रवृत्ति सृजन की ओर उन्मुख होने की है, एक घर, पति और बच्चे के ही उसके जीवन की चाह है लेकिन समाज में उसे इसका अधिकार भी नहीं देता। वे लिखती हैं कि-'समाज इन्हें न जाने कितने दीर्घ काल से कितने ही उपायों के द्वारा समझाता आ रहा है कि यह माता, पुत्री, पत्नी आदि त्रिगुणात्मक उपाधियों से रहित जीवन्मुक्त नारी मात्र है और उसकी इसी मुक्ति से समाज का कल्याण बंधा हुआ है। फिर भी यदि यह अपने गुरु कर्तव्य से च्युत होकर पत्नीत्व, मातृत्व आदि संबंधों को चुराती फिरें, तो समाज चुराई हुई वस्तु पर इनका स्वत्व स्वीकार करके क्या अपना विधान ही मिथ्या कर दे।"[60] नारी की सहनशीलता आदि गुणों का वर्णन रधिया के संस्मरण में किया गया है, जिसका पति बेहद गरीब है और जो स्वयं उसके और बच्चों के लिए दोनों समय के भोजन की भी व्यवस्था नहीं कर सकता लेकिन फिर भी रधिया के मन में रोष की कोई भावना नहीं है। जिन वस्तुओं का उसका पति प्रबन्ध नहीं कर पाता, वह चीजें उसे अच्छी भी नहीं लगती। बेहद सहज भाव से इस बात को समझती है और अपनी तथा बच्चों की समस्याओं को पति से छुपाती रहती है। रधिया के सम्बन्ध में महादेवी का कथन है- "स्त्री में माँ का रूप ही सत्य, वात्सल्य ही शिव और ममता ही सुन्दर है। जब वह इन विशेषताओं के साथ पुरुष के जीवन में प्रतिष्ठित होती है तब उसका रिक्त स्थान भर लेना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य हो जाता है।"[61] अतीत के चलचित्र' का अंतिम संस्मरण पर्वत कन्या लछमा का है जिसकी शादी एक ऐसे व्यक्ति से होती है जिसका मानसिक विकास अवरुद्ध हो चुका है। जेठ-जिठौतों के लिए परिश्रमी ओर बुद्धिमती बहू समस्या थी क्योंकि उन सबका मानना था कि "उसकी उपस्थिति में भाई की सम्पत्ति का प्रबन्ध करना भी आवश्यक हो जाता है ओर उसे आत्मसात करने की इच्छा रोकना भी अनिवार्य हो उठता है।"[62] लछमा जब

अपने अधिकार छोड़ने के लिए तैयार नहीं हुई है तो उसे इतना मारा-पीटा जाता है कि वह मरणासन्न अवस्था में पहुँच जाती है। वह किसी तरह जान बचाकर अपने घर पहुँचती है और अपने भाई की गृहस्थी संभाल लेती है। उसे जीवित जानकर उसके ससुराल के सम्बन्धी लेने आते हैं तो वह किसी भी प्रकार से उनके साथ जाने को तैयार नहीं होती। स्त्रियों द्वारा ही लछमा पर अनेक मिथ्या आरोप भी लगाये जाते हैं। ऐसे में महादेवी स्त्रियों को निष्ठुरता पर तीखा प्रहार करते हुए लिखती हैं-"एक पुरुष के प्रति अन्याय की कल्पना से ही सारा पुरुष समाज उस स्त्री से प्रतिशोध लेने को उतारू हो जाता है और एक स्त्री के साथ क्रूरतम अन्याय का प्रमाण पाकर भी सब स्त्रियाँ उसके अकारण दण्ड को अधिक भारी बनाए बिना नहीं रहतीं।"[63]

'स्मृति की रेखाएँ' के प्रथम संस्करण में भक्तिन के माध्यम से महादेवी ने ग्रामीण जीवन में व्याप्त विषमताओं और पुरुष प्रधान समाज में नारी पर होने वाले अत्याचारों को अपना लक्ष्य बनाया है। भक्तिन के दुर्भाग्य का उदय उसके जीवन के प्रारम्भ में हो गया था, जो धीरे-धीरे निराशा के घोर अन्धकार की ओर बढ़ता गया। उसका विवाह पाँच वर्ष की आयु में और गौना 9 वर्ष की आयु में सम्पन्न हुआ लेकिन विवाह के पश्चात् भी उसे सुख की अपेक्षा दुख ही अधिक मिला। गेहुएँ रंग और बटिया जैसे मुख वाली तीन कन्याओं का जन्म ही ससुराल में उपेक्षा के लिए पर्याप्त था और उस पर असमय ही पति की मृत्यु हो जाने पर उसके जमीन और धन लेने के लिए षडयन्त्र भी प्रारम्भ हो गये। भक्तिन के पास विवाह के लिए प्रस्ताव भी भेजे गये लेकिन भक्तिन ने "गुरु से कान फुंकवा, कण्ठी बांध और पति के नाम पर घी से चिकने केशों को समर्पित कर अपने कभी न टलने की घोषणा कर दी।"[64] लेकिन इस जीवन व्यापी प्रकोप से उसकी पुत्री न बच सकी और उसके रिश्तेदार उसकी बेटी के गले में एक तीतरबाज वर को बाँधने में सफल रहे। यद्यपि भक्तिन में भी दुर्गुणों का अभाव नहीं है, महादेवी लिखती हैं कि "पविार और परिस्थितियों के कारण उसके स्वभाव में जो विषमतायें उत्पन्न हो गई है उनके भीतर से एक स्नेह और सहानुभूति की आभा फूटती रहती है, इसी से उसके सम्पर्क में आने वाले व्यक्ति उसमें जीवन की सहज मार्मिकता पाते हैं।"[65] इस प्रकार यह गंवार और अक्खड़ औरत ममता तथा एक निष्ठता की प्रतिमूर्ति बनी महादेवी के साथ जीवन भर रहती है। 'स्मृति की रेखाएँ' के अन्तर्गत नारी से सम्बन्धित दूसरा संस्मरण परिश्रमशील ब्राह्मण वधू बूटा का है जो अपने पिता के गुरु भाई द्वारा ही छली जाती है। वह उसका घर बेचकर और बूटा को संगम के मेले में छोड़कर चला जाता है, जहाँ से वह एक सम्भ्रान्त ब्राह्मण परिवार में सेविका का कार्य करती है और अन्त में भिक्षा वृत्ति पर जीवित रहने वाले परिवार में वधू बन कर जाती है। उस परिवार का पुरुष वर्ग अपने आलस्य और प्रमाद के कारण श्रम करके अपने परिवार का भरण पोषण भी नहीं कर सकता वरन् सभी बूटा पर ही निर्भर रहते हैं। बूटा के सम्बन्ध में महादेवी लिखती हैं-"ग्राम की सम्भ्रान्त कुल वधुओं के समान ही मुन्नू की भाई

मधुरभाषिणी, सलज्ज और सेवापरायण है, पर उस विजन में उसका जीवन जंगली फूल के समान उपेक्षा और परिचय के बीच खिला है।''[66] गाँव में अन्न का संकट उत्पन्न होने पर वह भिक्षावृत्ति के स्थान पर मिट्टी ढोने के कार्य को उचित समझती हैं, जो उसके गाँव के सजातियों को पसन्द नहीं आता। ये सजातीय उसके निकम्मे पति को तो कुछ नहीं कहते लेकिन बूटा का मिट्टी ढोने का काम उन्हें किसी भी तरह से स्वीकार्य नहीं। महादेवी समाज की इस स्थिति पर व्यंग्य करते हुए लिखती हैं - ''परिश्रम के तप में पली यह नारी यदि भिक्षाजीवी ब्राह्मणत्व से मिट्टी ढोने को अच्छा समझती हैं, तो यह उसकी व्यक्तिगत विवशता है। किन्तु लीक-लीक चलने वाला समाज यदि ऐसे आडम्बरों को निरंकुश बहने दे तो उसकी एक लीक भी न बच सके। इसी से मजदूरिन ब्राह्मण वधू ब्रह्मतेज सम्पन्न भिक्षुक समाज की आँख की किरकिरी है।''[67] बूटा के इस संस्मरण से एक प्रश्न अवश्य कौंधता है कि क्या समाज में बूटा जैसी परिश्रमशील, स्वाभिमानी, अशिक्षित महिलाएँ इतना परिश्रम करने पर भी जीवन के सहज सुख प्राप्त करने की अधिकारिणी नहीं है। 'स्मृति की रेखाएं' में एक अन्य संस्मरण अभिमानिनी रजक बालिका बिबिया का है जो बार-बार पुरुष वर्ग द्वारा अपमानित और प्रताड़ित होती रही है। उसका सम्पूर्ण जीवन अत्याचार की ऐसी कहानी बनकर रह जाता है, जिसका अन्त आत्मघात द्वारा ही संभव होता है, यद्यपि बिबिया धोबिनों में सबसे अधिक परिश्रमी और उसी मात्रा में सबसे अधिक अभागिन भी थी। उसके तीन विवाह हुए लेकिन उनमें से एक भी वर उसे सुख प्रदान न कर सका और तीसरे विवाह में तो उस पर अपने पति के बड़े पुत्र द्वारा ही चरित्र हनन का आरोप लगाया जाता है। अपमानित और तिरस्कृत बिबिया इस बार सभी को कर्तव्य भार से मुक्त करने के लिए कगार तोड़कर हिलोरें लेने वाली यमुना में शरण ले लेती हैं। महादेवी लिखती हैं-''बिबिया जैसे स्वभाव के व्यक्ति पराजित होने पर भी पराजय स्वीकार नहीं करते। कौन कह सकता है कि उसने सब ओर से निराश होकर अपनी अन्तिम पराजय को भूलने के लिए यह आयोजन नहीं किया संसार ने उसे निर्वासित कर दिया, इसे स्वीकार करके और गरजती हुई तरंगों के सामने आँचल फैलाकर क्या वह अभिमानिनी स्थान की याचना कर सकती थी।[68] बिबिया का चरित्र स्त्रियों पर पुरुषों के कभी न समाप्त होने वाले अत्याचारों की कहानी कहता है। यद्यपि उसने शक्ति भर पुरुषों द्वारा किये जा रहे अत्याचारों के विरुद्ध संघर्ष किया लेकिन अपने चरित्र पर लगे हुए कलंक को वह मिटा न सकी। भला नारी जीवन की इससे बढ़कर विडम्बना और क्या हो सकती है? परम स्वाभिमानी, सेवा में निरन्तर संलग्न परिश्रमी नारी का ऐसा अन्त हमारे समाज के सम्पूर्ण अस्तित्व को चुनौती देता है और उसकी करूण परिणति कितनी सशक्त है। सबसे अन्त में महादेवी ने गुँगिया का चित्रण किया है जो अपने गूँगेपन के कारण जीवन भर उपेक्षित रही। पति ने भी उसे छोड़ दिया और जिस बच्चे का वह बड़े मन से पालन पोषण करती है, बड़ा होने पर वह भी उसे छोड़कर साधुओं की मंडली में सम्मिलित हो

जाता है। फिर वापस लौटकर कभी गुँगिया की खबर नहीं लेता। गुँगिया के साथ प्रकृति ने तो अन्याय किया ही किन्तु समाज ने उससे भी अधिक उसकी निरीहता और विवशता का लाभ उठाया।

'अतीत के चलचित्र' और 'स्मृति की रेखाएँ' में वर्णित पुरुष पात्रों के साथ भी महादेवी का आत्मीयता का सम्बन्ध रहा है। 'अतीत के चलचित्र' का प्रथम संस्मरण 'रामा' का चरित्र ही इस गद्यकृति की रचना का आधार बनाता है। रामा विमाता के अत्याचार से पीड़ित होकर बचपन में ही घर छोड़कर भाग आया था और महादेवी के घर में कई वर्षों तक उनके साथ रहा। रामा को वे इतना महत्वपूर्ण मानती थी कि "रामा के बिना भी संसार का काम चल सकता है, यह हम नहीं मान सकते थे।[69] रामा के संस्मरण के साथ महादेवी के बचपन की स्मृतियाँ इस प्रकार घुलमिल गई थीं। कि उन्हें रामा से अलग नहीं किया जा सकता है। रामा के विवरण में महादेवी के व्यक्तित्व के कई पहलू भी उजागर होते हैं। पुरुष पात्रों से सम्बन्धित द्वितीय संस्मरण 'घीसा' का है, जिसकी आज्ञाकारिता और गुरु के प्रति एकान्तनिष्ठा से वे अत्यधिक प्रभावित होती हैं और साथ ही उसके चित्रण के माध्यम से ग्रामीण समाज की परिवेशगत विशेषताओं कीं ओर भी हमारा ध्यान आकृष्ट करती हैं। जिस ग्रामीण के जीवन में दो वक्त की रोटी का प्रबन्ध भी मुश्किल काम हैं, वहाँ पर महादेवी जब बच्चों के लिए कपड़ों का प्रबन्ध किए बगैर उन्हें सफाई का महत्व समझाती हैं तो उनके उपदेश का बालक मन पर क्या प्रभाव पड़ता है, इसका निम्न पंक्तियों में कितना सजीव चित्र प्रस्तुत किया गया है- "दूसरे इतवार को सब जैसे के तैसे सामने ही थे-केवल कुछ गंगाजी में मुँह इस तरह धो आये थे कि मैल अनेक रेखाओं में विभक्त हो गया था, कुछ के हाथ पाँव ऐसे घिसे थे कि शेष मलिन शरीर के साथ वे अलग से जोड़े हुए से लगते थे और कुछ 'न रहेगा बांस न बजेगी बांसुरी' की कहावत चरितार्थ करने के लिए कीट से मैले, फटे-पुराने कुर्ते घर पर ही छोड़कर ऐसे अस्थिपंजरमय रूप में आ उपस्थित हुए थे। जिसमें उनके प्राण रहने का आश्चर्य है, गये अचम्भा कौन की घोषणा करते जान पड़ते थे।"[70] 9 साल का संकोची, विनम्र और आज्ञाकारी घीसा अपने गुरु को विदा स्वरूप देने के लिए अपने नए कुर्ते को गिरवी रखकर तरबूज ले आता है, महादेवी भाव विह्वल होकर कह उठती हैं-"उस तट पर किसी गुरु को किसी शिष्य से कभी ऐसी दक्षिणा मिली होगी, ऐसा मुझे विश्वास नहीं ; परन्तु उस दक्षिणा के सामने संसार में अब तक सारे आदान-प्रदान फीके जान पड़े।"[71] एक संस्मरण में महादेवी ने अन्धे अलोपीदीन का चित्रण किया है, जो अन्धा होने के बावजूद अपनी माँ को काम नहीं करने देता क्योंकि, "पुत्र को अच्छा नहीं लगता कि जवान बैठा रहे और बुढ़िया मर-मर कर कमावे।"[72] एक ओर शहर के सम्भ्रान्त परिवार के बच्चे हैं, जो अपनी माँ से छोटी-छोटी सुख-सुविधाओं के लिए झगड़ते रहते हैं, महादेवी स्वीकार करती हैं कि "जीवन से अनजान किशोरों की संख्या कम नहीं, जो सुख के साधनों के लिए उस माँ से झगड़ते हैं, जिसकी उंगुलियों के पोर सिलाई करते-

करते चलनी हो चुके हैं।"[73] एक काछिन अलोपी के लिए स्वर्ग की रचना करने को तैयार हो जाती हैं लेकिन छः महीने में ही उसका समस्त घन लेकर वह भाग जाती है लेकिन इसके बावजूद अलोपी पुलिस को खबर नहीं देता क्योंकि उसका मानना है कि हुलिया लिखवाकर पकड़ मंगाना नीच का काम है। "अपनी स्त्री की 'अतीत के चलचित्र' में पुरुष पात्रों से सम्बन्धित अंतिम संस्मरण में बदलू कुम्हार का चित्रण है, जो महादेवी से प्रोत्साहन पाकर कृष्ण, बुद्ध, सरस्वती आदि की सुन्दर मूर्तियाँ बनाने लगता है।

'स्मृति की रेखाएँ' के अन्तर्गत पुरुष पात्रों से सम्बन्धित प्रथम संस्मरण चीनी फेरीवाले का है, जिसकी करूण कथा ने महादेवी को इतना उद्वेलित किया कि वे आज भी उस चीनी और उसकी खोई हुई बहन को भुला नहीं सकी हैं। यद्यपि उस फेरी वाले ने चीनी, बर्मी, हिन्दी, अंग्रेजी के विचित्र सम्मिश्रण से तैयार जिस भाषा में अपनी जीवन कथा सुनाई उस भाषा से पूर्णतया परिचित न होने पर भी वे उसकी संवेदना को ग्रहण करने में पूरी तरह से समर्थ है। वे लिखती हैं कि "जो कथाएँ हृदय का बाँध तोड़कर दूसरों को अपना परिचय देने के लिए वह निकलती हैं, वे प्रायः करूण होती हैं और करूणा की भाषा शब्दहीन रहकर भी बोलने में समर्थ है।[75] चीनी फेरीवाले के जन्म के समय ही माँ की मृत्यु और फिर विमाता द्वारा किए गए अत्याचार मन में करूणा का संचार करते हैं। परन्तु पिता की असमय मृत्यु के पश्चात विमाता द्वारा बहन से वेश्यावृत्ति कराए जाने को देखकर मन में रोष की लहर उठना तो स्वाभाविक हो जाता है। चीनी बालक के स्नेह का एकमात्र सम्बल बहन के खो जाने पर तो जैसे उसके जीवन का आधार ही समाप्त हो जाता है और वह किसी प्रकार से भारत आकर वस्त्र बेचने का कार्य करने लगता है। उसकी दो ही इच्छायें शेष रह जाती हैं-1. ईमानदार बने रहने की । 2. बहिन को खोजने की। यद्यपि प्रारम्भ में उस चीनी द्वारा महादेवी के लिए 'सिस्टर' सम्बोधन महादेवी के मन में रोष के सबसे तुंग तुरंग उठा देता है क्योंकि महादेवी को ऐसा लगता है कि "यह विजातीय सम्बोधन मानों सारा परिचय छीनकर मुझे गाउन में खड़ा कर देता है।"[76] और महादेवी द्वारा यह कहने पर, कि "मैं विदेशी-फौरन नहीं खरीदती"[77] उस फेरी वाले के मन में उसके विस्मय के साथ उपेक्षा जनित चोट भी लगती है। लेकिन वाद में महादेवी का उसके साथ बहन जैसा मधुर सम्बन्ध जुड़ जाता है। चीनी फेरीवाले के संस्मरण द्वारा महादेवी ने समाज के उस घिनौने और कुत्सित रूप के दर्शन कराये हैं। जिसे देखकर मन वितृष्णा से भर उठता है। इस संस्मरण द्वारा मानव के अन्दर जीवने की अदम्य लालसा और विपरीत परिस्थितियों में भी संघर्ष करने की शक्ति का परिचय मिलता है। धनसिंह और जंगबहादुर के चित्रण द्वारा महादेवी ने पर्वतीय समाज के सहज, सरल और निश्छल और भोले-भाले व्यक्तियों से मिलवाया है। जो शिष्टता आज सभ्य समाज में दुर्लभ है, उसका स्वाभाविक रूप से निर्वाह इन दोनों भाईयों के आचरण में मिलता है। आधुनिक समाज में जहाँ बच्चे अपने माँ बाप की सेवा करने को भी तत्पर नहीं दिखाई पड़ते वहीं

पर्वतीय समाज में छोटा भाई बीमार पड़ने पर बड़े भाई से पैर नहीं दबवाता क्योंकि "बड़े भाई से पैर दबवाना उसे शिष्टाचार के विरुद्ध जान पड़े तो आश्चर्य नहीं।"[78] इसमें महादेवी ने शिक्षित और शहरी समाज की निर्मम मान्यताओं पर खुलकर प्रहार किया है। एक भाई के बीमार पड़ने पर जब महादेवी अपनी यात्रा उसके अच्छे होने तक के लिए स्थगित कर देती हैं तो उनके चेहरे पर जैसा भाव आता है, उसे देखकर उन्हें ग्लानि भी होती है, खिन्नता भी। वे लिखती हैं-"मनुष्य ने मनुष्य के प्रति अपने दुर्व्यवहार को इतना स्वाभाविक बना लिया है कि उसका अभाव विस्मय उत्पन्न करता है और उपस्थिति साधारण लगती है।"[79] 'स्मृति की रेखाएँ' के अन्तर्गत पुरुष पात्रों से सम्बन्धित अन्तिम संस्मरण ठकुरी बाबा का है जो कल्पवास के वक्त महादेवी के सम्पर्क में आए। इनके समूह में इनके अलावा उनकी वृद्धा मौसी, बेटी बेला, अन्धा दामाद, वृद्धा ठकुराइन, सहुआइन, विधुर काछी और ब्राह्मण दम्पत्ति आदि हैं। ठकुरी बाबा ग्रामीण समाज के सर्वाधिक सीधे, सच्चे, सरल और भावुक वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं, उनके साथ वर्तमान नागरिक समाज की तुलना करते हुए महादेवी लिखती हैं-"मैंने उनसे अधिक सहृदय व्यक्ति कम देखे हैं। यदि यह वृद्ध यहाँ न होकर हमारे बीच में होता, तो कैसा होता, यह प्रश्न भी मेरे मन में अनेक बार उठ चुका है, पर जीवन के अध्ययन ने मुझे बता दिया है कि इन दोनों समाजों का अन्तर मिटाना सहज नहीं। उनका बाह्य जीवन दीन है और हमार अन्तर्जीवन रिक्त। उस समाज में विकृतियाँ व्यक्तिगत हैं; पर सद्भाव सामूहिक रहते हैं। इसके विपरीत हमारी दुर्बलतायें समष्टिगत हैं, पर शक्ति वैयक्तिक मिलेगी।"[80] वर्तमान समाज में होने वाले कवि सम्मेलनों के प्रति महादेवी के मन में क्षोभ है। ठकुरीबाबा और उनकी भजनमंडली की तुलना विराट कवि सम्मेलन से करते हुए महादेवी लिखती हैं-"ग्रामीण समाज अपने रस समुद्र में व्यक्तिगत भेद बुद्धि और दुर्बलतायें सहज ही डुबो देता है, इसी से इस भाव स्नान के उपरान्त वह अधिक स्वस्थ रूप प्राप्त कर सकता है।

हमारे सभ्यता दर्पित शिष्ट समाज का काव्यानन्द छिछला और उसका लक्ष्य सस्ता मनोरंजन मात्र रहता है, इसी से उसमें सम्मिलित होने वालों की भेद बुद्धि एक दूसरे को नीचा दिखलाने के प्रयत्न और वैयक्तिक विषमतायें और अधिक विस्तार पा लेती हैं। एक वह हिंडोला है जिसमें ऊँचाई-नीचाई का स्पर्श भी एक आत्म विस्मृति में विश्राम देता है। दूसरा वह दंगल का मैदान है जिसका सम धरातल भी हारजीत के दाँव पेचों के कारण सतर्कता की भ्रान्ति उत्पन्न करता है।"[81]

'अतीत के चलचित्र' और 'स्मृति की रेखाएँ' की अन्तर्वस्तु पर दृष्टि डालने पर स्पष्ट होता है कि ये दोनों गद्य कृतियाँ पूर्णतया समाज केन्द्रित है। महादेवी के काव्य में पीड़ा का जो अथाह सागर लहराता दिखाई पड़ता है, वह गद्य साहित्य में दीन-हीन, दुखी सन्तप्त वर्ग की पीड़ा में परिवर्तित हो जाता है डा. प्रेमलता वर्मा अपने लेख में स्वीकार करती हैं कि "काव्यगत एकान्त कल्पना और आदर्श ने यहाँ ठोस वास्तविकता

और यथार्थ का रूप धारण कर लिया है-अपने कविरूप में वे जनजीवन से जितनी दूर रही हैं, गद्य में उतनी ही समीप हैं।''[82] इसमें महादेवी ने उन पात्रों को लिया है जो सामाजिक विषमता की पीड़ा से ग्रस्त अत्यन्त निराशाजनक परिस्थितियों में भी अपनी जीवनीशक्ति के सहारे निरन्तर संघर्ष कर रहे हैं। लेकिन इनके द्वारा लाख प्रयत्न करने पर भी समाज का उच्च वर्ग इन्हें ऊपर नहीं उठने देता। यद्यपि महादेवी पुरुष और नारी पात्र दोनों के प्रति ही अत्यधिक संवेदनशील रही हैं परन्तु समाज में स्त्रियों की हीन दशा देखकर उनका विद्रोही मन क्षुब्ध हो उठता है और वह कभी आक्रोश में भरकर पूरी सामाजिक व्यवस्था के विरुद्ध खड़ी दिखाई देती है; और कभी व्यंग्य पूर्ण कथनों द्वारा अपने अन्तर्मन पर की पीड़ा को अभिव्यक्त करती हैं। इस प्रकार इन रचनाओं के द्वारा महादेवी ने समाज की वैषम्य व्यवस्था पर कठोर प्रहार किए।

महादेवी के सभी नारी पात्र अशिक्षित, विनम्र, दलित एवं पिछड़े वर्ग से सम्बन्ध रखते हैं। ये सामाजिक तथा आर्थिक रूप से भी काफी निम्न है। परम्परागत संस्कारों और रीतिरिवाजों में बंधी ये नारियाँ अपनी सीमारेखा से बाहर आने को तैयार नहीं होती। उन्होंने नारी जीवन की समस्याओं का सैद्धान्तिक और व्यावहारिक दोनों ही दृष्टिकोण से विवेचन, विश्लेषण किया है। उन्होंने स्पष्टतः अनुभव किया कि नारी समाज में अपने परिवार में और स्वयं अपने द्वारा ही निरन्तर उपेक्षा का शिकार रही है। सभी प्रकार के सुखों से दूर विधवा भाभी की कारूणिक दिनचर्या, बिन्दा पर विमाता द्वारा किया जा रहा असहनीय अत्याचर, पति की उपेक्षा की शिकार सबिया, बिट्टो का अनमेल विवाह, पुरुष द्वारा छली गई बाल विधवा, आत्म सम्मान की रक्षा में लीन वेश्या पुत्री, भक्तिन की व्यथापूर्ण अतीत गाथा, मुन्नू की माँ की कठोर जीवनयात्रा, बिबिया का कारूणिक अन्त और गूँगी गुँगिया की निरीहता और विवशता ये सभी पात्र समाज में नारी की कारूणिक दशा का सजीव चित्र प्रस्तुत करते हैं। विधवा की हीन दशा ने महादेवी के मन को अत्यधिक द्रवित किया है। उसकी दशा का निम्न चित्र देखिए-''न इसे कहीं जाने देते हैं और न किसी को अपने घर आने देते हैं। केवल अमावस-पूनो एक ब्राह्मणी आती है; जिसे वे अपने आप खड़े रहकर सीधा दिलवा कर विदा कर देते हें।''[83] यदि विधवाओं के पुनर्विवाह द्वारा इस समस्या को सुलझाने का प्रयास भी किया जाय तो यह और भी दुष्कर हो जाता है क्योंकि समाज में विद्यमान योग्य पुरुष तो इसके लिए आगे नहीं आते और वृद्ध के साथ विवाह करने पर पुनः उसके विधवा होने की सम्भावना ही प्रबल हो जाती है। 'अतीत के चलचित्र' के एक पात्र बिट्टो के विवाह द्वारा इस समस्या को सुलझाने का प्रयास तो किया गया लेकिन चार वर्ष बाद ही वह वृद्ध मरणासन्न अवस्था में पहुँच जाते हैं। ऐसी स्थिति पर व्यंग्य करते हुए महादेवी लिखती हैं-''मनु महाराज जो कह गए हैं उसे असत्य प्रमाणित कर कुम्भीपाक में विहार करने की इच्छा न हो तो यह कहना ही पड़ेगा कि बिट्टो तीसरे विवाह की इच्छा को हृदय के किसी निभृत कोने में छिपाये हुए हैं और उसके उद्धार के लिए निरन्तर कटिबद्ध

वृद्ध परोपकारियों की इस पुण्यभूमि में और विशेषकर इस जाग्रत युग में कमी नहीं हो सकती।''[84] बाल विधवाओं से जुड़ी हुई समाज में विद्यमान एक अन्य समस्या की ओर भी महादेवी ने ध्यान आकृष्ट किया है। पुरुष द्वारा छली जाकर ये बाल विधवाएँ मातृत्व पद की अधिकारिणी बन जाती हैं। लेकिन समाज और परिवार वालों की नजरों में ऐसी अपराधिनी, जिसके अपराध को क्षमा भी नहीं किया जा सकता। इनके प्रति महादेवी के हृदय में गहन सहानुभूति है। वे लिखती हैं-''अपने अकाल वैधव्य के लिए वह दोषी नहीं ठहराई जा सकती, उसे किसी ने धोखा दिया, इसका उत्तर दायित्व भी उस पर नहीं रखा जा सकता, पर उसकी आत्मा का जो अंश, हृदय का जो खण्ड उसके सामने है, उसके जीवन-मरण के लिए केवल वही उत्तरदायी है। कोई पुरुष यदि उसको अपनी पत्नी नहीं स्वीकार करता तो केवल इसी मिथ्या के आधार पर वह अपने जीवन के इस सत्य को अपने बालक को अस्वीकार कर देगी? संसार में चाहे इसको कोई परिचयात्मक विशेषण न मिला हो, परन्तु अपने बालक के निकट तो वह गरिमामयी जननी की संज्ञा ही पाती रहेगी।''[85] वेश्यावृत्ति की समस्या का सारा उत्तरदायित्व महादेवी समाज पर ही डालती है क्योंकि समाज इन लोगों को सम्मान पूर्ण जीवन जीने के योग्य मानता ही नहीं है। एक बार वेश्या होने का जो ठप्पा (लेबल) उस पर लग गया, वह इस जनम में तो छूटने वाला नहीं, इसके लिए वह चाहे जितने प्रयत्न कर ले। ऐसी स्थिति का आक्रोश से भरा हुआ व्यंग्यपूर्ण चित्रण महादेवी की लेखनी से साकार हो उठा है-''यह अपने विद्रोही पति के साथ सती ही क्यों न हो जावे, परन्तु इसके रक्त के अणु-अणु में व्याप्त मलिन संस्कार कैसे धुल सकेगा? स्वेच्छाचार से उत्पन्न यह पवित्रता की साधना उस शूद्र की तपस्या के समान ही बेचारे समाज की वर्ण व्यवस्था का नाश कर रही है, जिसका मस्तक काटने के लिए स्वयं मर्यादा पुरुषोत्तम दौड़ पड़े थे।''[86] समाज में इतना अधिक उपेक्षित रहने पर भी महादेवी के नारी पात्र अपने परिवार वालों के लिए ममता की प्रतिमूर्ति बने रहते हैं, जो विपरीत परिस्थितियों के होने पर भी कर्तव्य से विमुख नहीं होते। सबिया पति के छोड़कर चले जाने पर उसकी अंधी माँ और बच्चों की देखभाल पूरी निष्ठा के साथ करती है। उसके लिए यह बात बिल्कुल महत्वहीन है कि दूसरे अपने कर्तव्यों को पूरा करते हैं या नहीं। महादेवी उसके सम्बन्ध में लिखती हैं कि ''इतने अंगारों से भरे जाने पर भी इसके वात्सल्य का अंचल दूसरों को छाया देने में समर्थ है। यह जैसे अपने नादान बच्चों के उत्पात की चिन्ता नहीं करती, उसी प्रकार पति की हृदयहीन कृतघ्नता, सपत्नी के अनुचित व्यंग्य और सास की अकारण भर्त्सना पर भी ध्यान नहीं देती। उसके निकट मानों सब बच्चे हैं, इसी से उनका कर्तव्य से जी चुराना उसे कर्तव्य विमूढ़ नहीं बनाता।''[87] महादेवी के नारी पात्रों का एक प्रमुख गुण उनका स्वावलम्बी होना भी है। ऐसी स्त्रियों को देखकर पुरुष वर्ग हीनता का अनुभव करता है और इन मिथ्या अभियोगों की झड़ी लगाकर अपने अहं की तुष्टि करता है। महादेवी के ये शब्द इस स्थिति का सटीक चित्र प्रस्तुत करते हैं कि -''इस तरह पग-पग पर पुरुष से सहायता की याचना न करने वाली स्त्री की स्थिति कुछ

विचित्र सी है। वह जितनी ही पहुँच के बाहर होती है, पुरुष उतना ही झुंझलाता है और प्रायः यह झुंझलाहट मिथ्या अभियोगों के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं।''[88] लेकिन स्त्री जाति पुरुष द्वारा लगाए गए इन मिथ्या अभियोगों से भयभीत नहीं है। उसकी आत्मशक्ति उसे निरन्तर संघर्ष करने की प्रेरणा देती रहती है। पुरुष का भी उसके जीवन में तब कोई स्थान नहीं रह जाता, जब स्वयं स्त्री ही उन्हें महत्व नहीं देती। महादेवी स्वीकार करती हैं कि ''स्त्री जब किसी साधना को अपना स्वभाव और किसी सत्य को अपनी आत्मा बना लेती है तब पुरुष उसके लिए न महत्व का विषय रह जाता है, न भय का कारण, इस सत्य को मान लेना पुरुष के लिए कभी संभव नहीं हो सका।''[89] महादेवी समाज में नारी की हीन दशा से निराश नहीं है। क्योंकि जब तक स्त्रियाँ संघर्ष करने के लिए प्रयत्नशील दिख रही है तब तक महादेवी के अन्तर्मन में भी आशा की किरणें झिलमिला रही हैं। वे लिखती हैं कि -''फिर भी स्त्री को हारा हुआ मेरा मन कैसे स्वीकार करे, जब तक उसके परिस्थितियों से चूर-चूर हृदय में भी आलोक की लौ जल रही है।''[90] इन पात्रों के साथ महादेवी निजता का सम्बन्ध जोड़ लेती हैं। इसी कारण वे इन पात्रों की व्यथा का तीव्र अनुभव करती हैं और उनका हृदय भी आर्त्त क्रन्दन कर उठता है। जब कोई दूसरा व्यक्ति इन पात्रों के विषय में कुछ बोलता है तो वह व्यंग्य से तिलमिला देने वाला जवाब दे बैठती हैं। एक सम्भ्रान्त महिला द्वारा सबिया को चोर पत्नी कहे जाने वह महादेवी लिखती हैं कि-''इसी सलज्ज और कर्तव्यनिष्ठ सबिया को लक्ष्य करके जब एक परिचित वकील पत्नी ने कहा-आप चोरों की पत्नी को नौकर रख लेती हैं? तब मेरा शीतल क्रोध उस जल के समान हो उठा, जिसकी तरलता के साथ मिट्टी ही नहीं, पत्थर तक काट देने वाली धार भी रहती हैं मुँह से अचानक निकल गया, यदि दूसरे के धन को किसी न किसी प्रकार अपना बना लेने का नाम चोरी है तो मैं जानना चाहती हूँ कि हम में से कौन सम्पन्न महिला चोर पत्नी नहीं कही जा सकती?''[91]

महादेवी के काव्य में प्रगतिशील तत्वों का जितना अभाव दृष्टिगोचर होता है, उनकी गद्य रचनाएँ प्रगतिशीलता के तत्वों के उतने ही उत्कृष्ट उदाहरण हैं। प्रगतिशील साहित्य में शोषित, उत्पीड़ित जन के प्रति मानवीय प्रेम और सहानुभूति का प्रदर्शन ही मुख्य है। महादेवी के संस्मरणात्मक साहित्य के प्रायः सभी पात्रों के चित्रांकन में यही विशेषता प्रमुख रही है। चाहे वह अहीरबाला भक्तिन हो, जिस पर ससुराल वालों ने अनेक अत्याचार किए। भक्तिन के संस्करण द्वारा महादेवी ग्रामीण समाज में विद्यमान अत्याचारी तत्वों को सामने भी लाई हैं और उनके प्रति विद्रोह भी व्यक्त किया हैं चीनी फेरी वाले की बहन का शोषण उसकी अपनी माँ द्वारा ही किया जाता है। धनिया और जंग बहादुर के माध्यम से महादेवी ने कुलियों की व्यवहार प्रियता और धनी वर्ग की स्वार्थपरता के विरोधी दृश्य द्वारा पूँजीगत बुराइयों को स्पष्ट किया है। महादेवी ने बूटा के माध्यम से ग्रामीण जीवन की गरीबी और साधुओं की नीचता भरी चालों का ज्ञान कराया है। ठकुरी बाबा के द्वारा ग्रामीण

जीवन की सरलता के चित्र प्रस्तुत किए हैं और उसके सामने शहरी जीवन को नगण्य माना है। बिबिया और गुँगिया तो नारी जीवन की त्रासदी के सजीव चित्र हैं लेकिन इसके साथ ही गुँगिया जैसी परिश्रम शील और निरीहमाता का दिल रखने के लिए दस रूपये भेजने वाले कल्पित पुत्र का मानवीय चित्र भी अंकित किया गया है। महादेवी ने अपने पात्रों के माध्यम से समाज में श्रम के महत्व को भी प्रतिपादित किया है और इनके सभी पात्र घोर परिश्रमशील तो हैं ही साथ ही सव्यता और ईमानदारी का गुण भी उनमें कूट-कूट कर भरा हुआ है। देशभक्ति का भाव भी इन पात्रों में विद्यमान है। चीन में युद्ध छिड़ने पर चीनी फेरी वाला चीन जाने को उद्यत हो उठता है। महादेवी द्वारा यह पूछने पर, उसे किसने बुलाया? वह उत्तर देता है-''हम कब बोला हमारा चाइना नहीं है? हम कब ऐसा बोला सिस्तर?''[92] इसके साथ ही महादेवी ने सामन्ती परिवारों में विद्यमान में विद्यमान निकृष्टता, साम्राज्यवादी तत्वों की पाशविकता, धनी और साधन सम्पन्न लोगों की दुष्प्रवृत्तियों तथा मानव स्वभाव में विद्यमान क्षुद्र दुर्बलताओं को भी अपने संस्मरणात्मक साहित्य में प्रश्रय दिया है। 'अतीत के चलचित्र' और 'स्मृति की रेखाएँ' महादेवी वर्मा के लोक जीवन के प्रति अमिट स्नेह और अगाध आकर्षण को व्यक्त करते हैं। इन कृतियों में जीवन और जगत की बहुरंगी झांकियाँ मिलती हैं। कहीं पर महादेवी ने साहित्य और मनोविज्ञान धर्म और दर्शन, संस्कृति और शिक्षा जैसे विषयों पर गम्भीर, मौलिक विचार प्रस्तुत किये हैं तो कहीं पर गाँव में होने वाले तीज त्यौहार, रीति रिवाज एवं परम्परायें और मेला-दशहरा जैसे सामान्य विषयों पर भी अपनी लेखनी चलाई है। महादेवी ग्रामीण समाज के निम्न वर्ग के पात्रों के मध्य शिक्षा के प्रचार-प्रसार के लिए निरन्तर प्रयासरत् रही हैं। इसी सन्दर्भ में एक गाँव में उन्होंने स्कूल खोलने के लिए वर्षा से निरन्तर जर्जर होते जा रहे खण्डहर को उसके स्वामी श्री गोपालशरण सिंह से मांगा किन्तु जब उनके दृष्टिक्षेत्र में महादेवी के उपयोगितावाद का कोई विशेष महत्व नहीं ठहरा तो उन्हें ग्लानि भी हुई और उनका मन आक्रोश से भर उठा। किसी के द्वारा यह पूछने पर कि उसका स्कूल कब खुलेगा तो वे आक्रोश मिश्रित करूणा से अपने ही उच्च वर्ग पर चोट करती हुई लिखती हैं-''अरे अभागे! तुमहारा गाँव जरायम पेशा है, तुम्हारे बाप-दादा ने अपना जीवन नष्ट करके इसके लिए यह ख्याति कमाई है। तुम जुआ खेलो, चोरी सीखो पर भले आदमियों के अधिकार में हस्तक्षेप करने का दुस्साहस न करो।''[93] स्पष्ट है कि काव्यजगत की भावुक कवयित्री ने अपने संस्मरणात्मक साहित्य में आत्मपीड़ा से उन्मुक्त होकर, युग सापेक्ष्य, गतिवाद रूप स्वीकार कर लिया है और उनका कलाकार मन युगों-युगों से उत्पीड़ित और तिरस्कृत मानवता की वकालत के लिए हठपूर्वक खड़ा हो गया है। महादेवी के संस्मरणात्मक साहित्य के सम्बन्ध में 'साहित्य संदेश' में छपी यह टिप्पणी निश्चय ही सारगर्भित है-''अतीत के चलचित्र' और 'स्मृति की रेखाएँ' इसी वेदना-विदग्ध, आलोड़न से उत्पन्न अमर भाव-बिन्दु है, जो पूरी शक्ति से मर्म पर चोट करते हैं। इन ललनाओं की अलक-पलकों पर जो वेदना और परवशता के अश्रु संचित हैं, वह पुरुष समाज की निष्ठुरता और ह्रदय हीनता के ऐसे रक्त कण हैं जो हिन्दू धर्म के रूढ़िग्रस्त-अमंगलकारी तत्वों के चिर प्रतीक हैं।''[94]

महादेवी का निबन्ध लेखन-

'निबन्ध' को प्रायः अंग्रेजी शब्द 'Essay' का पर्याय माना जाता है लेकिन महादेवी इस मत को स्वीकार नहीं करती क्योंकि 'Essay' शब्द का जन्म फ्रांसीसी शब्द 'एसाई' से हुआ है, जिसका अर्थ किसी विषय पर गद्य में सहज, लघु और मुक्त साहित्यिक रचना है जबकि 'निबन्ध' शब्द नि+बंध+ल्युट प्रत्यय से बना है, जिसके नाम में ही बंधन का संकेत मिलता है। इसमें किसी विषय पर सीमित विचारों को क्रमबद्ध रूप में प्रस्तुत किया जाता है। महादेवी ने प्रत्येक निबन्ध में लेखक के भावों, विचारों, निजता तथा निरीक्षण प्रवृत्ति का समावेश होना आवश्यक माना है। यद्यपि निबन्ध भी कई प्रकार के होते हैं। लेकिन महादेवी का मानना है कि यह लगभग मुश्किल होता है कि भावात्मक निबन्धों में विचारों का स्थान न रहे या वर्णनात्मक निबन्धों में भावों का अभाव प्रतिबिम्बित हो। इसका कारण वे मानसिक प्रक्रिया को मानती है, वे लिखती हैं -"संभवतः इसका कारण मनुष्य का वह मानसिक गठन है, जिसमें एक प्रवृत्ति के प्रधान हो जाने पर भी अन्य प्रवृत्तियाँ गौण रहकर उसमें सहयोग करती रहती हैं।"[95] प्रारम्भ में निबन्ध का तात्पर्य केवल साहित्यिक निबन्धों से लिया जाता है लेकिन वर्तमान समय में ज्ञान-विज्ञान का इतना अधिक विस्तार हो चुका है कि नवीन तथ्यों को प्रकाश में लाने के लिए निबन्ध विधा का उपयोग सभी क्षेत्रों में हो रहा है। निबन्ध का एक प्रकार ललित निबन्ध है जिसमें विषय का सहज रूप से स्वच्छन्दता के साथ मनोरम वर्णन किया जाता है। आधुनिक युग में आलोचना के अनेक आयाम विकसित होने पर निबन्धों का एक प्रकार आलोचनात्मक निबन्ध के नाम से जाना जाता है, जिसमें विषय के विवेचन के साथ-साथ मनोविज्ञान की भी सहायता ली जाती है। महादेवी ने निबन्ध के उपर्युक्त तीनों प्रकारों को अपनी लेखनी के माध्यम से समृद्ध किया है। उनके विचारात्मक निबन्धों का संग्रह 'शृंखला की कड़ियाँ', आलोचनात्मक निबन्धों का संग्रह 'साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध' और 'क्षणदा' में ललित निबन्ध संकलित हैं महादेवी अपने निबन्धों का गहन अध्ययन और अध्यापन के परिणामस्वरूप उत्पन्न मानती हैं। निबन्धों में उन्होंने अपने विचारों को क्रमबद्ध और तार्किक ढंग से प्रस्तुत किया है। आधुनिक युग के अधिकांश विद्वान कविता और गद्य इन दो भिन्न विधाओं मे कथ्य का अन्तर स्वीकार नहीं करते लेकिन महादेवी का मानना है-"मेरे लिए एक ही सत्य या तथ्य को व्यक्त करने के लिए स्वीकृत विधाएँ भिन्न हो जाती हैं। इसी से गीत और निबन्ध में दो तटों का सा अंतर पड़ता है, किन्तु वे दूर रहकर भी एक ही नदी को जोड़े रहते हैं। गीत में प्रयास नहीं है, क्योंकि वह क्षणों की संवेदनीयता है। इसके विपरीत निबंध में वैचारिक संगुफन अधिक समय तथा आयास चाहता है।"[96]

कविता में जो कुछ 'अनकहा' रह गया है, उसे उन्होंने अन्य विविध विधाओं के माध्यम से व्यक्त किया है। महादेवी की कविता शुद्ध छायावादी कविता है, जिसमें उनके हृदयगत भावों की प्रधानता है लेकिन

उनके गद्य में, विशेष रूप से निबन्ध में बुद्धि को प्रधानता मिली है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का निम्न कथन महादेवी पर पूर्णतया चरितार्थ होता है-"यात्रा में निकलती रही है बुद्धि, पर हृदय को साथ लेकर।"[97] महादेवी के प्रायः सभी निबन्धों में भाव और विचार का यही समन्वय देखने को मिलता है।

महादेवी का सर्वप्रथम विचारोत्तेजक निबन्ध 'शृंखला की कड़ियाँ' है, जिसका प्रकाश सन् 1942 में हुआ। 'शृंखला की कड़ियाँ' की रचना का मूल कारण समाज में नारी के प्रति होने वाले कठोर अत्याचार हैं, जिन्होंने महादेवी को इतना उद्वेलित कर दिया कि अपनी लेखनी के माध्यम से उन्होंने अपने विचारों को निबन्ध रूप में प्रस्तुत किया। इसमें 'जन्म से अभिशप्त, जीवन से संतप्त किन्तु अक्षय वात्सल्य, वरदानमयी भारतीय नारी'[98] की विषम परिस्थितियों को उजागर किया गया है। इसमें महादेवी ने प्राचीन, मध्य एवं आधुनिक नारी की सामाजिक स्थिति में आए हुए परिवर्तनों का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है और साथ ही उनकी समस्याओं का समूल नाश करने का प्रयत्न किया गया है। अन्याय को ही अपने भाग्य के रूप में स्वीकार करने वाली भारतीय नारी की अंतर्निहित शक्तियों को भी जाग्रत करने में वे संकल्पबद्ध दिखाई पड़ती हैं। उन्होंने स्वीकार किया है-"अन्याय के प्रति मैं स्वभाव से असहिष्णु हूँ, अतः इन निबन्धों में उग्रता की गन्ध स्वाभाविक है, परन्तु ध्वंस के लिए ध्वंस के सिद्धान्त में मेरा कभी विश्वास नहीं रहा। मैं तो सृजन के उन प्रकाश तत्वों के प्रति निष्ठावान हूँ जिनकी उपस्थिति में विकृति अन्धकार के समान विलीन हो जाती है।"[99] इस उद्धरण से महादेवी के चरित्र की दो विशेषतायें दृष्टिगत होती है।-1. अन्याय के प्रति सहिष्णु न होना, 2. ध्वंसं के स्थान पर निर्माण के लिए प्रयत्नशील रहना। महादेवी ने अपने इन निबन्धों में ऐसी नारी की कामना की है जो भारतीय सभ्यता और संस्कृति की प्रतीक हो और पुरुष के समकक्ष कन्धे से कन्धा मिलाकर खड़ी हो सके। इन निबन्धों में संभवतः पहली बार नारी की समस्याओं को एक नारी के दृष्टिकोण से देखने का प्रयास हुआ है। गंगा प्रसाद पाण्डेय का विचार है-"शृंखला की कड़ियाँ में नारी जीवन के उन अभिशापों का उद्घाटन किया गया है, जिन्होंने नारी जाति को युगों से मानवता का कलंक बना रखा है। साथ ही उसकी मुक्ति के साधनों का भी सुझाव दिया गया है।"[100]

'शृंखला की कड़ियाँ' के अन्तर्गत प्रथम निबन्ध 'हमारी शृंखला की कड़ियाँ' में महादेवी ने वैदिक काल की मैत्रयी, यशोधरा, सीता आदि के उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया है कि प्राचीनकाल में स्त्रियाँ पुरुषों की छायामात्र नहीं थी, वरन् सही अर्थों में उनकी जीवन संगिनी की भूमिका का निर्वाह करती थी। परन्तु वर्तमान समाज में वे दो प्रकार की स्त्रियाँ पाती हैं- एक वे जो अपने व्यक्तित्व के स्वतन्त्र विकास से अनभिज्ञ हैं, और दूसरी वे जो पुरुषों का अन्धानुसरण करते हुए उनके गुणावगुणों को स्वीकार कर रही हैं। ये स्त्रियाँ यह भूल गई हैं कि स्त्री-पुरुष में एक मौलिक अन्तर है। वे लिखती हैं कि "पुरुष समाज का न्याय है, स्त्री दया, पुरुष

स्थिति एक भिक्षुक के समान हो जाती है और पति के घर में भी यदि वह उसकी इच्छानुसार नहीं चलती तो केवल उसकी वासना की संतुष्टि ही उसका धर्म रह जाता है। नारी को न तो कभी पिता के घर में और न कभी पति के घर में वह स्थान प्राप्त हुआ जिसकी वह अधिकारिणी है। वे लिखती हैं कि "अपने पितृ गृह में उसे वैसा ही स्थान मिलता है, जैसा किसी दुकान में उस वस्तु को प्राप्त होता है, जिसके रखने और बेचने दोनों में ही दुकानदार को हानि की सम्भावना रहती है।"[105] पति गृह "जहाँ इस उपेक्षित प्राणी को जीवन का शेष भाग व्यतीत करना पड़ता है, अधिकार में उससे कुछ अधिक, परन्तु सहानुभूति में उससे बहुत कम है, इससे सन्देह नहीं।"[106] ये दोनों कथन परिवार में नारी की दयनीय दशा का वास्तविक चित्र प्रस्तुत करते हैं। वे नारी को ऐसी बन्दिनी मानती हैं, जिसके लिए स्वतन्त्रता का विचार भी पाप है।

'आधुनिक नारी उसकी स्थिति पर एक दृष्टि' में उन्होंने आधुनिक नारी के सम्बन्ध में अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट किया है। आधुनिक नारी ने व्यक्तित्व को गरिमामय बनाने वाले गुणों का समूल नाश करने का प्रयत्न किया, जिसका सर्वोत्कृष्ट उदाहरण पश्चिम की नारी है, जिन्होंने आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली, सामाजिक बन्धनों को भी तोड़ दिया लेकिन पुरुष पर उनकी निर्भरता कम नहीं हुई और पुरुष द्वारा की गई उपेक्षा को वे बर्दाश्त नहीं कर सकी। उन्हीं का अनुकरण भारत की नारी ने किया लेकिन महादेवी मानती हैं कि 'उसकी भी प्रकृति जन्य कोमलता अस्ति-नास्ति के बीच में डगमगाती रही।"[107] आधुनिकता के वातावरण में विकसित नारी की कठिनाइयाँ तो और भी सघन हैं क्योंकि महादेवी का मानना है कि प्राचीन विचारों का उपासक पुरुष समाज अवहेला की दृष्टि से देखता है, आधुनिक दृष्टिकोण वाले समर्थन का भाव रखते हुए भी क्रियात्मक सहायता देने में असमर्थ रहते हैं और उग्र विचार वाले प्रोत्साहन देकर भी उन्हें अपने साथ ले चलना कठिन समझते हैं। वस्तुतः आधुनिक स्त्री जितनी अकेली है, उतनी प्राचीन नहीं; क्योंकि उसके पास निर्माण के उपकरण मात्र हैं, कुछ भी निर्मित नहीं।"[108]

महादेवी मानती हैं कि राष्ट्रीय आन्दोलन के समय आधुनिक नारी ने जो त्याग और बलिदान किए, वे अविस्मरणीय हैं, लेकिन अपनी सुकोमल कला और भावुकता का नाश करके उन्होंने अपनी परम्पराओं के प्रति जो विद्रोह किया उसने समाज में उनकी स्थिति को संदिग्ध बना दिया। स्पष्ट है कि आधुनिक नारी द्वारा की जा रही गलतियों से वे आँख बन्द नहीं किए हुए हैं, वरन् उन्हें बराबर आगाह भी करती जाती हैं।

'घर और बाहर' शीर्षक के अन्दर महादेवी ने स्त्रियों की इस उहापोह भरी स्थिति का साकार चित्र प्रस्तुत किया है, जिसमें यदि वे बाहर कार्य करती हैं तो घर उपेक्षित हो जाता है और स्वयं को यदि घर तक सीमित रखती हैं तो उनकी प्रतिभा का समुचित उपयोग नहीं हो पाता। इसलिए उनके सुनहले भविष्य के लिए यह आवश्यक है कि वह घर-बाहर में सामंजस्य बनाए। वे लिखती हैं कि 'उसके घर और बाहर में ऐसा

सामंजस्य स्थापित हो सके जो उसके कर्तवय को केवल घर या केवल बाहर ही सीमित न कर दे।''[109] स्त्रियों की प्रतिभा के पूर्ण विकास के लिए महादेवी कुछ क्षेत्रों की ओर ध्यान आकृष्ट करती हैं, जिनमें शिक्षा, चिकित्सा, कानून, साहित्य तथा बाल साहित्य प्रमुख हैं। महादेवी स्पष्ट करती हैं कि स्त्री तथा बालकों के लिए उपयोगी संस्थाओं की स्थापना, स्त्रियों में संगठन की प्रवृत्ति जाग्रत करना तथा उन्हें सामयिक स्थिति की जानकारी देना आदि अनेक ऐसे कार्य हैं जिन्हें स्त्रियाँ अपने पारिवारिक उत्तरदायित्वों को पूरा करते हुए सभी कर सकती है। आवश्यकता है तो केवल पुरुष के सहयोग की। वे लिखती हैं कि ''यदि पुरुष पंख काटकर सोने के पिंजरे में बन्द पक्षी के समान स्त्री को अपने प्रतिष्ठा की बन्दिनी न बनावे। यदि विवाह सार्वजनिक जीवन से निर्वासन न बने तो निश्चय ही स्त्री इतनी दयनीय न रह सकेगी। घर से बाहर भी अपनी रूचि, शिक्षा और अवकाश के अनुरूप जो कुछ वह करना चाहे उसमें उसे पुरुष के सहयोग और सहानुभूति की अवश्य ही अपेक्षा रहेगी और पुरुष यदि अपनी वंशक्रमागत अधिकार युक्त अनुदार भावना को छोड़ सकेतो बहुत सी कठिनाइयाँ स्वयं ही दूर हो जावेंगी।''[109]

'हिन्दू स्त्री का पत्नीत्व' शीर्षक में उन्होंने स्त्रियों की दयनीय और विवशता पूर्ण सामाजिक स्थिति का गहराई से विचार किया है और स्वीकार किया है कि भारतीय समाज में कन्या का जन्म ही विवाह के बाजार में बिकने के लिए हुआ है तथा उसके दो ही कर्तव्य माने गये हैं - पत्नीत्व तथा मातृत्व। सबसे बड़ी विवशता यह है कि विवाह भी स्वेच्छा से नहीं, वरन् आर्थिक कठिनाइयों का समाधान प्रमुख कारक है। महादेवी लिखती हैं कि स्वाभाविक रूप से विवाह में किसी व्यक्ति के साहचर्य की इच्छा प्रधान होनी चाहिये। आर्थिक कठिनाइयों की विवशता नहीं।''[111] भारतीय पुरुष के लिए विवाह की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए वे लिखती हैं-'इस समय तो भारतीय पुरुष जैसे अपने मनोरंजन के लिए रंग-बिरंगे पक्षी पाल लेता है; उपयोग के लिए गाय या घोड़ा पाल लेता है, उसी प्रकार वह एक स्त्री को भी पालता है तथा अपने पालित पशु-पक्षियों के समान ही वह उसके शरीर और मन पर अपना अधिकार समझता है। हमारे समाज के पुरुष के विवेकहीन जीवन का सजीव चित्र देखना हो तो विवाह के समय गुलाब सी खिली हुई स्वस्थ बालिका को पाँच वर्ष बाद देखिए। उस समय उस असमय प्रौढ़ा, कई दुर्बल सन्तानों की रोगिनी पीली माता में कौन-सी विवशता कौन-सी रुला देने वाली करूणा न मिलेगी।''[112] महादेवी स्त्री के लिए स्वावलम्बन को आवश्यक मानते हुए कन्या के माता-पिता को यह सलाह देती हैं कि -''माता-पिता को बाध्य होना चाहिये कि वे अपनी कन्याओं की अपनी-अपनी रूचि तथा शक्ति के अनुसार कला, व्यवसाय आदि की ऐसी शिक्षा पाने दें, जिससे उनकी शक्तियाँ भी विकसित हो सके और वे इच्छा तथा आवश्यकतानुसार अन्य क्षेत्रों में कार्य भी कर सकें।''[113]

'जीवन का व्यवसाय' शीर्षक में महादेवी ने स्त्रियों में उपेक्षित एक अन्य वर्ग वारांगनाओं की समस्याओं का विवेचन किया है तथा पुरुष समाज को ही वेश्याओं द्वारा रूप की हाट लगाने का उत्तरदायी माना है, जो अपने लिए सस्ते मनोरंजन की पूर्ति वेश्याओं के माध्यम से करता है। यदि वेश्याओं के जीवन पर दृष्टिपात किया जाय तो महादेवी का मानना है कि निश्चय ही देखने वाला काँप उठेगा। उसके हृदय में प्यास है, परन्तु उसे भाग्य ने मृगमरीचिका में निर्वासित कर दिया है। उसे जीवनभर आदि से अन्त तक सौन्दर्य की हाट लगानी पड़ी, अपने हृदय की समस्त कोमल भावनाओं को कुचलकर, आत्मसमर्पण की सारी इच्छाओं का गला घोंटकर, रूप का क्रय विक्रय करना पड़ा- और परिणाम में उसके हाथ आया-निराश हताश एकाकी अन्त।''[114] पुरुष की स्वार्थी प्रवृत्ति की ओर संकेत करते हुए वे स्वीकार करती हैं कि पुरुष ने अपनी वासनाग्नि की संतुष्टि के लिए कुछ स्त्रियों को इस पद पर रख दिया और उन स्त्रियों को समाज से बहिष्कृत कर दिया तथा यह प्रचारित किया कि वे स्वेच्छा से यह कार्य कर रही हैं। अतः समाज की उनसे कोई सहानुभूति भी नहीं है। महादेवी समाज के कथित ठेकेदारों के सामने यह प्रश्न रखती है कि क्या समान परिस्थितियों में समाज किसी पुरुष का चारित्रिक पतन होने पर उससे सामाजिकता का अधिकार छीन लेगा? निश्चय ही समाज ऐसा नहीं करेगा। पुरुषों को वही मान सम्मान प्राप्त होता रहता है। इस निबन्ध के द्वारा महादेवी ऐसी स्त्रियों के करूण और विवशतापूर्ण जीवन पर गम्भीर आक्रोश व्यक्त करती हैं।

'स्त्री के अर्थ-स्वातन्त्रय का प्रश्न' शीर्षक में महादेवी ने स्त्रियों की आर्थिक परवशता को अपना लक्ष्य बनाया है। प्राचीन समाज में इस समस्या के समाधान के लिए ही विवाह की आवश्यकता को अनिवार्य बताते हुए वे लिखती हैं कि ''भारतीय स्त्री के सम्बन्ध में पुरुष का भर्ता नाम जितना यथार्थ है उतना सम्भवतः और कोई नाम नहीं। स्त्री पुत्री, पत्नी, माता आदि सभी रूपों में आर्थिक दृष्टि से कितनी परमुखापेक्षिणी रहती हैं, यह कौन नहीं जानता।''[115] यद्यपि आधुनिक नारी ने आर्थिक परवशता को दूर करने के लिए प्राचीन सामाजिक बन्धनों को तोड़ने का प्रयास तो आरम्भ किया है लेकिन केवल कुछ स्त्रियों का प्रयास ही पर्याप्त नहीं वरन् आवश्यकता है-सम्पूर्ण नारी समाज के जागृत होने की। इस सम्बन्ध में समाज के उत्तरदायित्व की ओर संकेत करते हुए तथा उसे चेतावनी देते हुए वे लिखती हैं-'समाज यदि स्वेच्छा से उनके अर्थ सम्बन्धी वैषम्य की ओर ध्यान न दे, उसमें परिवर्तन या संशोधन को आवश्यक न समझे तो स्त्री का विद्रोह दिशा हीन आँधी जैसा वेग पकड़ता जाएगा और तब एक निरन्तर ध्वंस के अतिरिक्त समाज उससे कुछ न पा सकेगा।''[116]

'हमारी समस्यायें' शीर्षक में महादेवी ने शिक्षित और अशिक्षित महिला वर्ग में विद्यमान अन्तर का विवेचन करते हुए शिक्षित महिलाओं पर ही समाज की अशिक्षित बालिकाओं और युवाओं को अच्छे संस्कार

और अच्छी शिक्षा देने का गुरु कर्तव्य डाला है। समाज में विद्यमान कुछ शिक्षित महिलाओं द्वारा स्वतन्त्रता को उच्छृंखलता के रूप में लेने को वे अनुचित बताती हैं तथा उनसे वे पुरुषों के समान हृदयहीन कठोरता को छोड़कर अपने समाज की दयनीयता को समाप्त करने का आग्रह करती हैं। महादेवी का मानना है—'ज्ञान के वास्तविक अर्थ में ज्ञानी, शिक्षा के सत्य अर्थ में शिक्षित वही व्यक्ति कहा जाएगा, जिसने अपनी संकीर्ण सीमा को विस्तृत, अपने संकीर्ण दृष्टिकोण को व्यापक बना लिया है।'[117]

'समाज और व्यक्ति' में महादेवी ने आदिकाल से ही व्यक्ति द्वारा समाज की आवश्यकता के कारणों का विश्लेषण करते हुए आधुनिक समाज की विशेषताओं पर भी प्रचुर प्रकाश डाला है। समाज को परिभाषित करते हुए वे लिखती हैं—'समाज ऐसे व्यक्तियों का समूह है जिन्होंने व्यक्तिगत स्वार्थों की सार्वजनिक रक्षा के लिए अपने विषम आचरणों में साम्य उत्पन्न करने वाले कुछ सामान्य नियमों से शासित होने का समझौता कर लिया है।'[118] वे मानती हैं कि समाज की रचना पारस्परिक सद्भाव, स्नेह तथा स्वजाति के हितों की रक्षा तथा विजाति से युद्ध के समय शक्ति को संगठित करने के उद्देश्य से हुई है। समाज और व्यक्ति परस्पर सापेक्ष हैं, वे लिखती है कि "व्यक्ति के स्वत्वों की रक्षा के लिए समाज बना है और समाज के अस्तित्व के लिए व्यक्ति की आवश्यकता रहती है।"[119] समाज के लिए शारीरिक और मानसिक विकास में भिन्न होने पर भी सभी व्यक्ति समान रूप से उपयोगी है तथा समाज भी अपनी पूर्णता के लिए सभी व्यक्तियों को उनकी शक्ति तथा योग्यता के अनुसार कार्य देकर उन्हें जीवन की सुविधाएँ प्रदान करता है।

'जीने की कला' शार्षक के अन्तर्गत महादेवी ने स्वीकार किया है कि भारतीय स्त्रियों को जीने की कला ही नहीं आती, इसीलिए समाज में उनकी स्थिति शव के समान है। जिस प्रकार शव किसी भी प्रकार का अपमान किए जाने पर विरोध प्रदर्शित नहीं करता, वैसी ही स्थिति नारी की है। वे लिखती हैं कि "आज हिन्दू स्त्री भी शव के समान निस्पन्द है। संस्कारों ने उसे पक्षाघात के रोगी के समान जड़ कर दिया है, अतः अपने सुख-दुख को चेष्टा द्वारा प्रकट करने में भी वह असमर्थ है।[120] यद्यपि जीवन का पूर्ण रूप से विकास करने वाले सिद्धान्तों से वह परिचित है लेकिन वह न तो उनका उचित उपयोग करती है और न ही उनका अर्थ समझती है। इसीलिए 'जीवन और सिद्धान्त दोनों ही भार होकर उसे वैसे ही संज्ञाहीन किए दे रहे हैं; जैसे ग्रीष्म की कड़ी धूप में शीतकाल के भारी और गर्म वस्त्र पहिने हुए पथिक को उसका परिधान।[121] नारी के लिए विद्या भी केवल विवाह के बाजार में उसका मूल्य बढ़ाने के लिए है। लेकिन इसका उत्तरदायित्व भी नारियों पर ही है। महादेवी नारियों को उनकी अन्तर्मुखी ओर बहिर्मुखी शक्तियों का पूर्ण विकास करने के लिए प्रेरित करती है। उन्होंने स्वीकार किया—कि "जीवन का चित्र केवल काल्पनिक स्वर्ग में विचरण करना नहीं है, किन्तु संसार के कण्टकाकीर्ण पथ को प्रशस्त बनाना भी है। जब तक बाह्य तथा आन्तरिक विकास सापेक्ष नहीं बनते; हम जीना नहीं जान सकते।"[122]

इन निबन्धों के द्वारा महादेवी ने नारी की समस्याओं का गंभीर विश्लेषण किया है। उन्होंने अपनी लेखनी से समाज पर जो इतना क्षोभ, इतना तीखापन और तीव्र प्रहार किये हैं, उसे उन्होंने अपने अनुभवों द्वारा व्यक्त किया है। इन निबन्धों में धनी, निर्धन, उच्च, मध्यम, निम्न तथा परम्परागत और आधुनिक नारी की समस्याओं को आकार प्रदान किया गया है। नारी को बंधन में बांधने वाली बेड़ियाँ ही उसके शारीरिक एवं मानसिक विकास को अवरुद्ध किए हुए है। नारी न तो जय की आकांक्षी है और न ही पराजय की। वह तो केवल अपना 'स्वत्व' चाहती है और वह भी समाज उसे देने को तैयार नहीं है। इसका प्रमुख कारण महादेवी ने आर्थिक परतन्त्रता को माना है क्योंकि उसकी आर्थिक विषमता का लाभ ही समाज ने सबसे ज्यादा उठाया है लेकिन नारी के लिए विभिन्न कार्यक्षेत्रों को अपनाना ही पर्याप्त नहीं है वरन् समाज में समन्वय बनाए रखने के लिए वे स्त्री-पुरुष की पारस्परिक सापेक्षता को अनिवार्य मानती हैं।

महादेवी की मर्मभेदिनी दृष्टि ने नारी जीवन का चित्रांकन बड़ी बारीकी से किया है। सामाजिक जीवन की गहरी पर्तों के आरपार उन्होंने दृष्टि डाली है और गम्भीरता पूर्वक नारी की सामाजिक स्थिति का मूल्यांकन करके पूरे साहित्यिक कौशल के साथ उसका चित्रण किया है। समाज में उच्च आसन पर पुरुषों को बिठाए जाने को वे अनुचित मानती है। नारी केवल पुरुष की छाया मात्र है और पुरुष के न रहने पर उसका भी अस्तित्व नहीं रहता। समाज में स्त्री की दशा का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करते हुए वे लिखती हैं कि "स्त्री-पुरुष के वैभव की प्रदर्शिनी मात्र समझी जाती है और बालक के न रहने पर जैसे उसके खिलौने निर्दिष्ट स्थानों से उठाकर फेक दिए जाते हैं, उसी प्रकार एक पुरुष के न रहने पर उसका कोई उपयोग नहीं रह जाता है।"[123] अकाल वैधव्य के बाद नारी की जैसी स्थिति हो जाती है, उसे देखकर तो पाठक का मन समाज के प्रति तीव्र आक्रोश और घृणा से भर जाता है। माहदेवी समाज को इस बात का अल्टीमेटम देती हैं कि—"समाज को किसी न किसी दिन स्त्री के असन्तोष को सहानुभूति के साथ समझकर उसे ऐसा उत्तर देना होगा, जिसे पाकर वह अपने आपको उपेक्षित न माने और जो अपन मातृत्व के गौरव को अक्षुण्ण बनाये रखकर उसे नवीन युग की सन्देशवाहिका बना सकने में समर्थ हो।"[124] युगचेतना से अनुप्राणित यह महादेवी की विद्रोही वाणी है जो अपने में करोड़ों बिजलियों से भी अधिक तीव्र आवेग को समाये हुए हैं। महादेवी ने वेश्याओं की पीड़ा को भी पूरी शिद्दत से महसूस किया है। समाज उनको बाध्य करता है कि वे इस व्यवसाय को स्वीकार करें और उनके लिए इसे अपनाना हत्या करने के समान है। महादेवी लिखती है—ऐसे सजीव व्यक्ति को एक ऐसे गर्हित व्यवसाय के लिए बाध्य करना, जिसमें उसे जीवन के आदि से अन्त तक उमड़ते हुए आँसुओं को अंजन से छिपाकर सूखे हुए अधरों को मुस्कराहट से सजाकर और प्राणों के क्रन्दन को कण्ठ में ही फंसाकर धातु के कुछ टुकड़ों के लिए अपने आपको बेचना होता है, हत्या के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।"[125] इस

प्रकार की उद्भावना एक ओर समाज में वेश्याओं के मृतवत् जीवन का चित्रण करती है और दूसरी ओर पाठकों के अवचेतन मन को झकझोर देती है। यद्यपि वेश्या वृत्ति को गैर कानूनी घोषित कर दिया गया है लेकिन समाज में आज भी वेश्याओं का होना इस बात की स्पष्ट घोषणा है कि जब तक वेश्याओं का अस्तित्व है, तब तक समाज नैतिकता का दावा नहीं कर सकता।

यद्यपि वर्तमान समाज में नारी पर होने वाले अत्याचारों के स्वरूप में काफी अन्तर आ गया है, लेकिन इसका समूल नाश होना आवश्यक है। इसके लिए समाज और नारी वर्ग के मध्य निरन्तर द्वन्द्व होता रहेगा। भारतीय नारी की हीन दशा के सम्बन्ध में महादेवी निराश नहीं थी। उन्होंने लिखा है कि—"भारतीय नारी भी जिस दिन अपने सम्पूर्ण प्राण प्रवेग से जाग सके, उस दिन उसकी गति रोकना किसी के लिए सम्भव नहीं।"[126] श्री गंगा प्रसाद पाण्डेय ने 'शृंखला की कड़ियाँ' के विषय में लिखा है—"अपने व्यंग्य की मर्मान्तिक झड़ियों से ही वे सामाजिक व्यवस्था के सृजन-बीजों का वपन बड़ी साधना से कर जाती हैं। नारी जाति की संस्कार-जड़ता, उसकी आर्थिक हीनता तथा उसके प्रति पुरुष की एकान्त स्वार्थपरता का इतना सजीव स्वरूप उन्हांने हमारे सामने रखा है कि उससे बड़े-बड़े पुरुष-पुंगवों को भी लज्जा से अपना सिर झुका देना पड़ता है। मानव जीवन की पूर्णता स्त्री-पुरुष सम्बन्ध की सापेक्षता पर कितनी आश्रित है, इस बात का पता हमें 'शृंखला की कड़ियाँ से चलता है।"[127]

'साहित्यकार की आस्था तथा अन्यनिबन्ध' महादेवी के आलोचनात्मक निबन्धों का संग्रह हैं। इसके दो निबन्धों को छोड़कर शेष निबन्धों का प्रकाशन 'महादेवी के विवेचनात्मक गद्य' के नाम से पहले ही हो चुका है। इन निबन्धों में साहित्य के शाश्वत और सनातन सिद्धान्तों पर निष्पक्ष और तर्कबद्ध ढंग से विचार किया गया है। इन निबन्धों कीरचना का कारण सम्भवतः छायावाद को शैशव में कोई सहृदय आलोचक न मिलने को माना जा सकता है। पीढ़ियों के मध्य संघर्ष तो निरन्तर होता रहा है किन्तु इससे उत्पन्न भ्रम की स्थिति को समाप्त करने के लिए किसी न किसी को आगे आना पड़ता हैं। ऐसी स्थिति में महादेवी ने छायावाद के सम्बन्ध में साहित्य जगत में छाई हुई भ्रान्तियों का निवारण करने के लिए इन निबन्धों की रचना की है। छायावाद का सम्यक् अनुशीलन करने के साथ-साथ साहित्य के शाश्वत और सनातन सिद्धान्तों पर भी निष्पक्ष और तर्कबद्ध ढंग से विचार किया गया है। एक कवि द्वारा गद्य सृजन की ओर उन्मुख होने के कारण इनमें विचारों को मात्र तर्कबद्ध रूप में प्रस्तुत न करके लाक्षणिकता का भी आश्रय लिया गया है। इस निबन्ध संग्रह के सम्बन्ध में गंगा प्रसाद पाण्डेय लिखते हैं कि—"उनके सुलझे विचारों की शक्तिमत्ता, उनके सूक्ष्म निरीक्षण की निष्ठा, उनके आत्मानुभूत सिद्धान्तों की प्रतिपादना और उनकी जीवनदर्शन की व्यापकता से संरक्षित और संचालित उनका आलोचक सूक्ष्म और स्वस्थ अभिप्रायों के उद्बोधन में अद्वितीय हैं, यह मेरी

दृढ़ धारणा है।''[128] छायावाद ने अपने जन्म के साथ ही नये-नये काव्यगत सिद्धान्तों नये काव्यालोचनों और नये काव्यशास्त्र को भी जन्म दिया। इन सभी से परिचत कराने के दायित्व का निर्वहन भी छायावादी कवियों को करना पड़ा। इस संग्रह में संकलित निबन्ध इसीं तथ्य की ओर संकेत करते है—

'साहित्यकार की आस्था' के अन्तर्गत महादेवी ने सर्वप्रथम 'आस्था' शब्द की व्याख्या की है और उसें अस्तित्व और स्थिति दोनों का समावेश माना है, जिसे आस्तिक से लेकर नास्तिक तक सभी स्वीकार करते हैं। साहित्यकार के लिए आस्था का महत्व सर्वाधिक है और आस्था का निर्माण समाज विशेष तथा युग विशेष के सन्दर्भ में ही होता है। महादेवी लिखती हैं कि आस्था किसी अन्य कर्म व्यापार के परिणाम को प्रभावित कर सकती है, परन्तु साहित्य को तो वह स्पंदित और दीप्त जीवन देती है।''[129] साहित्यकार आस्था के बल पर ही अपने जीवन को साहित्य में अभिव्यक्ति प्रदान करता है। आस्था स्थिर तत्व है नहीं है वरन् जैसे-जैसे मनुष्य के लिए नये-नये क्षितिज खुलते गये वैसे-वैसे उसकी आस्था का आयाम भी विस्तृत होता गया है। आस्था निर्माण के समय तो व्यक्तिगत हाती है परन्तु उसका प्रसार समष्टिगत होता है।

'काव्यकला' के अन्तर्गत महादेवी ने अपनी काव्यगत मान्यताओं को स्पष्ट करते हुए सत्य को काव्य का साध्य और सौन्दर्य को उस काव्यगत साध्य को प्राप्त करने का साधन माना है। यद्यपि सत्य व्यापक होता है परन्तु व्यक्ति की सीमा में आकर वह व्यक्तिगत हो जाता है। इस प्रकार सत्य व्यक्ति के साथ सापेक्ष परन्तु अपनी व्यापकता में निरपेक्ष बना रहता है। बाह्य जगत तथा अन्तर्जगत में व्याप्त सत्य की सहज अभिव्यक्ति के लिए काव्य तथा कलाओं को माध्यम के रूप में स्वीकार किया गया है। 'काव्यकला' में महादेवी ने बुद्धि और अनुभूति दोनों को ही महत्वपूर्ण माना है लेकिन उन्होंने अनुभूति को अधिक व्यापक माना है। वे लिखती हैं कि 'अनुभूति अपनी सीमा में जितनी सबल है उतनी बुद्धि नहीं। हमारे स्वयं जलने की हलकी अनुभूति भी दूसरे के राख हो जाने के ज्ञान से अधिक स्थायी रहती है।''[130] बुद्धि अपने विषय को ज्ञान के अनन्त विस्तार के साथ रखकर देखती है परन्तु अनुभूति अपने विषय पर ही केन्द्रित होकर उस जीवन की अनन्त गहराई तक ले जाती है। इस प्रकार महादेवी ने काव्य कला में बुद्धि और अनुभूति दोनों का समन्वय यह कहते हुए कर दिया है कि—''काव्य या कला मानों इन दोनों का सन्धिपत्र है, जिसके अनुसार बुद्धिवृत्ति झीने वायुमण्डल के समान बिना भार डाले हुए ही जीवन पर फैली रहती है और रागात्मिका वृत्ति उसके धरातल पर, सत्य को अनन्त रंग रूपों में चिर नवीन स्थिति देती रहती है। अतः काव्य कला का सत्य जीवन की परिधि में सौन्दर्य के माध्यम द्वारा अखण्ड सत्य है।''[131] कलाकार अपनी अनुभूति को इस तरह से व्यक्त करता है कि वह अनुभूति जनसाधारण को अपनी अनुभूति जैसी लगने लगती है। वे लिखती है कि'इसी से कलाकारों के मठ नहीं निर्मित हुए, महन्त नहीं प्रतिष्ठित हुए, साम्राज्य नहीं स्थापित हुए और सम्राट नहीं अभिषिक्त हुए।''[132]

महादेवी ने कवि और दार्शनिक का कार्य पर्याप्त भिन्न माना है। दार्शनिक बुद्धि द्वारा अन्तर का बोध कराकर एकता की ओर निर्देश करता है और कवि हृदय द्वारा एकता की अनुभूति देकर अन्तर की ओर संकेत करता है। काव्य में अनुभूति प्रधान हैं और दर्शन में बुद्धि। महादेवी ने कला को दो रूपों में विभाजित किया— उपयोगी कला और ललितकला। ललित कला के अन्तर्गत कविता को सबसे ऊपर रखा है और सर्वोत्कृष्ट भी माना है क्योंकि कविता जीवन की विविधताओं में भी सामंजस्य खोज लेती है। महादेवी का मानना है कि काव्य की उत्कृष्टता को समझने के लिए जनसाधारण के हृदय को भी पारस होना चाहिए।

'छायावाद' के सम्बन्ध में फैली हुई अनेक भ्रान्त धारणाओं का निराकरण करते हुए महादेवी ने इस निबन्ध के माध्यम से अनेक मौलिक स्थापनायें भी प्रस्तुत की। छायावाद के तथाकथित आलोचक कुछ मोटे-मोटे सिद्धांत सूत्रों का निर्माण करके उन्हीं के आधार पर छायावाद की निरन्तर आलोचना कर रहे थे। महादेवी ने छायावाद को रीतिकालीन प्रवृत्तियां की प्रतिक्रिया स्वरूप उत्पन्न माना। यद्यपि रीतिकालीन सौन्दर्य भावना स्थूल और यथार्थ एकांगी था परन्तु उत्कृष्ट अभिव्यंजना प्रणाली के कारण विषय से सम्बन्धित उसकी संकीर्णता की ओर किसी का ध्यान ही नहीं गया। जब द्विवेदी युग के काव्य में उपदेशात्मकता एवं इतिवृत्तात्मकता का प्राधान्य हुआ तो स्वयं कवि को ही वे वर्णन नीरस लगने लगे। ऐसी ही परिस्थिति में छायावाद का जन्म हुआ। छायावाद के जन्म से पूर्व कविता इस प्रकार बन्धनों में जकड़ गई थी और सृष्टि के बाह्य आकार की काव्य में इतनी अधिक अभिव्यक्ति हो चुकी थी कि मनुष्य का हृदय अपनी अभिव्यक्ति के लिए व्याकुल हो उठा। वे लिखती हैं कि "स्वच्छन्द छन्द में चित्रित उन मानव-अनुभूतियों का काम छाया उपयुक्त ही था और मुझे तो आज भी उपयुक्त ही लगता है।"[133] महादेवी ने छायावाद को बाहर से आया हुआ न मानकर उसका सम्बन्ध वेदों से और प्राचीन भारतीय संस्कृति से जोड़ा। छायावाद की विशेषताओं से सम्बन्धित महादेवी का निम्न कथन अत्यन्त महत्वपूर्ण है—"छायावाद का कवि धर्म के अध्यात्म से अधिक दर्शन के ब्रह्म का ऋणी है,जो मूर्त और अमूर्त विश्व को मिलाकर पूर्णता पाता है। बुद्धि के सूक्ष्म धरातल पर कवि ने जीवन की अखण्डता का भावन किया, हृदय की भाव-भूमि पर उसने प्रकृति में विखरी सौन्दर्य-सत्ता की रहस्यमयी अनुभूति प्रापित की और दोनों के साथ स्वानुभूत सुख दुखों को मिलाकर एक ऐसी काव्य सृष्टि उपस्थित कर दी, जो प्रकृतिवाद, हृदयवाद, अध्यात्मवाद, रहस्यवाद, छायावाद आदि अनेक नामों का भार सम्भाल सकी।"[134] छायावाद की विशेषताओं में महादेवी ने स्वानुभूति की प्रधानता, प्रकृति का मानवीकरण, स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह, पलायन वृत्ति आदि के सम्बन्ध में शोधपरक, तथ्यपरक और पारदर्शी दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है।

'रहस्यवाद' शीर्षक में महादेवी ने काव्य में व्यक्त रहस्यवाद को कबीर, सूफी और दर्शन के रहस्यवाद से भिनन माना है क्योंकि उसमें रहसयवाद के रागात्मक रूप के लिए स्थान नहीं है और इनका रहस्यवाद साधनात्मक और यौगिक क्रियाओं से युक्त है। रहस्यवाद को परिभाषित करते हुए महादेवी ने लिखा है—"मानवीय सम्बन्धों में जबतक अनुराग-जनित आत्म विसर्जन का भाव नहीं घुल जाता, तब तक वे सरस नहीं हो पाते और जब तक यह मधुरता सीमातीत नहीं हो जाती, तब तक ह्रदय का अभाव दूर नहीं होता। इसी से इस अनेकरूपता के कारण पर एक मधुरतम व्यक्तित्व का आरोपण कर उसके निकट आत्मनिवेदन कर देना, इस काव्य का दूसरा सोपान बना, जिसे रहस्यमय रूप के कारण ही रहस्यवाद नाम दिया गया।"[135] काव्य में व्यक्त रहस्यवाद ने पूर्व प्रचलित सभी परम्पराओं की प्रमुख विशेषताओं का अपने में समाहार कर लिया। महादेवी स्वीकार करती हैं कि—"उसने परा विद्या की अपार्थिवता ली, वेदान्त के अद्वैत की छायामात्र ग्रहण की, लौकिक प्रेम से तीव्रता उधार ली ओर इन सबको कबीर के सांकेतिक दाम्पत्यभाव सूत्र में बांधकर एक निराले स्नेह संबंध की सृष्टि कर डाली, जो मनुष्य के ह्रदय को पूर्ण अवलम्बन दे सका, उसे पार्थिव प्रेम से ऊपर उठा सका तथा मस्तिष्क को ह्रदयमय और ह्रदय को मस्तिष्कमय बना सका।"[136] रहस्यवाद की परम्परा पूर्णतया भारतीय है, जिसके स्रोत हमें वेदों में मिलते हैं। रहस्यवाद में आत्मा और परमात्मा के मध्य माधुर्य-भाव-सम्बन्ध स्थापित किया गया है और पुरुष तथा नारी के चरित्र का आरोपण आत्मा और परमात्मा पर कर दिया जाता है, महादेवी ने भी इसे उचित माना है क्योंकि नारी की सामाजिक स्थिति इसका समर्थन करती है। जिस प्रकार नारी अपना कुल, गोत्र आदि छोड़कर पति का कुल, गोत्र स्वीकार कर लेती है और अपने आपको पति को पूर्णतया समर्पित कर देती है उसी प्रकार आत्मा स्वयं को परमात्मा में लीन कर देती हैं अतः नारी के रूपक द्वारा आत्मा का परमात्मा में लय हो जाना सहज ही में सम्भव हो जाता है। महादेवी ने काव्यगत रहस्यवाद को पश्चिमी रहस्यवाद और ईसाईमत के रहस्यवाद से भिन्न माना है। पश्चिमी रहस्यवाद ब्रह्म जीव की एकता को महत्व नहीं देता वरन् ब्रह्म और जगत के विम्ब-प्रतिबिम्ब भाव में अपनी स्थिति मानता है और ईसाई मत का रहस्यवाद धर्म क अन्तर्गत ही रहा अतः वह स्वयं एक सम्प्रदाय के भीतर सम्प्रदाय बन गया। महादेवी ने हिन्दी काव्य में रहस्यवाद को वहाँ से प्रारम्भ माना है—"जहाँ दोनों ओर के तत्वदर्शी एक असीम आकाश के नीचे ही नहीं, एक सीमित धरती पर भी साथ खड़े हो सके। अतः दोनों ओर की विशेषतायें मिलकर गंगा-यमुना के संगम से बनी त्रिवेणी के समान एक तीसरी काव्यधारा को जन्म देती हैं। इस काव्यधारा के पीछे ज्ञान के हिमालय की शत-शत तुषार-धवल उन्नत चोटियाँ हैं और आगे भाव की हरी भरी पुष्पदुकूलिनी असीम धरती। इसी से इसे निरन्तर गतिमय नवीनता मिलती रह सकी।"[137] स्पष्ट है कि महादेवी ने रहस्यवाद को परम्परा से जोड़ते हुए उसके सम्बन्ध में अनेक मौलिक उद्भावनायें प्रस्तुत की हैं।

जब से मनुष्य ने सुख-दुख का अनुभव करना शुरू किया तब से उसने अपनी इन भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए गीत को माध्यम के रूप में चुना। इसलिए महादेवी गीतों को मानव के सुख-दुखों के समान चिरन्तन मानती है। गीत को परिभाषित करते हुए उन्होंने लिखा—"सुख-दुख के भावावेशमयी अवस्था विशेष का गिने-चुने शब्दों में स्वर साधना के उपयुक्त चित्रण कर देना गीत है।"[138] गीत के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए महादेवी ने उसकी परम्परा वेदों से जोड़ी है। वेदों से यह बौद्ध धर्म ने ली, वहाँ से संस्कृत साहित्य में आई और फिर हिन्दी गीतिकाव्य में इन सब प्राचीन गीति पर परम्पराओं की प्रवृत्तियों का समावेश होना स्वाभाविक ही था। महादेवी वर्तमान युग को गीति प्रधान युग मानती है क्योंकि आज के व्यस्त और व्यक्तिगत जीवन में मनुष्य को अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए और कोई माध्यम ही उपयुक्त नहीं लगता। उनहोंने लिखा है—"आज हमारा हृदय तो हमारे लिए संसार है। हम अपनी प्रत्येक सांस का इतिहास लिख लेना चाहते हैं, अपने प्रत्येक कम्पन को अंकित करने के लिए उत्सुक हैं और प्रत्येक स्वप्न का मूल्य पा लेने के लिए विकल हैं।"[139] गीतों के साथ महादेवी ने लोकगीतों को भी पर्याप्त महत्व देते हुए लिखा है कि—"हमारा यह बिना लिखा गीति काव्य भी विविध रूपी है और जीवन के अधिक समीप होने के कारण उन सभी प्रवृत्तियों के मूलरूपों का परिचय देन में समर्थ है, जो हमारे काव्य में सूक्ष्म और विकसित होती रह सकीं।"[140]

'यथार्थ और आदर्श- नामक निबन्ध में महादेवी काव्य के अन्तर्गत जीवन में व्याप्त में महादेवी काव्य के अन्तर्गत जीवन में व्याप्त विविधताओं और एकता की अभिव्यक्ति के लिए यथार्थ और आदर्श दोनों को महत्वपूर्ण मानती है। इनका उद्‌गम क्षेत्र तो एक है परन्तु स्वरूप में दोनों अलग-अलग है। जैसा है और जैसा होना चाहिए क्रमशः यथार्थ और आदर्श के स्वरूप का प्रतिपादन करते हैं। वे लिखती है कि—"जीवन यथार्थ में जैसा है और हमारी परिपूर्ण कल्पना में जैसा है, यही हमारा यथार्थ और आदर्श है।"[141] काव्य में दोनों के उचित समन्वय पर महादेवी बल देती हैं क्योंकि तभी काव्य सार्थक होता है। उनका मानना है कि—"न यथार्थ का कठोरतम अनुशासन आदर्श के सूक्ष्म चित्राधार पर कालिमा फेर सकता है और न आदर्श का पूर्णतम विधान यथार्थ को शून्य आकाश बना सकता है।"[142] महादेवी का मानना है कि जब हमने आदर्श को अमूर्त और यथार्थ को एकांगी मानकर चित्रण किया तो आदर्श बौद्धिक समस्याओं ओर प्राणहीन सिद्धान्तों में उलझकर रह गया और यथार्थ में पाशविक वृत्तियों का चित्रण ही प्रधान होकर रह गया। हमने काव्य में दोनों के सामंजस्य पर बल नहीं दिया और इसी कारण समग्रजीवन में व्याप्त ध्वंस के युग को समाप्त करना कठिन होता गया। वे लिखती है कि—"एक ओर हम यह भूल गए कि आदर्श की रेखाएँ कल्पना के सुनहले रुपहले रंगों से तब तक नहीं भरी जा सकी; जब तक उन्हें जीवन के स्पन्दन से न भर दिया जाये और दूसरी

ओर हमें यह स्मरण नहीं रहा कि यथार्थ की तीव्रधारा को दिशा देने के पहले उसे आदर्श के कूलों का सहारा देना आवश्यक है।"[143] महादेवी ने यथार्थ और आदर्श को परस्पर पूरक माना है। यद्यपि वे प्रथम दृष्ट्या भिन्न दिखते हैं लेकिन उनकी गति विपरीत दिशा की ओर उन्मुख होकर भी जीवन की परिधि को दोनों ओर से स्पर्श करने का समान लक्ष्य रखती है। यथार्थ से आदर्श की ओर जाने का क्रम व्यक्ति में विद्यमान सामंजस्य भावना के विकसित रूप पर निर्भर करता है क्योंकि यथार्थ में व्याप्त विषमताओं को तभी जान सकते हें जब हम सामंजस्य से परिचित हो। जबकि आदर्श में हम यथार्थ में व्याप्त सामंजस्य और विषमता से ही परिचित होते हैं। महादेवी लिखती हैं—"जीवन में वह यथार्थ, जिसके पास आदर्श का स्पन्दन नहीं, केवल शव है और वह आदर्श,जिसके पास यथार्थ का शरीर नहीं, प्रेत मात्र है।"[144] यथार्थ और आदर्श नामक निबन्ध में महादेवी प्रतिक्रिया से उत्पन्न यथार्थोन्मुखता के आत्मनाशक परिणामों से हमें सावधान करती हैं।

'सामयिक समस्या' के अन्तर्गत महादेवी ने यथार्थ का कुत्सित और उत्तेजक चित्रण करने वाले प्रगतिवाद के स्वरूप का विवेचन-विश्लेषण किया है। महादेवी ने स्वीकार किया है कि छायावाद को अपने जन्म के साथ कोई सहृदय आलोचक नहीं मिला और द्विवेदी युगीन आलोचकों के ने छायावाद के कवियों को विक्षिप्त सिद्ध करने में ही सारी शक्ति लगा दी। इस प्रकार 'छायावाद एक प्रकार से अज्ञात कुल शील बालक रहा, जिसे सामाजिकता का अधिकार ही नहीं मिल सका।"[145] इसके विपरीत प्रगतिवाद को वे बुद्धि और साम्यवाद का ऐसा पुत्र मानती है "जिसके आविभवि के साथ ही, आलोचक जन्मकुण्डली बना-बनाकर उसके चक्रवर्तित्व की घोषणा में व्यस्त हो गए। स्वयं उसके जीवन और विकास के लिए कैसे वायु-मण्डल, कैसी धूप-छाया और कितने नीर-क्षीर की आवश्यकता होगी; इसकी उन्हें चिन्ता नहीं।"[146] महादेवी ने प्रगतिवाद की सबसे बड़ी कमजोरी यह मानी है कि उसने अपने अस्तित्व के स्थापन के साथ ही उत्कृष्ट साहित्य सृजन करने वाली काव्यधाराओं की इतनी अधिक आलोचना की कि वे अनुपयुक्त लगने लगी। महादेवी प्रगतिवाद की यही सबसे बड़ी हार मानती है क्योंकि उत्कृष्ट कोटि का साहित्य-सृजन ही किसी विचारधारा की उत्कृष्टता का प्रमाण है। वे लिखती है कि—"छायावाद की चिता चुन जाने पर ही नये काव्य को सुन्दर शरीर प्राप्त हो सकेगा, सजीव गाँधीवाद की शव-परीक्षा हो जाने पर ही नवीन साहित्य की प्राण-प्रतिष्ठ होना सम्भव है, ऐसी धारणाएँ शक्ति से अधिक दुर्बलता की परिचायक तो हैं ही, साथ ही वे एक अस्वस्थ मानसिक स्थिति का परिचय देती हैं।"[147] इस निबन्ध में महादेवी ने प्रगतिवाद पर व्यापक रूप से विचार करते हुए विज्ञान, मनोविज्ञान एवं बौद्धिक विकल्पों की स्थिति तथा साहित्य में उसकी उपयोगिता पर विचार-विमर्श किया है। महादेवी प्रगतिवाद का समर्थन तो करती हैं किन्तु प्रगति को वे साहित्य की उस विकासवादी प्रवृत्ति से सम्बन्धित मानती हैं जो जीवन का सहज विकास करने के साथ ही निर्माण की ओर भी उन्मुख रहे।

'हमारे वैज्ञानिक युग की समस्या' में महादेवी ने विज्ञान के उत्तरोत्तर विकास का मानव-जीवन पर पड़ने वाले प्रभाव का विश्लेषण किया है। विज्ञान ने भौतिक दूरियों को जितना पास कर दिया है उतनी ही मानव-मानव के मध्य विद्यमान निकटता को दूरियाँ में बदल दिया है। वे लिखती हैं कि—"इसी से आज के युग में मनुष्य पास है, परन्तु मनुष्य का शंकाकुल मन पास आने वालों से दूर हाता जा रहा है। स्वस्थ आदान-प्रदान के लिए मनों की निकटता पहली आवश्यकता है।"[148] प्राचीनकाल से ही हमारे देश में प्राणिमात्र के मध्य ऐसी तत्वगत एकता विद्यमान रही है जिसके कारण भौगोलिक विविधताओं के बावजूद सांस्कृतिक दृष्टि से हम एक रह सके और यही कारण है कि "राजनीतिक उत्थान-पतन, शासनगत सीमायें और विस्तार हमारे मन को बाँधने में असमर्थ ही रहे, अतः किसी भी कोने से आने वाले चिन्तन, दर्शन, आस्था या स्वप्न की क्षीणतम चाप भी हमारे हृदय में अपनी स्पष्ट प्रतिध्वनि जगाने में समर्थ हो सके। महादेवी स्पष्ट रूप से मानती हैं कि राजनीतिक इकाई, सांस्कृतिक इकाई का पर्याय नहीं बन सकती क्योंकि जीवन के बाह्य रूप से सम्बन्ध होने के कारण राजनीतिक इकाई बल से भी प्राप्त हो सकती है परन्तु सांस्कृतिक इकाई का निर्माण आत्मा की मुक्तावस्था में ही होता है। इस वैज्ञानिक युग में हमे अपनी मानवीय संवेदना को जागृत रखना होगा तभी सांस्कृतिक परम्परा का गौरव बढ़ेगा। आधुनिक सुख-सुविधाओं से सम्पन्न इस युग में जितना वैज्ञानिक विकास हुआ उतना ही अब प्रदेश, भाषा, जाति तथा धर्म के आधार पर मत विभाजन भी समाज में विद्यमान हैं। अतः महादेवी आधुनिक युग के मनुष्यों को सावधान करते हुए अपने निबन्ध का समापन इन शब्दों में करती है—"हम विश्व भर से परिचय की यात्रा में निकलने के पहले यदि अपने देश के हर कोने से परिचित हो लें, तो इसे शुभ शकुन ही मानना चाहिए। यदि घर में अपरिचय के समुद्र से विरोध और आशंका के काले बादल उठते रहें, तो हमारे उजले संकल्प पथ भूल जायेंगे। अतः दूरी को निकटता बनाने के मुहूर्त में हमें निकट की दूरी से सावधान रहने की आवश्यकता है।"[150]

छायावादी काव्य के सृजन के पूर्व किसी भी कृति की आलोचना परम्परागत सिद्धान्तों जैसे रस,ध्वनि,अलंकार, वक्रोक्ति, छन्द आदि की कसौटी पर की जा रही थी, इस कसौटी में थोड़ा अन्तर रामचन्द्र शुक्ल के आलोचना के क्षेत्र में प्रवेश करने पर हुआ, जहाँ पर उन्होंने आलोचना के परम्परागत तत्वों के साथ धर्म, नीति और लोकमंगल का भी समावेश किया। लेकिन उन्होंने तुलसी के काव्य को आदर्श रूप में अपने सामने रखा। इसलिए कोई भी नये सिद्धान्त का निर्माण करने से पूर्व वे तुलसी के काव्य से उसकी पुष्टि जरूर किया करते थे लेकिन छायावादी कवियों ने जब आलोचना का भार भी ग्रहण कर लिया तो उन्होंने परम्परागत आलोचना सिद्धान्तों का बहिष्कार कर दिया और कृति का मूल्यांकन जीवन के विकासशील तत्वों के साथ कवि के जीवनव्यापी अनुभवों और अभिव्यक्ति कौशल के आधार पर करने लगे जिसका परिणाम

यह हुआ कि उस युग के साहित्य का तो व्यापक आधार पर समर्थन हुआ ही और द्विवेदीयुगीन आलोचकों के कठोर व्यंग्यबाणों से आहत कवि मन को भी प्रतिष्ठा प्राप्त हुई।

छायावाद को अपने जन्म के साथ ही विदेशी धरती से आया हुआ सिद्ध करने की जो परम्पर चल रही थी अथवा उसे बंगला साहित्य का अनुकरण सिद्ध करने के जो प्रयास किया जा रहे थे या अभिव्यक्ति की एक प्रणाली मानकर जो विवाद उठाए जा रहे थे; उन विवादों का समाहार महादेवी ने अपने इन निबन्धों के माध्यम से किया और छायावाद, रहस्यवाद के साथ-साथ अन्य काव्यगत सिद्धान्तों के सम्बन्ध में एक नई दृष्टि विकसित की। इसमें महादेवी ने साहित्य के लगभग सभी महत्वपूर्ण विषयों का विवेचन तो किया ही है साथ ही अन्तिम निबन्ध के माध्यम से आज के वैज्ञानिक युग की समस्या का भी विश्लेषण किया है। 'वीणा' में इस पुस्तक की समीक्षा करते हुए कहा गया है—"इन निबन्धों के द्वारा आज के इस धूम्राच्छन्न संघर्षयुग में हमारी भटकी हुई साहित्यिकता को इससे रोशनी और दिग्दर्शन प्राप्त होगा। भ्रान्ति और कषायोत्तेजित रुग्ण चिंता से हम मुक्त हो सकेंगे और एक अलिप्त संतुलित चिंतन का माद्दा हममें पैदा होगा।[151] 'विशाल भारत' में डॉ. नगेन्द्र की टिप्पणी भी मूल्यवान है। वे लिखते हैं कि—सारतः महादेवी के ये निबन्ध काव्य के शाश्वत सिद्धान्तों के अमर व्याख्यान है। आज साहित्यिक मूल्यों का बवण्डर में भटका हुआ जिज्ञासु इन्हें आलोक स्तम्भ मानकर बहुत कुछ स्थिरता पा सकता है।"[152]

'क्षणदा' महादेवी के ललित निबन्धों का संग्रह है जिसका प्रकाशन सन् 1956 में हुआ है। 'क्षणदा' में संगृहीत प्रथम निबन्ध 'करुणा का संदेश वाहक' में महादेवी ने भगवान बुद्ध के व्यक्तित्व, उनकी कठोर तपस्या, बौद्धधर्म के उपदेशों प्रचार-प्रसार आदि का विवेचन किया है। महादेवी ने बुद्ध के व्यक्तित्व में विपरीत विशेषताओं का सम्मिलन देखती हैं—1. कठोर बुद्धिवाद 2. कोमल मानवीय तत्व। बुद्ध को वे घोर तार्किक मानती है और जो तार्किक रूप से सिद्ध नहीं होता उसे बुद्ध स्वीकार नहीं करते। लेकिन उनकी शुष्क बौद्धिकता में मानवीय सौहार्द की अतिव्याप्ति को वे आश्चर्यजनक मानती है। महादेवी बुद्ध को ऐसा धर्म संस्थापक मानती है "जिन्होंने मनुष्य के संबंधों में सामंजस्य लाने के लिए परमात्मा की मध्यस्थता नहीं स्वीकार की, मनुष्यता उत्पन्न करने के लिए किसी पारलौकिक अस्तित्व का सहारा नहीं लिया।'[153] महादेवी ने बुद्ध को बौद्धधर्म के प्रचार-प्रसार का श्रेय भी दिया है। वे इस बात पर दुख प्रकट करती है कि बुद्ध ने देवता के अस्तित्व को अस्वीकार किया, "विडम्बना यह है कि—'ऐसे पूर्ण मनुष्य को मनुष्य न फिर देवताओं में निर्वासन दे डाला।"[154] बौद्ध दर्शन में व्याप्त निराशावाद को भी महादेवी उचित नहीं मानती क्योंकि दुख के ज्ञान के अभाव में मनुष्य सुख को नहीं जान सकता। कुछ अन्तर रहने पर भी महादेवी ने बौद्धधर्म की विचारधारा के कुछ अंशों का उपदिषदों की विचारधारा से साम्य दिखाया है।

'संस्कृति का प्रश्न' में महादेवी ने वर्तमान युग में संस्कृति के प्रश्न को उठाने को व्यर्थ मानती हैं पर शस्त्रों की झनझनाहट शांत हो जाने पर सांस्कृतिक चेतना फिर प्रबल हो जाएगी, ऐसा महादेवी का विश्वास है। संस्कृति का ज्ञान किसी मानवसमूह के साहित्य, कला, दर्शन आदि के ज्ञान और भाव के ऐश्वर्य से ही संभव नहीं होता वरन् उस समूह के प्रत्येक व्यक्ति के साधारण शिष्टाचार भी उसका ज्ञान कराने में समर्थ है। संस्कृति को वे केवल निर्माण ही नहीं वरन् निर्मित तत्वों की खोज भी मानती हैं। एक देश की संस्कृति दूसरे देश की संस्कृति से भिन्न जान पड़ती है लेकिन उनमें एक तत्वगत एकता विद्यमान रहती है। भारतीय संस्कृति के संबंध में महादेवी का विचार है—"संस्कृति विकास के विविध रूपों की समन्वयात्मक समष्टि हैं और भारतीय संस्कृति विविध संस्कृतियों की समन्वयात्मक समष्टि है।"[155] भारतीय संस्कृति की मुख्य प्रवृत्ति समन्वयत्मकता की ओर संकेत करते हुए महादेवी लिखती हैं—"भारतीय संस्कृति निश्चित पथ काँट-छाँट कर निकाली हुई नहर नहीं; वह तो अनेक स्रोतों को साथ ले अपना तट बनाती और पथ निश्चित करती हुई बहने वाली स्रोतस्विनी हैं। उसे अंधकार भरे गर्तों में उतरना पड़ा है, ढालों पर विछलना पड़ा है; पर्वत जैसी बाधाओं की परिक्रमा कर मार्ग बनाना पड़ा है, पर इस लंबे क्रम उसने अपनी समन्वयात्मकता शक्ति के कारण अपनी मूलधारा नहीं सूखने दी।"[156]

'कसौटी पर' नामक निबन्ध में महादेवी ने जीवन की कसौटी का निर्धारण किया है। जीवन के मूल्य के विकसित होने के साथ उसे परखने वाली कसौटियाँ भी विकसित होती गई। वर्तमान समय में विकृतियाँ बहुत बढ़ गई हैं और व्यावहारिक जीवन में उन विकृतियों के मध्य विचित्र एकरूपता भी मिलती है। उदाहरण द्वारा वे इसे स्पष्ट करती है—"जो ग्वाला अठगुना दाम लेकर भी दूध में पानी बिना मिलाए नहीं मानता और अपनी सत्यता प्रमाणित करने के लिए प्रचलित तालिका में से एक भी शपथ नहीं छोड़ता, उसका मिथ्या मंदिर में देवता के चरणों के पास बैठकर धर्म का व्यापार करने वाले पुजारी के मिथ्यावाद का सहोदर है।"[157] विकृतियों को वे विषैली गैस के समान सम्पूर्ण वातावरण में व्याप्त मानती हैं। "जो सौन्दर्य और सत्य की सजीव प्रतिमाओं को भी साँस के साथ खींचकर उदरस्थ कर लेता है और फिर अपने शरीर को तोड़-मोड़कर उन्हें चूर-चूर बनाकर ऐसी स्थिति में पहुँचा देता है, जिसमें वे उस अजगर के शरीर के अतिरिक्त और कुछ नहीं रहती।"[158] इन विकृतियों से छुटकारा पाने का एकमात्र उपाय बुद्धि, हृदय और कर्म में सामंजस्य है। महादेवी ने सत्य को भी उसी सीमा तक सारवान माना है, जिस सीमा तक वह जीवन की कसौटी पर परखा जा चुका है। प्राचीन समय से लेकर वर्तमान समय तक कसौटियों में पर्याप्त अन्तर आ गया है, पहले मनुष्य का मूल्य उसके सिद्धान्त की व्यापकता से आँका जाता है और आज सिद्धान्त का महत्व मनुष्य के जीवन की गहराई से ही मापा जा सकता है।

'स्वर्ग का एक कोना' और 'सुई दो रानी' महादेवी के दो यात्रा संस्करण है जो क्षणदा में संगृहीत हैं। यात्रा संस्मरण में लेखक स्वयं तटस्थ रहता है और मार्ग में आने वाले नदी, पर्वत, नाले झरने आदि का नायक के रूप में वर्णन करता है। महादेवी इस वर्णन में पूरी तरह सफल रही हैं। उनके 'स्वर्ग का एक कोना' में श्रीनगर का 'सुई दो रानी' में बद्रीनाथ की यात्रा का वर्णन है। 'स्वर्ग का एक कोना' में उस आश्रम का वर्णन महादेवी की लेखनी से बिलकुल सजीव हो उठा है। महादेवी की दृष्टि केवल श्रीनगर की प्राकृतिक सुषमा पर ही नहीं जाती वरन् वहाँ के बच्चों और नारियों के कठोर और दरिद्र जीवन पर भी गई है या यूँ कहें कि महादेवी का संवदेनशील हृदय करुणा के व्यापक प्रसार के लिए स्थान निकाल ही लेता है जैसे निम्न उदाहरण में दृष्टव्य है—"प्रकृति ने उन्हें इतना भव्य रूप दिया; परन्तु निष्ठुर भाग्य ने दियासलाई के डिब्बे जैसे छोटे मलिन अभव्य घरों में प्रतिष्ठित कर और एक मलिन वस्त्र मात्र देकर उनके सौंदर्य का उपहास कर डाला और हृदयहीन विदेशियों ने अपने ऐश्वर्य की चकाचौंध से उनके अमूल्य जीवन को मोल लेकर, मूल्यरहित बना दिया।"[159] महादेवी ने केवल श्रीनगर में देखे हुए बाग और झीलों का ही वर्णन नहीं किया फूलों, शिल्पकलायें, कढ़ाई कला आदि के बारे में भी लिखा है।

'सुई दो रानी तथा डोरा दो रानी' में महादेवी ने इस परम्परा प्रचलित कथा का संदर्भ स्पष्ट किया है। आधुनिक सुख सुविधाओं से हीन प्राचीन समय में यहाँ के निवासी बाहर से आने वालों से सुई और डोरा की ही माँग करते थे वे लिखती है कि—"हमारे परम्परागत संस्कारों का मिटना कितना कठिन है। माँगना छोड़ना तो दूर की बात, उनके हृदय में कुछ और मांगने की इच्छा ही नहीं उत्पन्न होती। प्रत्येक व्यक्ति केवल हजार पाँच सौ सुईयों के संग्रह का स्पप्न देखता है।[160] महादेवी की दृष्टि केवल सुन्दर वस्तुओं पर ही नहीं जाती वरन् बद्रीनाथ में पाई जाने वाली गंदगी का भी उन्हांने चित्रण किया है—"संकीर्ण गलियाँ और घर दुर्गन्धपूर्ण और गंदे थे। देखकर सोचा कि जब हम इतने बड़े तीर्थस्थान को भी स्वच्छ और सुन्दर नहीं रख सकते, तब किसी और स्थान को स्वच्छ रखने की आशा तो दुराशामात्र है।"[161] स्पष्ट है कि इन यात्रा संस्मरणों में महादेवी ने बद्रीनाथ और श्रीनगर की यात्रा का मनोरम वर्णन किया है।

'कला और हमारा चित्रमय साहित्य' में महादेवी ने मानवजीवन को रागात्मक तथा इतिवृत्तात्मक अनुभूतियों का संघात माना है, जिनमें से एक मनुष्य को व्यावहारिक जीवन के लिए उपयोगी बनाती है तथा दूसरी व्यावहारिक जीवन में आने वाली कठोरता को सरस बनाकर मानव के सम्मुख विकास का सुन्दरतम् आदर्श कला के माध्यम से प्रस्तुत करती है। मनुष्य के अन्दर सत्य का क्रियात्मक और रहस्यमय अंश छिपा है, इस सत्य का सौन्दर्य में रागात्मक प्रकाशन ही कला के सत्यम्, शिवम्, सुन्दरं की अभिव्यक्ति करता है। कलाकार तभी सफल है, जब वह जीवन तथा विश्व में छिपी हुई सुंदरता तथा कुरुपता,दुर्बलता तथा शक्ति,

पूर्णता तथा अपूर्णता की सामंजस्यपूर्ण रागात्मक अभिव्यक्ति कला के माध्यम से कर सके। कला को वे जीवन की संगिनी मानती हैं जो सभी परिस्थितियों में मनुष्य के साथ रहेगी। महादेवी उसी को कलाकार की संज्ञा देती है, "जो कल्पना को सौन्दर्यमय आकार देगा, उसमें वास्तविकता का रंग भरेगा और उससे जीवन संगीत की सुरीली लय की सृष्टि कर देगी।"[162] कला-कला के लिए है या जीवन के लिए—इस प्रश्न को महादेवी ने व्यर्थ माना है क्योंकि जीवन कलामय है तथा कला सजीव है और दोनों परस्परपूरक है। महादेवी ने श्रव्यकलाओं की अपेक्षा दृश्यकला को और उसमें भी चित्रकला को सर्वश्रेष्ठ माना है। उसे वे विषय से निरपेक्ष मानती हैं—"सच्चे चित्रकार की तूलिका भगवान बुद्ध की चिर शांत मुद्रा अंकित करके भी धन्य हो सकती है और हल कंधे पर लेकर घर लौटने वाले कृषक का चित्र बनाकर भी अमर हो सकती है।"[163] महादेवी ने साप्ताहिक और मासिक पत्र-पत्रिकाओं द्वारा अपनी ब्रिकी को बढ़ाए जाने के लिए विकृत और नारी के सौन्दर्यहीन चित्रण को हीन माना है क्योंकि चित्रकला तभी सार्थक हैं जब वह बालक के मानसिक विकास में सार्थक भूमिका निभाकर एक स्वस्थ युवक का निर्माण कर सके।

'कुछ विचार' के अन्तर्गत महादेवी ने देश में भौतिक दृष्टि से व्याप्त अनेकता और सांस्कृतिक दृष्टि से व्याप्त एकता की ओर संकेत करते हुए, इस एकता की अभिव्यक्ति प्रादेशिक भाषा और साहित्य के माध्यम से मानी है। साथ ही मराठी साहित्य और बोली पर भी महादेवी ने अपने विचार प्रकट किए हैं और हिन्दी नाट्य तथा रंगमंच पर भी ध्यान आकृष्ट किया है। समाज और मनुष्य के संबंध पर विचार करते हुए वे लिखती हैं—"मनुष्य से मनुष्य का सम्पर्क केवल विधान और नियम से संचालित नहीं होता क्योंकि वह प्रत्येक आदान-प्रदान को किसी अलक्ष्य तुला पर तोलकर उसका मूल्य निश्चित करता रहता है। संसार के सारे विधान; जीवन के सारे नियम, मनुष्य को मनुष्य के लिए प्रसन्नतापूर्वक छोटा सा त्याग करने पर भी बाध्य नहीं कर सकते, पर वह स्वेच्छा से प्राण तक दे डालता है। अतः सामाजिक संबंधों का इस अत्यन्त व्यावहारिक पक्ष से लेकर एक अति मानवीय दार्शनिक पक्ष तक, विवेचन किया जा सकता है।"[164]

'दोष किसका' के अन्तर्गत महादेवी ने तत्कालीन सम्पादकों के मध्य विद्यमान दिशाभ्रम की स्थिति को दर्शाते हुए उसे दूर करने का आग्रह किया है। महादेवी ने सम्पादक पर गुरु उत्तरदायित्व डाला है। वह उत्तरदायित्व है—"वे उन भावनाओं और विचारों को सर्वसाधारण तक पहुँचा सके जो सुन्दर भविष्य के अग्रदूत हो सकते हैं तथा उन संस्कारों को मिटाने का प्रयत्न करे जिससे प्रगति में बाधा पड़ती है।"[165] लेकिन इसके लिए वे सम्पादक के हृदय और मस्तिष्क दोनों का परिष्कृत और विकसित होना आवश्यक मानती है। यद्यपि महादेवी का मानना है कि सम्पादक का कार्य आसान नहीं है लेकिन "यदि उनमें साहस और आत्मसम्मान हो, संगठित शक्ति हो, संसार को अपनी आवश्यकता का अनुभव करा देने योग्य दृढ़ता हो तो

बाधाएँ उनकी गति की बेड़ियाँ नहीं बन सकती।"[166] महदेवी सम्पादक के लिए लेखक से अच्छे सम्बन्ध को भी महत्व देती हैं।

'अभिनयकला' के अन्तर्गत महादेवी अभिनय को एक विकसित विधा मानती है जो अनुकरण पर आधारित है। इसमें उन्होंने समाज में अभिनय कला का क्रमिक विकास दिखाया है। महादेवी ने अभिनय कला के साथ-साथ रंगमंच की भी चर्चा की है और हिन्दी का कोई अपना रंगमंच न होने के कारण पारसी थियेटर द्वारा दिखाए जा रहे नाटकों की आलोचना की—"इन रंगमंचों ने वह दिया जिसे रासधारी,राधाकृष्ण के बहाने देने का निष्फल प्रयत्न करते थे और इन्होंने वह छीन लिया जिसे रामलीला वाले सफलता पूर्वक देते थे।"[167] महादेवी ने सवाक् चलचित्र को मानव की उच्चतम वृत्तियों को जाग्रत कराने का निर्देश दिया है और अभिनय द्वारा ही ऐसा कर पाना सम्भव है—"अभिनय हमारी केवल प्राचीन ही नहीं प्रिय कला भी है। यदि हम जीवन को अधिक परिष्कृत और सुन्दर बनान में इसका उपयोग करें तो इससे व्यक्ति और समाज दोनों ही अधिक पूर्ण हो सकेंगे। वैसे विकृत मात्रा में तो औषधि भी विष हो जाती है।"[168]

'हमारा देश और राष्ट्रभाषा' में महादेवी ने विविधताओं से परिपूर्ण देश के मध्य विद्यमान सांस्कृतिक एकता की ओर संकेत किया है और देश को एक सूत्र में बांध रखने वाली राष्ट्रभाषा की समस्या का प्रतिपादन किया है। वे हिन्दी को राष्ट्रभाषा के गौरवपूर्ण पद का दिया जाना उचित मानती हैं क्योंकि हिन्दी ही पूरब से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण तक सम्पूर्ण देश में व्याप्त है। हिन्दी को राष्ट्रभाषा स्वीकृत करवाने के लिए राजनीतिक क्षेत्र में व्याप्त वाद-विवाद को देखकर महादेवी की विद्रोही वाणी गूंज उठती है—"हिन्दी अपना भविष्य किसी से दान में नहीं चाहती। वह तो उसकी गति का स्वाभाविक परिणाम होना चाहिए। जिस नियम से नदी-नदी की गति रोकने के लिए शिला नहीं बन सकती, उसी नियम से हिन्दी भी किसी सहयोगियों का पथ अवरुद्ध नहीं कर सकती है।"[169]

'साहित्य और सात्यिकार' में महादेवी ने जीवन में साहित्य की अवश्यकता पर बल दिया है तथा समाज में साहित्य सृजन को लेकर उठी हुई समस्याओं पर विचार पर किया है। साथ ही कुछ प्रश्न भी उठाये हैं—क्या साहित्य केवल व्यक्तिगत रुचि-हॉबी मात्र है? क्या उसे विशेष प्रतिभा द्वारा संपादित और स्थायी महत्व का सामाजिक कर्म मानकर अतीत युगों ने मूल की है? क्या अन्य युगों और देशों की उक्त भूल का परिमार्जन करने के लिए ही हमारे यहाँ ऐसी व्यवस्था हो रही है। क्या इस व्यवस्था से साहित्य का लक्ष्य, राजनीतिक लक्ष्य से एकाकार हो सकेगा और क्या इस ऐक्य से साहित्य के मूल्यों की रक्षा और वृद्धि हो सकेगी?"[170] इन सभी प्रश्नों के समाधान के लिए वे दो तत्वों की ओर संकेत करती है। विश्वासी बुद्धि और विवेकी हृदय द्वारा ही इन समस्याओं का समाधान संभव है।

पथ के साथी–1956 में प्रकाशित 'पथ के साथी' महादेवी वर्मा की चतुर्थ गद्यकृति है। 'अतीत के चलचित्र' और 'स्मृति की रेखाएँ' में महादेवी जी ने जहाँ समाज के उपेक्षित, शोषित पात्रों के व्यथापूर्ण संघर्षमय जीवन को अपना विषय बनाया था, वही 'पथ के साथी' में अपने वरिष्ठ तथा समकालीन साहित्यकारों के जीवन, व्यक्तित्व, कृतित्व तथा अपने साथ उनके सम्बन्धों का विवेचन किया है। यद्यपि वरिष्ठ और समकालीन साहित्यकारों के विषय पर लिखना अत्यन्त दुष्कर कार्य है। यह मानते हुए भी वे स्वीकार करती हैं कि, 'अपने अग्रजों और सहयोगियों के सम्बन्ध में, अपने-आप को दूर रखकर कुछ कहना सहज नहीं होता। मैंने साहस तो किया है; पर ऐसे स्मरण के लिए आवश्यक निर्लिप्तता या असंगता मेरे लिए सम्भव नहीं है। मेरी दृष्टि के सीमित शीशे में वे जैसे दिखाई देते हैं, उससे वे बहुत उज्ज्वल और विशाल हैं।'[170] इस गद्य-कृति में रवीन्द्रनाथ टैगोर, मैथिलीशरण गुप्त, सुभद्रा कुमारी चौहान, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानन्दन पन्त और सियारामशरण गुप्त के संस्मरण संग्रहीत हैं। बाद में इसका एक संस्करण 'संस्मरण' नाम से प्रकाशित हुआ, जिसमें उपर्युक्त साहित्यकारों के साथ महात्मागाँधी, राजेन्द्र बाबू, जवाहरभाई, सन्त राजर्षि और प्रेमचन्द के संस्मरण संग्रहीत हैं। इस संस्करण में सियारामशरण गुप्त को स्थान नहीं मिला हैं।

अन्तर्वस्तु–स्त्रबसे पहला संस्मरण 'प्रणाम' रवीन्द्रनाथ टैगोर को समर्पित है, जिनके व्यक्तित्व और कृतित्व से महादेवी विद्यार्थी जीवन से ही प्रभावित रही थी। वे लिखती है कि—'कवीन्द्र रवीन्द्र उन विरल साहित्यकारों में थे जिनके व्यक्तित्व और साहित्य में अद्‌भुत साम्य रहता है। जहाँ व्यक्ति को देखकर लगता है मानो काव्य की व्यापकता ही सिमट कर मूर्त्त हो गई है और काव्य से परिचित होकर जान पड़ता है मानो व्यक्ति ही तरल होकर फैल गया हो।'[172] महादेवी ने टैगोर को तीन अलग-अलग परिवेश में देखा और उससे उत्पन्न अनुभूतियों को कोमल प्रभात, प्रखर दोपहरी और कोलाहल में विश्राम का संकेत देती हुई सन्ध्या की संज्ञा दी है। रामगढ़ में महादेवी के बंगले के समीप ही टैगौर भी अपनी रोगिणी पुत्री के साथ रह चुके थे। टैगोर के बंगले के प्रत्यक्ष दर्शन और उस महान पड़ोसी के साथ रह चुके लोगों के वृत्तान्त सुनकर महादेवी के हृदय में टैगोर ने सहृदय-पड़ोसी और वात्सल्य भरे पिता के रूप में प्रतिष्ठा पाई। जब उन्होंने सर्वप्रथम टैगोर के दर्शन किए, तो स्वीकार किया कि, 'इसे मैं अपना सौभाग्य समझती हूँ कि रवीन्द्र के प्रत्यक्ष दर्शन ने मेरी कल्पना-प्रतिमा को अधिक दीप्त सजीवता दी। उसे कहीं से खंडित नहीं किया गया।'[173] दूसरी बार उन्होंने टैगोर को शान्ति निकेतन में देखा और उस समय तक महादेवी अपना कार्यक्षेत्र सुनिश्चित कर चुकीं थी और तीसरी बार शान्ति निकेतन के लिए अर्थसंग्रह करते हुए टैगोर को रंगमंच पर सूत्रधार के रूप में देखती हैं और ऐसी विषम परिसिथति पर असंतोष व्यक्त करते हुए लिखती हैं—''हिरण्यगर्भा धरतीं वाला

हमारा देश भी कैसा विचित्र है! जहाँ जीवन-शिल्प की वर्णमाला भी अज्ञात है वहाँ वह साधनों का हिमालय खड़ा कर देता है और जिसकी उंगुलियों में सृजन स्वयं उतरकर पुकारता है उसे साधन-शून्य रेगिस्तान में निर्वासित कर जाता है। निर्माण की इससे बड़ी विडम्बना और क्या हो सकती है कि शिल्पी और उपकरणों के बीच में आग्नेय रेखा खींच कर कहा जाय कि कुछ नहीं बनता या सब कुछ बन चुका!'[174] कवीन्द्र रवीन्द्र में कल्पना का विस्तृत फलक विद्यमान था। साहित्य के हर क्षेत्र में उन्होंने अपनी लेखनी चलाई। वे लिखती है कि—"विशाल, शिव और सुन्दर के पक्ष का समर्थन सब कर सकते हैं क्योंकि वे स्वतः प्रमाणित हैं। परन्तु विशालता, शिवता और सुन्दरता पर क्षुद्र, अशिव और विरूप का दावा प्रमाणित कर उन्हें विशाल, शिव और सुन्दर में परिवर्तित कर देना किसी महान का ही सृजन हो सकता है।'[175] इसमें सन्देह नहीं कि कवि टैगोर ऐसे ही महान और युगप्रवर्तक साहित्यकार हैं। कवि रवीन्द्र के महाप्रयाण को महादेवी साहितियक जगत में उनके द्वारा सौंपे गए गुरू उत्तरदायित्व के रूप में स्वीकार करती है लिखती है कि—जैसे उस साहित्यकार-अग्रज ने हमारे अनजान में ही हमारे छोर में अपना उत्तराधिकार बाँधकर विदा ली है। दीपक चाहे छोटा हो चाहे बड़ा, सूर्य जब अपना आलोकवाही कर्तव्य उसे सौंप कर चुपचाप डूब जाता हे तो तब जल उठना ही उसके अस्तित्व की शपथ है—जल उठना ही उसके जाने वाले को प्रणाम है।'[176]

मैथिलीशरण गुप्त से महादेवी का परिचय सरस्वती पत्रिका और उसमें प्रकाशित उनकी रचनाओं के माध्यम से तब हुआ, जब वे समस्यापूर्ति के माध्यम से काव्य रचना का बाल प्रयास कर रहीं थी। गुप्त जी बाह्य रूप दर्शन और वेशभूषा में बिलकुल साधारण थे, वे इतने अधिक साधारण थे कि यदि वे भीड़ में शामिल हो जायें तो आसानी से खोजे भी नहीं जा सकते। उनके विषय में महादेवी लिखती हैं कि—'साधारण मझोला कद, साधारण छरहरा गठन, साधारण गहरा गेहूँआ या हल्का साँवला रंग, साधारण पगड़ी, अंगरखा, धोती या उसका आधुनिक संस्करण, गाँधी टोपी, कुरता-धोती और इस व्यापक भारतीयता से सीमित साम्प्रदायिकता का गठबन्धन सा करती हुई तुलसी कंठी। अपने रूप और वेष दोनों में वे इतने अधिक राष्ट्रीय हैं कि भीड़ में मिल जाने पर शीघ्र ही खोज नहीं निकाले जा सकते हैं।"[177] महादेवी उनके व्यक्तित्व की विशेषताओं का रेखांकन करते हुए दो को महत्वपूर्ण मानती हैं, जो उन्हें दूसरों से अलग करती हैं, वे हैं—उनकी बंधी दृष्टि और मुक्त हँसी। मैथिलीशरण गुप्त सरल-सहज, निश्छल, निर्मल, विनोदी और सबकी मदद करने को तत्पर रहते हैं। 'वे स्वभाव से प्रसन्न और विनोदी है, पर इस प्रसन्नता और विनोद की चंचल सतह के नीचे गहरी सहानुभूति और तटस्थ विवेक का स्थायी संगम है, जिस पर सबकी दृष्टि नहीं जाती।'[178] यद्यपि उनके व्यक्तित्व पर देश और समाज में व्याप्त तत्कालीन परिस्थितियों की चेतना तो अवश्य विद्यमान थी लेकिन परिवार से प्राप्त संस्कारों ने उस पर एक बाह्य आवरण डाल रखा था। वे लिखती हैं कि—'यदि

हम लोहे के एक सिरे को आग में रखकर दूसरे को पानी में डुबा दें, तो उष्णता और शीतलता अपनी-अपनी सीमा बढ़ा कर लोहे के मध्य भाग में एक संतुलित गर्मी-सर्दी उत्पन्न कर देगी, पर दोनों सिरों पर आग-पानी अपने मूल रूपों में रहेंगे ही।

बहुत कुछ ऐसा ही सन्तुलन गुप्त जी के व्यक्तित्व में मिलता है, पर उसमें चरमसीमाओं पर ऐसा आग-पानी भी है, जो कोई समझौता नहीं करता।[179] शिक्षा के अन्तर्गत परीक्षाओं के बंधे-बंधाए ढाँचे को शीघ्र ही तोड़ देने के कारण उनके व्यक्तित्व को वातावरण और संस्कार के अनुसार अपना विकास करने की सुविधा मिल गई। मैथिलीशरण गुप्त परीक्षाओं से दूर ही रहे। उनके व्यक्तित्व के विकास के लिए यह अच्छा भी रहा। क्योंकि महादेवी भी मानती हे कि परीक्षा की बँधी-बंधायी प्रणाली में दीक्षित व्यक्ति 'टाइप' बनकर रह जाता है। यदि मैथिलीशरण गुप्त के व्यक्तित्व का विकास उसी ढाँचे में होता तो निश्चय ही देश ऐसे राष्ट्रीय कवि से वंचित रह जाता। मैथिलीशरण गुप्त अल्पायु में ही दो बार पत्नी विछोह और दस में नौ सन्तानों की मृत्यु देख चुके थे पर उनके व्यक्तित्व में ऐसा सन्तुलन था कि वे फिर भी स्थिर बने रहे। सन्तुलन की इसी विशेषता की ओर संकेत करते हुए महादेवी लिखती है कि "आस्था जनित संयम का बाँध न उनके विषाद में ज्वार आने देता है और न हर्ष में।"[180] मैथिलीशरण गुप्त के साहित्यिक व्यक्तित्व में कवि और भक्त दोनों का समन्वय है, इसीलिए जहाँ एक ओर उनमें कवि के लिए आवश्यक निर्माण का स्वभाव है वहीं दूसरी ओर भक्त के लिए आवश्यक निर्मित के प्रति आत्मसमर्पण भी है। उन्होंने रामायण और महाभारत के मूलपात्रों के चरित्र का विस्तार नहीं किया वरन् इनके लेखकों की दृष्टि से जो साधारण पात्र ओझल हो गए थे, उन्हीं को मैथिलीशरण गुप्त ने अपनी रचनाओं का विषय बनाया। ये कथाएँ युगों पुरानी होने के कारण यद्यपि धूमिल हो गई हैं लेकिन मैथिलीशरण गुप्त ने इन्हें नये कलेवर में प्रस्तुत किया। ऋण का दुर्वहभार भी मैथिलीशरण गुप्त को विरासत में मिला था लेकिन 'सादा जीवन उच्च विचार' के हिमायती गुप्त ने इनका शीघ्र ही समाधान कर लिया। इनके सामने विद्यमान आर्थिक संकट का प्रमुख कारण प्रकाशक वर्ग था जो पुस्तकें छाप कर उनके लेखकों को कुछ भी नहीं देता था और स्वयं लेखक द्वारा अपनी पुस्तक से अर्थलाभ प्राप्त करने का प्रश्न कल्पना से भी परे था। पर अपने पिता और अग्रज के कारण मैथिलीशरण गुप्त आर्थिक संकट के उस दौर में स्थिर रह सके। उनके चरित्र की एक अन्य विशेषता की ओर महादेवी संकेत करती हैं कि वे अत्यन्त विनयशील हैं लेकिन किसी निर्दोष के प्रति अत्याचार होता देखकर वे उतने ही उग्र भी हो जाते हैं। मैथिलीशरण गुप्त के व्यक्तिव में अनेक परस्पर विरोधी तत्वों का सामंजस्य दिखाते हुए महादेवी लिखती हैं— 'यदि अपनी परीक्षाओं में अविचलित रहना भक्त का वरदान है, तो गुप्त जी पूर्णकाम हैं। यदि अपने अहं को समष्टि में मिला देना कवि की मुक्ति है,तो गुप्त जी मुक्त कवि हैं।'[181] निश्चय ही मैथिलीशरण गुप्त साधारण व्यक्तित्व के साथ असाधारण विशेषताओं को धारण किए हुए हैं।

सुभद्रा कुमारी चौहान से महादेवी का परिचय क्रास्थवेट गर्ल्स कॉलेज में उस समय हुआ, जब समुद्रा कुमारी चौहान सातवीं कक्षा की और महादेवी पाँचवी कक्षा की छात्रा थी। और दोनों ही कविताएँ लिखा करती थीं। कार्यक्षेत्र समान होने कारण परिचय में प्रगाढ़ता आना स्वाभाविक ही था तथा समय के प्रवाह के साथ यह सम्बन्ध प्रगाढ़ से प्रगाढ़कर होता गया। सुभद्रा भारतीय नारी की छवि को पूर्णतया साकार करती थीं। उनकी छवि को रेखांकित करते हुए महादेवी जी लिखती हैं कि—कुछ गोल मुख, चौड़ा माथा, सरल भृकुटियाँ, बड़ी और भाव-स्नात आँखें, छोटी सुडौल नासिका, हँसी को जमा कर गढ़े हुए से ओंठ और दृढ़ता-सूचक ठुड्डी—सब कुछ मिलाकर एक अत्यन्त निश्छल, कोमल उदार व्यक्तित्व वाली भारतीय नारी का ही पता देने थे।''[182] उनके स्वभाव की प्रमुख विशेषता यह थी कि वे जो एक बार निश्चय कर लेती थी, उस पर अडिग रहती थी और विपरीत परिस्थितियों को भी वह हंसते हुए स्वीकार करती थीं। उनका विवाह अल्पायु में स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए तत्पर लक्ष्मण सिंह के साथ हुआ और उन्होंने आदर्श पत्नी की भांति हर कदम पर अपने पति का साथ दिया चाहे वह कारागार के बाहर हो या फिर उसके अन्दर हो। महादेवी लिखती है कि 'इस साधना की मर्मव्यथा को वही नारी जान सकती है जिसने अपनी देहली पर खड़े होकर भीतर के मंगलचौक पर रखे मंगल-कलश, तुलसी-चौरे पर जलते हुए घी के दीपक और हर कोने से स्नेह भरी बाँहें फैलाये हुए अपने घर पर दृष्टि डाली हो और फिर बाहर के अन्धकार, आँधी और तूफान को तोला हो और तब घर की सुरक्षित सीमा पार कर, उसके सुन्दर मधुर आह्वान की ओर से पीठ फेर कर अँधेरे रास्ते पर काँटों से उलझती चल पड़ती हो।'[183] सुभद्रा के व्यक्तित्व में आधुनिक और पारम्परिक नारी का अद्भुत समन्वय था। व जिस उत्साह और ओज के साथ वीर रस से परिपूर्ण कविताएँ लिखा करती थीं, उतनी ही तन्मयता से अपने घर के आँगन को लीपती थी, बर्तन माँजती थी। यद्यपि सुभद्रा का अध्ययन-क्रम बीच ही टूट गया लेकिन उनमें विवेचन-विश्लेषण की अद्भुत क्षमता थी। उन्होंने देश और समाज में प्रचलित प्राचीन मान्यताओं और सामाजिक रूढ़ियों का जमकर विरोध किया। स्त्री को पुरुष की छाया से स्वतन्त्र माना। सुभद्रा कुमारी चौहान का मानना था—'मनुष्य की आत्मा स्वतन्त्र है। फिर चाहे वह स्त्री-शरीर के अन्दर निवास करती हो चाहे पुरुष-शरीर के अन्दर। इसी से पुरुष और स्त्री का अपना-अपना व्यक्तित्व अलग-अलग रहता है।'[184] अपनी पुत्री के विवाह के अवसर पर तो उन्होंने परम्परा से चली आ रही कन्यादान की प्रथा को ही अस्वीकृत कर दिया क्योंकि उनका मानना था कि मनुष्य-मनुष्य को दान करने का अधिकारी नहीं है। महादेवी स्वीकार करती हैं कि 'अजगर की कुंडली के समान, स्त्री के व्यक्तित्व को कसकर चूर-चूर कर देने वाले अनेक सामाजिक बन्धनों को तोड़ फेंकने में उनका जो प्रयास लगा होगा, उसका मूल्यांकन आज सम्भव नहीं है।'[185] सुभद्रा अपने पति की अभिन्न मित्र, ममतामयी माँ स्वतन्त्रता के लिये सन्नहु जागरूक नारी और साहित्यिक मित्रों के साथ परस्पर ईर्ष्या-द्वेष की भावना से मुक्त थी। उनके चरित्र की इस विशेषता को लक्ष्य करते हुए

महादेवी लिखती है कि—'अपने किसी भी परिचित-अपरिचित साहित्य-साथी की त्रुटियों के प्रति सहिष्णु रहना और उसके गुणों के मूल्यांकन में उदारता से काम लेना समुद्राजी की निजी विशेषता थी। अपने को बड़ा बनाने के लिए दूसरों को छोटा प्रमाणित करने की दुर्बलता उनमें असम्भव थी।'[186] निश्चय ही अपने इसी स्वभाव तथा गुणों के कारण महादेवी की स्मृति में उनकी सखी का चित्र अपनी सब रंग-रेखाओं के साथ स्पष्ट है।

महाकवि निराला के इस संस्मरण में महादेवी ने निराला की अन्तर्बाह्य विशेषताओं को उद्घाटित करने का प्रयत्न किया है ओर वे अपने इस प्रयत्न में सफल भी रही है। निराला महादेवी के राखी बन्द भाई है। यद्यपि उन्हें राखी के बन्धन में बाँधने में महादेवी का यह प्रयास 'किसी भी जीवन्त बवण्डर को कच्चे सूत में बांधने जैसा था या किसी उच्छल महानद को मोम के तटों में सीमित करने के समान था।'[187] परन्तु लौकिक दृष्टि से निःस्व निराला हृदय की निधियों में सबसे समृद्ध भाई हैं,यह स्वीकार करने में महादेवी के मन में कोई द्विविधा नहीं। यद्यपि महादेवी ने निराला के अस्तव्यस्त जीवन को व्यवस्थित करने के अनेक असफल प्रयास किये लेकिन निराला जैसे औढरदानी को रोकना भी आसान न था। स्वयं कष्ट सहकर भी दूसरों की मदद करना निराला की चारित्रिक विशेषताओं में प्रमुख है। इसी प्रकार साधनहीन होने पर भी निराला अतिथि-सत्कार में भारतीय परम्परा का ही अनुगमन करते हैं। एक बार मैथिलीशरण गुप्त निराला के अतिथि होते हैं। उस समय की स्थिति का वर्णन महादेवी इन शब्दों में करती हैं—'वह आलोक रहित, सुख-सुविधा-शून्य घर, गृहस्वामी के विशाल आकार और उससे भी विशालतर आत्मीयता से भरा हुआ था। अपने संबंध में बेसुध निराला जी अपने अतिथि की सुविधा के लिए सतर्क प्रहरी हैं। वैष्णव अतिथि की सुविधा का विचार कर वे नया घड़ा खरीद कर गंगाजल ले आये और धोती-चादर जो कुछ घर में मिल सका सब तख्त पर बिछा कर उन्हें प्रतिष्ठित किया।'[188] निराला में विद्यमान संवेदनशीलता का परिचय पंत की मृत्यु की झूठी खबर में मिलता है, जिसमें वे उस खबर की सच्चाई जानने के लिए रात भर महादेवी के घर के सामने पार्क में रुके रहते हैं। अपने विरोधियों के लिए भी उनके हृदय में एक कोना खाली रहता है। महादेवी लिखती हैं कि 'निरालाजी के सौहार्द और विरोध दोनों एक आत्मीयता के वृन्त पर खिले दो फूल हैं। वे खिल कर वृन्त का शृंगार करते हैं और झड़कर उसे अकेला और सूना कर देते हैं। मित्र का तो प्रश्न ही क्या, ऐसा कोई विरोधी भी नहीं जिसका अभाव उन्हें विकल न कर देगा।'[189] निराला स्वभाव से विद्रोही रहे हैं और उन्होंने तत्कालीन सामाजिक और साहित्यिक जगत में व्याप्त रूढ़ियों का जमकर विरोध किया है। 'निराला जी विचार से क्रान्तदर्शी और आचरण से क्रान्तिकारी हैं। वे उस झंझा के समान हैं जो हल्की वस्तुओं के साथ भारी वस्तुओं को भी उड़ा ले जाती है।'[190] निराला ने स्वयं को साहित्यिक जगत में प्रतिष्ठापित करने के लिए आजीवन संघर्ष किया और वे अपने परिवारिक उत्तरदायित्वों का भी सफलतापूर्वक निर्वाह करने में असफल

रहे लेकिन फिर भी प्रतिकूल परिस्थितियों में उन्होंने कभी हार नहीं मानी। महादेवी लिखती है कि—"जो अपने पथ की सभी प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष बाधाओं को चुनौती देता हुआ, सभी आघातों को हृदय पर झेलता हुआ लक्ष्य तक पहुँचता है उसी को युग-स्रष्टा साहित्यकार कह सकते हैं। निराला जी ऐसे ही विद्रोही साहित्यकार हैं। जिन अनुभवों के दर्शन का विष साधारण मनुष्य की आत्मा को मूर्च्छित करके उसके सारे जीवन को विषाक्त बना देत है, उसी से उन्होंने सतत् जागरूकता और मानवता का अमृत प्राप्त किया है।'[191]निराला जी के संस्मरण के औचित्य को सिद्ध करते हुए महादेवी ने ठीक ही लिखा है—'निरालाजी के साहित्य की शास्त्रीय विवेचना तो आगामी युगों के लिए भी सुकर रहेगी, पर उस विवेचना के लिए जीवन की जिस पृष्ठभूमि की आवश्यकता होती है, उसे तो उनके समकालीन ही दे सकते हैं।'[192]

यद्यपि कवि प्रसाद से महादेवी का परिचय उनके साहित्य के माध्यम से हो चुका था लेकिन उनके दर्शन महादेवी को कामायनी के द्वितीय सर्ग की रचना के दौरान सुलभ हुए और इस समय तक वे स्वयं भी सांध्यगीत लिख चुकी थी। महादेवी की कल्पना में प्रसाद एक हष्ट-पुष्ट थविर के रूप में विराजमान थे, पर जब वे उन्हें देखती हैं तो इस स्थिति का वर्णन करते हुए वे लिखती है कि—"न वे उतने हृष्ट जान पड़े और न उतने पुष्ट ही। न अधिक ऊँचा न नाटा-मझोला कद, न दुर्बल न स्थूल, छरहरा शरीर, गौर वर्ण, माथा ऊँचा और प्रशस्त, बाल न बहुत घने न विरल, कुछ भूरापन लिये काले; चौड़ाई लिये मुख, मुख की तुलना में कुछ हल्की सुडौल नासिका,आँखों में उज्ज्वल दीप्ति, ओंठों पर अनायास आने वाली बहुत स्वच्छ हँसी, सफेद खादी का धोती-कुरता। उनकी उपस्थित में मुझे एक उज्ज्वल स्वच्छता की वैसी अनुभूति हुई जैसी उस कमरे में सम्भव है, जो सफेद रंग से पुता और सफेद फूलों से सजा है।'[193] अपनी कल्पना मूर्ति के इस प्रकार खण्डित होने पर महादेवी को हँसी आना स्वाभाविक ही था। प्रसाद भारतीय दर्शन, साहित्य और इतिहास आदि के ज्ञाता थे और वैदिक साहित्य और भारतीय दर्शन महादेवी के भी प्रिय विषय होने के कारण, उन दोनों विद्वानों के मध्य चर्चा स्वाभाविक ही थी। उस चर्चा के दौरान महादेवी अनुभव करती है कि 'प्रसाद जी दोनों के सम्बन्ध में आधुनिकतम ज्ञान ही नहीं अपनी विशेष व्याख्या भी रखते हैं। वे कम शब्दों में अधिक कह सकने की जैसी क्षमता रखते थे वैसी कम साहित्यकारों में मिलेगी।'[194] प्रसाद का सम्पूर्ण जीवन अकेलेपन का अद्‌भुत उदाहरण प्रस्तुत करता है। उनका जन्म एक प्रतिष्ठित एवं ऋण के भार से बोझिल परिवार में हुआ था और उन्हें अल्पायु में ही माता-पिता, बड़े भाई, दो पत्नियों और एकलौते पुत्र की वियोग व्यथा सहन करनी पड़ी थी लेकिन अनेक कष्ट सहकर भी वे साहित्य-रचना में संलग्न रहे। प्रसाद जैसे मनस्वी और संकोची स्वभाव वाले व्यक्ति के लिए दूसरों से सहानुभूति और सहायता की याचना करना सम्भव नहीं था। इसलिए क्षयरोग से पीड़ित होने पर उसका निदान प्रचुर व्यय साध्य होने के कारण और अपने किशोर

पुत्र के लिए अपने इतिहास की पुनरावृत्ति न होने देने के कारण मृत्यु की निरन्तर समीप अपने वाली पदचाप सुनकर भी वे विचलित नहीं हुए। और जब सम्पूर्ण साहित्य जगत कामायनी के प्रकाशन पर पर्वोत्सव मना रहा था, तभी प्रसाद के महाप्रयाण की सूचना आती है जिसे सुनकर समस्त साहित्य जगत स्तब्ध कर जाता है महादेवी लिखती है कि—"कण-कण कटती हुई शिला के समान उनकी जीवनी-शक्ति रिसती गई और जब उन्होंने जीवन के सब संघर्षों पर विजय प्राप्त कर ली तब वे जीवन की बाजी हार गए; जिसमें हार जाने की सम्भावना भी उनके मन में नहीं उठी थी।'[195] प्रसाद की साहित्यिक प्रतिभा का विस्तार क्षेत्र मधुरगीत, अतुकान्त रचनाएँ, मुक्त छंद खंड काव्य, लघु कथाओं से लेकर लम्बी कहानी तक, उपनयास, एकांकी, प्रतीक रूपक, गीतिनाट्य, ऐतिहासिक नाटक तथा निबन्धसाहित्य से लेकर 'इन्दु', 'जागरण' जैसी पत्रिका तक था। महादेवी ने प्रसाद की तुलना हिमालय की गर्वीली चोटियों से समता करता हुआ एक सीधे ऊँचे देवदारू के वृक्ष से की है जिसका मस्तक ठिठुराने वाले हिमपात, प्रखर-धूप, और मूसलाधार वर्षा के बीच में भी उन्नत रहा और आँधी और बर्फीले बवंडर के झकोरे सहकर भी वह निष्कम्प निश्चल खड़ा रहा।

सुमित्रानन्दन पन्त को सर्वप्रथम महादेवी ने हिन्दू बोर्डिंग हाउस में होने वाले कवि सम्मेलन में देखा था और उस कोमलकान्त कृशांगी मूर्ति को छात्रों और अध्यापकों के बीच में बैठा हुआ देखकर उन्हें आश्चर्य भी हुआ था। पन्त के व्यक्तित्व की बाह्य विशेषताओं को उद्घाटित करते हुए वे लिखती हैं—'आकण्ठ अवगुण्ठित करती हुए हल्की पीताभ सी चादर, कंधों पर लहराते हुए कुछ सुनहले—से केश, तीखे नक्श और गौरवर्ण के समीप पहुँचा हुआ गेहुँआ रंग, सरल दृष्टि की सीमा बनाने के लिए लिखी हुई-सी भवें, खिंचे हुए-से ओंठ, कोमल- पतली उंगुलियों वाले सुकुमार हाथ.....यह सब देखकर मुझे ही नहीं मेरी अन्य संगिनियों को भी भ्रम होना स्वाभविक था। पर हम सब यह देखकर विस्मित हो गए कि वह मूर्ति हमारी ओर न आकर उन्हीं के बीच में प्रतिष्ठित हो गयी जो उससे आकार-प्रकार में उतने ही भिन्न जान पड़ते थे जितनी क्षीण तरल जल रेखा से विशाल कठोर पाषाण खंड।'[196] और उनका भ्रम डा. धीरेन्द्र वर्मा के विवाह के अवसर पर दूर हुआ, जब उन्होंने अपने कवि मित्र पन्त से महादेवी का परिचय कराया। पन्त के जन्म के समय उनकी माँ की मृत्यु हो जाने पर उन्हें सबका स्नेह, प्यार-दुलार अधिक मिला। परन्तु दूसरों से प्राप्त स्नेह में उनके मातृहीन होने का भाव अनजाने ही घुल जाता है। अतः सुमित्रानन्दन के मन का संकोच, उनकी अनतर्मुखी वृत्तियाँ सब उनके असाधारण बालकपन की उपज है। उनका बचपन कौसानी में व्यतीत हुआ। प्रकृति प्रारम्भ से ही पन्त के लिए मुख्य सहचरी रही। उसी की क्रोड में उन्होंने हंसना-रोना सीखा। अतः उन्हें स्वभाव और शरीर में प्रकृति प्रदत्त कोमलता और सुकुमारता विद्यमान रही महादेवी लिखती है कि—"पर जिस नियम से आज के वैज्ञानिक ने मकड़ी के कोमल झीने तन्तु में न टूटने वाली दृढ़ता का पता लगा लिया

है, उसी नियम के अनुसार सुमित्रानन्दन जी के सुकुमार शरीर और कोमल प्रकृति ने सब अग्नि परीक्षायें पार कर ली है।[197] पन्त ने तीसरी कक्षा में ही अपने गोसाईंत्त जैसे कवित्वहीन नाम के स्थान पर सुमित्रानन्दन जैसा श्रुतिमधुर नाम रखकर अपनी सृजनशीलता का परिचय दिया था। पन्त ने सम्पन्नता और विपन्नता के अनेक दौर देखे पर जिस प्रकार उन्हें सम्पन्नता का अभिमान नहीं हुआ उसी प्रकार विपन्नता में वे विचलित नहीं हुए। उनकी छायावादी कविताओं में जहाँ कल्पना का रंगीन भावलोक है, वहीं आगे चलकर वे यथार्थ की ठोस भावभूमि पर उतर आते हैं। यद्यपि उनके लक्ष्य खोजी मनपर निरन्तर किए जा रहे शरसन्धान से वह थक जाता है, 'पर उनके मन और शरीर दोनों ने अपने-अपनी सीमा में जिस इस्पाती तत्व का परिचय दिया है वह कभी हार स्वीकार नहीं करता। द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मकता के स्थान पर छायावाद को प्रतिष्ठित करवाने में इन कवियों को निरन्तर आलोचकों के कठोर व्यंग्यबाणों का सामना करना पड़ा और इस संघर्ष-यात्रा में सबसे कोमल-सुकुमार कवि पंत के प्रति सभी की चिन्ता स्वाभाविक थी, पर महादेवी लिखती है कि 'आँधी के थमने पर हमने देखा कि लचीले बेंत के समान झुककर उन्होंने तूफान को अपने ऊपर से बह जाने दिया है और अब वे नये प्रभात के अभिनन्दन के लिए उन्मुख खड़े हैं।'[198] पन्त का उपर्युक्त संस्मरण उनके कोमल, सरल, सहज, निश्छल स्वभाव के साथ ही हठ व्यक्तित्व का भी परिचय देता है।

श्री सियाराम शरण गुप्त के संस्मरण का प्रारम्भ उनके व्यक्तित्व की बाह्य विशेषताओं के रेखांकन द्वारा होता है महादेवी लिखती है कि—"कुछ नाटा कद, दुर्बल शरीर, छोटे और कृश हाथ-पैर, लम्बे उलझे रूखे-से बाल, लम्बाई लिये सूखे मुख, ओंठ और विशेष तरल आँखों के साथ भाई सियारामशरण ऐसे लगते हैं, मानों ठेठ भारतीय मिट्टी की बनी पकी कोई मूर्ति हो, जिसकी आँखों पर स्निग्धता का गाढ़ा रंग फेर कर शिल्पी, शेष अंगों पर फेरना भूल गया है।[199] भाद्रपूर्णिमा को जन्मे सियारामशरण गुप्त के साथ महादेवी उम्र में बड़े होने पर भी छोटे भाई का स्नेहपूर्ण संबंध जोड़ती हैं। सियाराम अपने भाई-बहनों में न बड़े हैं और न ही छोटे। अतः उनको छोटों को मिलने वाला प्रेम भी सहज ग्राह्य है तथा बड़ों को प्राप्त होने वाला विश्वास भी उपलब्ध है। वे अत्यन्त कुशाग्रबुद्धि और जिज्ञासु प्रवृत्ति के थे। यद्यपि उन्होंने स्कूली पढ़ाई मिडिल तक ही पास की थी परन्तु बिना कॉलेज गए उन्होंने अपनी बुद्धि का विस्तार इस प्रकार कर लिया था कि महादेवी को विश्वविद्यालय की पढ़ाई निरर्थक जान पड़ती हैं और वे लिखती हैं कि—"पर हाईस्कूल, इण्टर कॉलेज, विश्वविद्यालय, मास्टर, लेक्चरर, प्रोफेसर आदि-आदि की सात समुद्रों से भी गहरी खाइयों के पार जो सरस्वती बैठी थी, उसके चरण तक उन्होंने अपनी विनयपत्रिका बुद्धि के तीर में बाँधकर न जाने कैसे पहुँचा दी और आज जब हम उनके ज्ञान-भण्डार को देखते हैं तो पछतावा होने लगता है कि हम इन खाइयों में वर्षों क्यों डूबते-उतराते रहे।[200] सियाराम शरण गुप्त ने पत्नी और बच्चों की असमय विदाई को भी संयम के साथ

स्वीकार किया और पत्नी से अनन्य प्रेम ओर स्नेह के कारण ही वे कभी दूसरे विवाह के लिए तैयार नहीं हुए। यद्यपि सियाराम शरण गुप्त परिग्रहहीन, श्वास के रोग से ग्रस्त तथा सत्यान्वेषक रहे हैं पर उन्होंने कभी हार नहीं मानी। यद्यपि सियाराम के बड़े भाई राष्ट्रकवि रहे हैं और बड़े भाई से प्रभावित होना कोई असामान्य बात भी नहीं थी। परन्तु महादेवी लिखती हैं कि इस पर भी "भाई सियारामजी ने अपने अग्रज की छाया को सम्पूर्ण निष्ठा के साथ स्वीकार किया, पर उसके अंतराल से आकाश पाने का ऐसा रन्ध्र निकाल लिया जिससे प्रत्येक प्रभात की किरण उन्हें नवीन कोण से स्पर्श करती है और प्रत्येक सन्ध्या नया रंग ढालती है। उनके विचार, साहित्य और साधना में कहीं अनुकरण नहीं है। कभी-कभी तो अति परिचित और अतिसाधारण वस्तुओं, व्यक्तियों तथा घटनाओं को वे ऐसे दृष्टि बिन्दु से देखकर उपस्थित करते हैं कि सुनने वाला विस्मित हो जाता है।'[201] सियाराम रवीन्द्र साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान थे तथा महात्मा गाँधी से भी अत्यधिक प्रभावित थे लेकिन फिर भी वे उनके साथ हिन्दी को लेकर कोई समझौता नहीं करते और ऐसे अवसर पर ही उनकी मानसिक दृढ़ता का परिचय मिलता है। रवीन्द्र और महात्मा गाँधी के उन पर पड़े हुए प्रभाव को महादेवी दूसरे ढंग से देखती है। वे लिखती है कि—"उनका साहित्य पढ़कर ऐसा लगता है कि यदि उन्हें महात्मा गाँधी का निकट सम्पर्क कुछ कम प्राप्त होता तो वे इससे अच्छे कवि होते और यदि उन्हें कवीन्द्र के साहित्य का परिचय कम मिला होता तो वे इससे बड़े साधक होते।

दो ध्रुवों पर स्थित महान साधक और महान कवि दोनों ने अपने-अपने वरदान इस प्रकार भेजे हैं कि शिव और सुन्दर इनके जीवन से अपना-अपना दायभाग अलग-अलग माँगते रहते हैं। दोनों की सन्धि कराने में ही इनकी शक्ति का अधिकांश व्यय होता रहता है।[202] निश्चय ही महादेवी ने सियाराम के व्यक्तित्व की अन्तर्बाह्य विशेषताओं को अत्यन्त आत्मीयता के साथ उद्घाटित करने में सफलता प्राप्त की हैं।

अन्तर्वस्तु के उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि साहित्यकार की रचना में उसके अनुभवों, विचारों तथा मनोभावों की छाप तो रहती ही है पर साथ ही युगीन परिवेश भी पूरी रचना में समाया रहता है। महादेवी ने भी पथ के साथी के आरम्भ में ही लिखा है—"साहित्यकार की साहित्य-सृष्टि का मूल्यांकन तो अनेक आगत-अनागत युगों में हो सकता है; परन्तु उसे जीवन की कसौटी उसका अपना युग ही रहेगा।"[203] 'पथ के साथी' में युगीन परिवेश अपनी पूरी गरिमा के साथ विराजमान है। महादेवी के लिए अपनी रचना में सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक परिवेश से विलग रहना सम्भव भी नहीं था। महादेवी का इन साहित्यकारों में अधिकांश के साथ निजी सम्बन्ध होने के कारण उनके जीवन के कुछ पहलुओं पर इस रचना द्वारा प्रकाश भी पड़ता है।

राजनीतिक परिवेश के अन्तर्गत 1942 के भारत छोड़ों आन्दोलन के दौरान जनता पर असहनीय अत्याचार हो रहे थे, उसमें देश के साहित्यकारों को भी नहीं बख्शा जा रहा था, जिसका स्पष्ट उल्लेख

मैथिलीशरण गुप्त के संस्मरण में मिलता है जब उन्हें अपने बड़े भाई के साथ जेल में डाल दिया गया और कलेक्टर द्वारा यह पूछने पर कि उन्हें कुछ कहना तो नहीं है तो उनका दबा हुआ आक्रोश फूट पड़ता हैं— "आपका दिमाग खराब हो गया है, आपसे क्या बातें करें। आप निर्दोषों को पकड़ते घूमते हैं। हमारा क्या, हम तो लेखक ठहरें यहाँ सब देखेंगे और इसके खिलाफ लिखेंगे।"[204] इस कथन के द्वारा शासन के प्रति साहित्यकारों की निर्भीकता और स्पष्टवादिता द्रष्टव्य है। इसी प्रकार सुभद्रा कुमारी चौहान के संस्मरण में जेल जीवन को अंकित किया है। सुभद्रा के लिए ए क्लास और बी क्लास में कोई अन्तर नहीं था। जहाँ सम्पन्न परिवार की सत्याग्रही माताओं के बच्चे के लिए बाहर से मेवा मिष्ठान्न आ जाता था जबकि सुभ्रदा को अपनी भूख से रोती हुई बच्ची को महिला कैदियों से थोड़ी सी दाल लेकर भूनकर खिलानी पड़ी थी। इस प्रकार समाज में विद्यमान उच्च और निम्न वर्ग के गरीबी की खाई पाटना आसान नहीं था।

भारतीय जनजीवन को परम्परगत रूढ़ियाँ किस प्रकार आबद्ध किए थीं और ये साहित्यकार किस प्रकार उनका विरोध कर रहे थे, इसका सजीव चित्रण सुभद्राकुमारी चौहान के संस्मरण में मिलता है—जहाँ वे अपनी कन्या के विवाह के अवसर पर कन्यादान की प्रथा के विरुद्ध खड़ी होती है। सुभद्रा कुमारी चौहान की दृढ़ आवाज सुनाई देती है—"मैं कन्यादान नहीं करूंगी। क्या मनुष्य-मनुष्य को दान करने का अधिकारी है? क्या विवाह के उपरान्त मेरी बेटी मेरी नहीं रहेगी।"[205] इसी प्रकार प्रकार चिरप्रचलित परम्पराओं के विरुद्ध सुभद्रा कुमारी चौहान की विद्रोही वाणी पुकार उठती है—"चिरप्रचलित रूढ़ियों और चिरसंचित विश्वासों को आघात पहुँचाने वाली हलचलों को हम देखना-सुनना नहीं चाहते। हम ऐसी हलचलों को अधर्म समझकर उनके प्रति आँख मींच लेना उचित समझते हैं, किन्तु ऐसा करने से काम नहीं चलता। वह हलचल और क्रान्ति हमें बरबस झकझोरती है और बिना होश में लाये नहीं छोड़ती।"[206]

निराला के सन्दर्भ में आधुनिक जीवन प्रणाली के अन्तर्गत अतिथि आगमन के अवसर पर जो दृश्य महादेवी ने खींचा है, वह अपनी यथार्थता के कारण कितना प्रभावोत्पादक बन पड़ा है। वे वर्तमान समय में घर में अतिथि आगमन के चरित्र के साथ निराला द्वारा किया गया अतिथि सत्कार की तुलना करते हुए लिखती हैं कि—"अब अतिथि पूजा के वैसे अवसर कम ही आते हैं और यदि आ भी पड़े तो देवता के क्षौर, अभिषेक, शृंगार आदि संस्कार बेयरा, नौकर आदि ही सम्पन्न करा देते हैं। पुजारी गृहपति को तो भोग लगाने की मेज पर उपस्थिति रहने भर का कर्तव्य संभालना पड़ता है। कुछ देवता इस कर्तव्य से भी उसे मुक्ति दे देते हैं।"[207]

साहित्य सृजन को कभी भी समाज में उच्च स्थान प्राप्त नहीं रहा और 'पथ के साथी' के अन्तर्गत संग्रहीत संस्मरण भी इसी तथ्य की पुष्टि करते हैं। सुमित्रानन्दन पन्त के संस्मरण में महादेवी

लिखती हैं कि—"कवि पुत्र, परिवार का सबसे बेकार अंग माना जाता है।"[208] सुभद्राकुमारी चौहान के संस्मरण में तो महादेवी ने कविता लेखन को अपराज के अन्तर्गत स्वीकार किया है, वे लिखती हैं कि—"उस युग में कविता रचना अपराध की सूची में था। कोई तुक जोड़ता है, यह सुनकर ही सुनाने वाले के मुख की रेखाएं इस प्रकार वक्र कुंचित हो जाती थी। मानो उन्हें कोई कटुतिक्त पेय पीना पड़ा हो।"[209]

'पथ के साथी' के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि उस युग में प्रायः सभी साहित्यकार आर्थिक विषमता से ग्रस्त रहे। अधिकांश को तो ऋणभार विरासत में प्राप्त हुआ था। जयशंकर प्रसाद, निराला पन्त, सुभद्रा कुमारी चौहान, मैथिलीशरण गुप्त सभी को आर्थिक कठिनाईयों का सामना करना पड़ा था। सुभद्रा कुमारी चौहान को तो अपने बच्चों को दूध के स्थान पर चावल के घोल का सफेद पानी देकर बहलाना पड़ता था। प्रकाशक भी साहित्यकारों का शोषण किया करते थे और स्वयं लेखकों द्वारा अपनी पुस्तक से अर्थलाभ की बात सोचना कल्पना से परे था।

साहित्यकारों के विषय में यह आम धारणा प्रचलित है कि वे अपने परिवार के विषय में उदासीन रहते हैं। परन्तु 'पथ के साथी' इस धारणा का निरसन करता है। उनमें केवल अपने परिवारजन के लिए ही नहीं वरन् समाज के निम्न से निम्न वर्ग के प्रति भी सहृदयता, उदारता और आत्मीयता के दर्शन होते हैं। महादेवी लिखती है कि—प्राय; सभी सच्चे कलाकारों में संवेदनशीलता का आधिक्य स्वाभाविक है। पर सबके सुख-दुखों से तादात्म्य का परिणाम उनकी कला ही होती है।"[210]

साहित्यकारों में दूसरों के दुखों के साधारणीकरण के साथ-साथ स्वाभिमान की मात्रा भी पर्याप्त मात्रा में होती है, जिसका परिचय मैथिलीशरण गुप्त के संस्मरण में मिलता है, वे लिखती है कि—"एक ओर अर्थपति की अवज्ञा स्वाभाविक थी, दूसरी ओर गुप्त जी की नम्रता के तल में छिपे ज्वालामुखी में विस्फोट होना। जब उन्होंने अपनी सप्रयत्न सीखी याचक की भूमिका भूल कर सम्भाव्यदाता को फटकारना आरम्भ किया तब भाई कृष्णदासजी को कुछ पाने की आशा छोड़कर भागने का द्वार खोजना पड़ा।"[211]

महादेवी के बारे में तो यह प्रसिद्ध ही है कि वे बहुत हँसती हैं लेकिन 'पथ के साथी' के अन्तर्गत वर्णित प्रायः सभी साहित्यकारों के स्वभाव की प्रमुख विशेषता उनकी मुक्त हंसी है जिसका परिचय पग-पग पर मिलता है। रवीन्द्रनाथ टैगोर के सम्बंध में महादेवी लिखती हैं— "दृढ़ता का निरन्तर परिचय देने वाले अधरों से जब हँसी का अजस्र प्रवाह बह चलता था तब अभ्यागत की स्थिति वैसी हो जाती थी जैसे अडिग और रन्ध्रहीन शिला से फूट निकलने वाली निर्झर के सामने सहज है।[212] मैथिलीशरण गुप्त के विषय में वे लिखती हैं-वे 'स्वभाव से प्रसन्न और विनोदी है।'[213] सुभद्राजी और महादेवी के विषय में तो प्रसिद्ध ही है —'हम दोनों जब साथ रहती थी, तब बात एक मिनिट और हँसी पाँच मिनिट का अनुपात रहता था।'[214]

साहित्यकारों के मध्य ईर्ष्या, द्वेष और स्पर्धा तो प्रायः हर युग में रही है लेकिन उनके व्यक्तिगत संबंध इससे प्रभावित नहीं होते। 'पंत और पल्लव' पुस्तक की रचना द्वारा पंत की कटु आलोचना करनेवाले निराला पंत की मृत्यु की झूठी खबर की सच्चाई जानने के लिए रात भर पार्क में लेटे रहे। इसी प्रकार सुभद्रा कुमारी चौहान के विषय में वे लिखती है-"अपने किसी भी परिचित, अपरिचित साहित्य साथी की त्रुटियों के प्रति सहिष्णु और उसके गुणों के मूल्यांकन में उदारता से काम लेना सुभद्राजी की निजी विशेषता थी। अपने को बड़ा बनाने के लिए दूसरों को छोटा प्रमाणित करने की दुर्बलता का उनमें सर्वथा अभाव था।"[215]

'पथ के साथी' के अन्तर्गत वर्णित उपर्युक्त साहित्यकारों के व्यक्तित्व और जीवन दर्शन का परिचय तो महादेवी की लेखनी से साकार हुआ ही है साथ ही महादेवी के व्यक्तित्व का भी इसमें समावेश हो गया है। इस प्रकार स्पष्ट है कि महादेवी जितनी कुशलता से अपने पात्रों के चरित्र की आन्तरिक और बाह्य विशेषताओं को अभिव्यक्ति प्रदान करती हैं उतनी ही तत्परता के साथ उनके सामाजिक परिवेश और समाज में उनकी स्थिति के लिए उत्तरदायी परिस्थितियों की भी विवेचना करती चलती हैं। इनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि महादेवी इन पात्रों के साथ निरन्तर उपस्थित रही हैं, जैसा कि उन्होंने प्रारम्भ में ही स्वीकार किया है कि इन पात्रों के साथ निलिप्तता और असंगता महादेवी के लिए संभव भी नहीं थी अतः उन्होंने पूरी आत्मीयता के साथ 'पथ के साथी' के रूप में इनका स्मरण किया है।

मेरा परिवारः-1972 में प्रकाशित 'मेरा परिवार' महादेवी वर्मा की पॉचवीं गद्यकृति है जिसमें उन्होंने बचपन से ही अपने साथ रहने वाले मानवेतर प्राणियों की एक-एक गतिविधि का निरीक्षण अत्यन्त सूक्ष्मता के साथ किया है और कालान्तर में इन प्राणियों के प्रति तीव्र संवेदना और व्यापक सहानुभूति के कारण उनके चित्रांकन में अपनी अद्भुत कला-क्षमता का परिचय दिया है। इलाचन्द्र जोशी लिखते हैं कि 'महादेवीजी ने कुछ विशिष्ट मानवेतर प्राणियों के प्रति अपनी जिस सहज, सौहार्द और एकांत आत्मीयता की अभिव्यंजना का जो अपूर्व कला-कौशल अपने इन चित्रों में व्यक्त किया है, वह केवल उनकी अपनी ही कला की विशिष्टता की दृष्टि से नहीं वरन संसार-साहित्य की इस कोटि की कला के समग्र क्षेत्र में भी बेमिसाल और बेजोड़ हैं। ये कृतियां मानवीय भावज्ञता, संवेदना और कलात्मक प्रतिभा के अपूर्व निदर्शन की दृष्टि से शाब्दिक अर्थ में अपूर्व और अद्भुत कलात्मक चमत्कार के नमूने है।'[216] वस्तुतः महादेवी विशाल परिवार की स्वामिनी है। वे जितनी आत्मीयता और स्नेह अपने सम्पर्क में आये हुए दीन और शोषित प्राणियों का देती है, उतनी ही या सम्भवतः उससे भी अधिक आत्मीयता के साथ पशु जगत और पक्षिजगत के प्राणियों का विवेचन करती हैं। वे इन मानवेतर प्राणियों के दुख में दुखी और सुख में सुखी होती हैं। 'मेरा परिवार' की रचना की प्रेरणा बचपन की एक घटना है जिसमें उनके एक कुक्कुट शावक को उनकी नई मिस साहब अपने भोजन के लिए ले जाती है

और महादेवी द्वारा अनवरत् क्रन्दन के बाद ही वह कुक्कुट शावक उन्हें वापस मिलता है और तब से ही वह स्वामित्व-प्रदर्शन के लिए अपने पालतू पशुओं के परिचय चिह्न अंकित करती जाती हैं और वे लिखती है कि-'बालकपन की इसी गद्यात्मक अभिव्यक्ति के बीज पर मेरे सारे संस्मरण अंकुरित, पल्लवित और पुष्पित हुए हैं।'[217]

अन्तर्वस्तुः- 'मेरा परिवार' का प्रारम्भ नीलकण्ठ मोर और राधा नामक मोरनी से होती है, जिसे वे नखासकोने से लाती हैं तथा जिनके आगमन से उनके घर में ऐसा ही उत्साह होता है, जैसा नववधू के आगमन पर परिवार में स्वाभाविक है। धीरे-धीरे बड़े होने पर वे क्रमशः इल्ली से तितली में परिवर्तित होने लगे। महादेवी उनका सौन्दर्यांकंन करती हुई लिखती हैं-'रंगरहित पैरों को गर्वीली गति ने एक नयी गरिमा से रंजित कर दिया। उसका गर्दन ऊँची कर देखना, विशेष भंगिमा के साथ उसे नीचा कर दाना चुगना, पानी पीना, टेढ़ी कर शब्द सुनना आदि क्रियाओं में जो सुकुमारता और सौन्दर्य था, उसका अनुभव देखकर ही किया जा सकता है। गति का चित्र नहीं आंका जा सकता।[218] नीलकण्ठ ने चिड़ियाघर के अन्य जीव-जन्तुओं के लिए सेनापति और संरक्षक की भूमिका स्वीकार की। राधा और नीलकण्ठ हमेशा साथ रहते थे और उनकी प्रिय ऋतु वर्षा ऋतु थी। मेघ की गर्जना के साथ उनके नृत्य का प्रारम्भ होता और रिमझिमाहट जितनी बढ़ती जाती उतना ही उनके नृत्य का वेग बढ़ता जाता। नीलकण्ठ और राधा के परस्पर प्रेम के मध्य व्यवधान कुब्जा नामक अन्य मोरनी के आने पर पड़ा, जो स्वभाव में अपने नाम के अनुरूप थी। उसकी वजह से नीलकण्ठ और राधा को अलग-अलग रहना पड़ा और इसी कारण से एक दिन नीलकण्ठ की मृत्यु हो जाती है। कलह-कोलाहल और द्वेष से परिपूर्ण कुब्जा को भी कजली के आक्रमण से बचाया नहीं जा सका। और राधा नीलकण्ठ का इन्तजार करती हुई अकेली रह जाती है। महादेवी द्वारा किया गया इन पक्षियों का चित्रांकन अपने अलग-अलग स्वभाव तथा चारित्रिक विशेषताओं के कारण स्मरणीय बन गया है।

दूसरी कथा गिल्लू गिलहरी की है जो उन्हें घायलावस्था में प्राप्त होता है और अत्यधिक उपचार के बाद ही वह बच पाता है। महादेवी उसे गिल्लू नाम देकर उसकी जातिवाचक संज्ञा को व्यक्तिवाचक का रूप दे देती हैं। गिल्लू उनके साथ दो वर्ष तक रहा। वह उनका ध्यान आकर्षित करने के लिए कभी उनके कमरें में आते ही सर से पैर तक दौड़ लगाता, कभी घंटों मेज पर दीवारों के सहारे खड़े रहता, कभी फूलदान के फूलों में छिप जाता, कभी परदे की चुन्नट में और कभी सोनजुही की पत्तियों में। गिल्लू उनके साथ इतना घुलमिल गया था कि उनके साथ ही वह खाना खाता था। महादेवी लिखती हैं-'मेरे पास बहुत से पशु-पक्षी और उनका मुझसे लगाव भी कम नहीं है, परन्तु उनमें से किसी को मेरे साथ मेरी थाली में खाने की हिम्मत हुई है, ऐसा मुझे स्मरण नहीं आता।'[219] गिल्लू में मानवीय संवेदना भी है। मोटर दुर्घटना में महादेवी के घायल होने पर वह बराबर

उनके साथ रहता है। 'महादेवी लिखती है-'मेरी अस्वस्थता में वह तकिये पर सिरहाने बैठकर अपने नन्हें-नन्हें पंजों से मेरे सिर और बालों को इतने हौले-हौले सहलाता रहता कि उसका हटना एक परिचारिका के हटने के समान था'[220] और एक दिन वह महादेवी की उंगुली पकड़कर ही मर जाता है। उसे सोनजुही की लता के नीचे समाधि दी जाती है क्योंकि उसे वह लता सबसे प्रिय थी। महादेवी लिखती है-"इसलिए भी कि उस लघुगात का किसी बासन्ती दिन, जूही के पीताम छोटे फूल में खिल जाने का विश्वास, मुझे संतोष देता है।"[221]

महोदेवी के विशाल परिवार में सोना हिरनी का विशेष स्थान था जो आँगन से लेकर छात्रावास तक कुलाँचे भरा करती थी। उसका दिन भर का कार्यक्रम निश्चित था। वह सुबह दूध पीकर और भीगे चने खाकर कम्पाउण्ड में जाती, फिर छात्रावास के हर कमरे का निरीक्षण करती, उसके बाद घास के मैदान में घूमकर महादेवी के खाने के वक्त उनके पास पहुँच जाती। उनके प्रति स्नेह प्रदर्शन करने के लिए वह उनके सिर के सामने या पीछे से छलांग लगाकर सिर के ऊपर से दूसरी ओर निकल जाती या फिर उनकी साड़ी का छोर मुँह में भर लेती या फिर उनकी चोटी ही चबा लेती। महादेवी स्वीकार करती हैं कि हिरन को पालने के बाद ही यह जाना जा सकता है कि क्यों इस पशु को संस्कृत-ग्रंथों में इतना महत्व दिया गया। वे लिखती है-"पालने पर वह पशु न रहकर ऐसा स्नेह-संगी बन जाता है, जो मनुष्य के एकान्त शून्य को तो भर देता है, परन्तु खीझ उत्पन्न करने वाली जिज्ञासा से उसे बोझिल नहीं बनाता।"[222] सोना हिरनी का अन्त अत्यन्त मार्मिक है। महादेवी की अनुपस्थित में रस्सी से बंधी होने के कारण रस्सी की लम्बाई से भी अधिक ऊँची छलांग लगाती है और जमीन पर गिरकर अंतिम सांस लेती है। सोना की व्यथा-कथा के माध्यम से महादेवी शिकारियों के प्रति भी अपना आक्रोश और रोष व्यक्त करती हैं कि यह वर्ग कोमल और निरीह-प्राणियों को मारने को कैसे मनोरंजन के रूप में स्वीकार करता है। महादेवी प्रश्न करती हुई लिखती हैं-'पक्षि-जगत में ही नहीं, पशुजगत में भी मनुष्य की ध्वंस-लीला ऐसी ही निष्ठुर है। पशु-जगत में हिरन जैसा निरीह और सुन्दर दूसरा पशु नहीं है, उसकी आँखें तो मानो करुणा की चित्रलिपि हैं। परन्तु इसका भी गतिमय सजीव सौन्दर्य मनुष्य का मनोरंजन करने में असमर्थ है। मानव को जो जीवन का श्रेष्ठतम रूप है, जीवन के अन्य रूपों के प्रति इतनी वितृष्णा और विरक्ति और मृत्यु के प्रति इतना मोह और आकर्षण क्यों?'[223]

महादेवी के इस विचित्र और विशाल परिवार का एक अन्य सदस्य लड़ाकू, दुर्मुख और दुर्वासा जैसी संज्ञाओं से विभूषित खरगोश था। उसे 'लड़ाकू' संज्ञा सजातीय और विजातीय दोनों से ही मेल न रखने के कारण, 'दुर्मुख' कटखन्ने स्वभाव के कारण और 'दुर्वासा' अकारण क्रोधी प्रवृत्ति के कारण प्राप्त थी। उसके रूप का वर्णन महादेवी इस प्रकार करती हैं-'कुछ बड़े-बड़े सघन, कोमल और चमकीले फर के रोमों से उसका शरीर आच्छादित था, पूँछ छोटी और सुन्दर तथा पंजे स्वच्छ थे, जिनसे वह हर समय अपना मुख साफ करता रहता

था। कान विलायती खरगोशों के कानों के समान कुछ कम लम्बे थे, परन्तु उनकी सुडौलता और सीधे खड़े रहने में विशेष सौन्दर्य था।'[224] उसका एक कान काला और एक सफेद था तथा काले कान की ओर की आँख काली तथा सफेद कान की ओर की आँख लाल थी, जो ऐसी लगती थी 'मानों दो भिन्न खरगोशों का आधा-आधा शरीर जोड़कर एक बना दिया गया हो और आँखों में एक ओर नीलम और दूसरी ओर रूबी का चमकीला मनका जड़ दिया हो। स्वजाति की सतर्कता और आतंकित मुद्रा का उसमें सर्वथा अभाव था।[225] क्रोधी स्वभाव के कारण वह अपने दो बच्चों को मार डालता है तथा साँप पर भी अकारण झपट पड़ने के कारण अपने जीवन से उसे हाथ धोना पड़ता है। दुर्मुख की इस कथा से हमें खरगोश के स्वभाव की कुछ जानकारी भी होती है जैसे 'खरगोश जैसे जीव मिट्टी खोदकर अपने लिए निवास बनाकर ही प्रसन्न होते हैं' अथवा 'प्रायः खरगोश की गंध से साँप आ जाते हैं क्योंकि वह उसके प्रिय खाद्यों में से एक है।' महादेवी के खरगोश विषयक ज्ञान से हम विस्मित हुए बिना नहीं रहते।

महादेवी का विशाल परिवार तब तक सम्पूर्ण नहीं होता जब तक उसमें गौरागाय का प्रवेश नहीं होता क्योंकि गाय भारतीय समाज में हमेशा से आदरणीय रही हैं। महादेवी के घर में गाय के पहुँचने पर गुलाबों की माला डालकर, केशर-रोली का टीका लगाकर आरती उतारी जाती है। उस समय की सुषमा का वर्णन करते हुए महादेवी लिखती हैं-'उसकी बड़ी चमकीली और काली आँखों में जब आरती के दिये की लौ प्रति-फलित होकर झिलमिलाने लगी, तब कई दियों का भ्रम होने लगा। जान पड़ा जैसे रात में काली दिखने वाली लहर पर किसी ने कई दिये प्रकाशित कर दिये हों।'[226] गौरा शीघ्र ही सबसे हिलमिल गई और पशु पक्षी अपनी लघुता तथा उसकी विशालता का अन्तर भूलकर उसके पास खेलने लगे। गौरा ने एक वर्ष बाद गेरू जैसे लाल रंग के बछड़े को जन्म दिया जिसके माथे पर पान के आकार का श्वेत तिलक और चारों पैरों में खुरों के ऊपर सफेद वलय ऐसे लगते थे, मानो गेरू की बनी वत्समूर्ति को चाँदी के आभूषणों से अलंकृत कर दिया गया हो। फिर महादेवी के घर दुग्धोत्सव प्रारम्भ होता है और आसपास रहने वाले बालगोपाल से लेकर पशु पक्षी तक सभी को दूध मिलने लगता है और एक दिन महादेवी का ग्वाला गाय को गुड़ में सुई रखकर खिला देता है, जिससे रक्त-संचार रुक जाने के कारण गाय की मृत्यु हो जाती है।उसकी मृत्यु की प्रतीक्षा की घड़ियाँ अत्यन्त कठिन हो जाती है। महादेवी उस स्थिति का वर्णन निम्न शब्दों में करती हैं-''निरुपाय मृत्यु की प्रतीक्षा का मर्म वही जानता है, जिसे किसी असाध्य और मरणासन्न रोगी के पास बैठना पड़ता हो।'[227]

महादेवी के परिवार का एक अन्य सदस्य नीलू कुत्ता था जो अल्सेशियन माँ और भूटिया पिता की सन्तान था उन दोनों की विशेषताओं का उसमें जो समावेश था, उसकी ओर संकेत करती हुई महादेवी लिखती हैं कि- 'सिर ऊपर की ओर अन्य कुत्तों के सिर से बड़ा और चौड़ा था और नीचे लम्बोतरा, पर सुडौल। पूँछ

अल्सेशियन कुत्तों की पूँछ के समान सघन रोगों से युक्त, पर ऊपर की ओर मुड़ी कंडलीदार थी। पैर अल्सेशियन कुत्ते के पैरों के समान लम्बे पर पंजे भूटिये के समान मजबूत, चौड़े और मुड़े हुए नाखूनों से युक्त थे। शरीर में ऊपर का भाग चौड़ा, पर नीचे का पतले पेट के कारण हल्का और तीव्रगति का सहायक था। आँखे न काली थी, न भूरी और न कंजी। उन गोल और काली कोर वाली आँखों का रंग शहद के रंग के समान था, जो धूप में तरल सुनहला हो जाता था और छाया में जमें हुए मधु सा पारदर्शी लगता था।''[228] नीलू में स्वाभिमान भी था। यदि उसे अवज्ञा के साथ भोजन दिया जाय तो वह उसकी ओर देखता भी न था। इसके अतिरिक्त उसमें अन्य कुत्तों के समान खाने के लिए लालायित रहना, कृतज्ञता ज्ञापन के लिए अपने स्वामी को चाटना, याचक के समान पीछे-पीछे घूमना आदि विशेषताओं का अभाव था। परोपकारिता के कारण वह खरगोशों को जंगली बिल्ले से बचाने के लिए रात भर सुरंग के मुहाने पर खड़ा रहता है। महादेवी के साथ वह 14 वर्ष तक रहा था। उसकी मृत्यु भी दीनता से रहित थी। महादेवी लिखती हैं-''कुत्ते की मौत मरना कहावत है, परन्तु यदि नीलू के समान शांत निर्लिप्त भाव से कोई मृत्यु का सामना कर सके तो ऐसी मृत्यु मनुष्य को भी काम्य होगी।''[229]

महादेवी की स्मृति में मानवेतर प्राणियों में तीन ऐसे जीव सुरक्षित हैं जो बचपन में उनके साथ रहे। रोजी कुत्ती, निक्की नेवला तथा रानी घोड़ी। महादेवी में पशुप्रेम का आविर्भाव भी रोजी के साहचर्य से ही जाग्रत हुआ था जो उनके पांचवे जन्मदिन पर पिता के राजकुमार विद्यार्थी द्वारा भेंट में दी गई थी। वह महादेवी के कमरे में उनके साथ रहा करती थी। रोजी का रूप वर्णन तथा चारित्रिक विशेषता का वर्णन करते हुए वे लिखती हैं-'रोजी सफेद थी, किन्तु उसके छोटे सुडौल कानों के कोने, पूँछ का सिरा, माथे का मध्यभाग और पंजों का अग्रांश कत्थई रंग का होने के कारण उसमें कत्थई किनारे वाली सफेद साड़ी की सबल रंगीनी का आभास मिलता है। वह छोटी पर तेज है, टैरियर जाति की कुत्ती थी और कुछ प्रकृति से और कुछ हमारे साहचर्य से श्वान दुर्लभ विशेषताएं उत्पन्न हो जाने के कारण घर में उसे बच्चों के समान ही वात्सल्य मिलता था।[230] रोजी भ्रमण में तथा हर शैतानी के समय उनके साथ थी। ये सभी पिता के कॉलेज जाने तथा माता के गृहकार्य में व्यस्त रहने पर दोपहर में खिड़की के रास्ते निकलकर आम के वृक्ष से घिरे सूखे पोखर को विश्रामालय बनाते थे। वहीं से एक दिन रोजी कच्ची अंबिया के स्थान पर एक नेवले को उठा लाती है। महादेवी उस स्थिति का वर्णन करते हुए लिखती हैं-'उनकी नकुल सृष्टि का कोई लघु, परन्तु हमारे ही समान अराजकतावादी सदस्य, अपने सृजनकर्ताओं की दृष्टि बचाकर सूखी पत्तियों के समुद्र में ऊपर तैर आया था। पत्तियों से छोटा मुँह निकालकर उसने जैसे ही बाहर के संसार पर विस्मित दृष्टि डाली, वैसे ही अपने-आपको रोजी के छोटे और अंधेरे मुख-विवर में आया।[231] आकार में गिलहरी के समान नेवले को लेकर वे उसे घर लेकर आए और माता द्वारा उपदेश दिए

जाने पर उसे वापस उसके बिल में रखने भी गए। नेवले के माध्यम से महादेवी ने बालस्वभाव का मनोहारी चित्रण किया है-'छोटे से बिल में रात दिन पड़े माता-पिता को सामने बैठे रहने में जो कष्ट बच्चे को हो सकता है, उसका हम अनुमान कर सकते थे। यदि एक छोटे कमरे में हमें सामने बैठाकर बाबूजी रातदिन पढ़ाते रहे और माँ सिलाई-कढ़ाई में लगी रहें, तो हमारा क्या हाल होगा। ऐसी ही कोई अप्रिय स्थिति बिल में रही होगी, नहीं तो यह इतना छोटा बच्चा भागता ही क्यों?'[232] और बिल के न मिलने पर वह निराश होने के स्थान पर खुश होकर वापस आए। इस प्रकार उनके लघु परिवार में एक लघुतम सदस्य शामिल हो जाता है।

निक्की महादेवी के साथ रहता था और स्कूल जाने पर वह स्कूल के बाहर उनकी प्रतीक्षा किया करता था। निक्की के माध्यम से नेवले की विशेषताओं का उल्लेख करती हुई वे लिखती हैं -'नेवला बहुत स्नेही और अनुशासित जीव है। गिलहरी के खाने योग्य कीट, पंतग, फल, फूल आदि कोई भी खाद्य खाकर वह अपने पालने वाले के साथ चौबीस घंटों रह सकता है। जेब में, कन्धे पर, आस्तीन में, बालों में जहां कहीं भी उसे बैठा दिया जावे, वह शान्त स्थिर भाव से बैठकर अपनी चंचल पर सतर्क आँखों से चारों ओर की स्थिति देखता-परखता रहता है।'[233] नेवले की सर्प से दुश्मनी भी अत्यन्त पुरानी है। महादेवी नेवले के बारे में बताती है कि नितान्त निर्विष होने पर भी उसमें विषधर साँपों को मार डालने की अद्भुत शक्ति रहती है। साँप को मारने पर भी नेवला स्वयं साँप के विष से नहीं मरता और न साँप के साथ हुए संघर्ष में परास्त होता है।

इसी समय महादेवी के परिवार में बच्चों की सवारी के लिए रानी घोड़ी शामिल की जाती है, जो अत्यंत सुन्दर है। उसकी सुन्दरता का वर्णन करते हुए महादेवी लिखती हैं कि-"हल्का चाकलेटी चमकदार रंग, जिस पर दृष्टि फिसल जाती थी। खड़े छोटे कानों के बीच में माथे पर झूलता अयाल का गुच्छा, बड़ी, काली, स्वच्छ और पारदर्शी जैसी आँखें, लाल नथुने, जिन्हें फुला-फुलाकर वह चारों ओर की गन्ध लेती रहती।"[234] उस पर सवारी के लिए सभी का समय निश्चित था लेकिन महादेवी की विद्रोही प्रकृति इतने से संतुष्ट न थी और वे सबसे छुपाकर उस पर सवारी करती थी। एक दिन महादेवी के रानी घोड़ी पर बैठने पर उनका छोटा भाई उसे मार देता है। रानी घोड़ी नदी, नाले, सड़क, पेड़ आदि को पीछे छोड़ते हुए अत्यन्त तीव्रगति से दौड़ती है और महादेवी उसके ऊपर से गिर जाती हैं और उनके गिरने पर रानी पश्चाताप से मर जाती है-स्वस्थ होने पर, जब वह रानी के पास जाती है तो वह ऐसी करुण पश्चाताप भरी दृष्टि से उन्हें देखकर हिनहिनाने लगती कि उनके आँखों में आँसू आ जाते हैं। रानी उनके भाई के खोये हुए सोने के कड़े भी खोज देती है। कुछ समय बाद सभी पढ़ने के लिए बाहर चले जाते हैं और उनके वापस आने तक निक्की मर जाता है, रानी और उसका बच्चा किसी को दे दिए जाते हैं और रोजी अकेली रह जाती है।

'मेरा परिवार' में वर्णित पशुपक्षियों के इस विवरण से स्पष्ट है कि महादेवी ने अत्यन्त सूक्ष्मता के साथ इनकी चारित्रिक तथा स्वभावगत विशेषताओं का उल्लेख किया है। उनमें निरीक्षण शक्ति अत्यन्त प्रबल है। वे प्रत्येक चरित्र के रूप का वर्णन बड़ी बारीकी से करती हैं, जो उनके अद्भुत कला-कौशल का उत्कृष्ट नमूना है। इलाचन्द्र जोशी ने उचित ही लिखा है कि-"इन गद्यचित्रों के पात्र भले ही मानव न हों, पर हैं वे सब मानवीय संवेदना कें सूक्ष्मतर अनुभूति से ओतप्रोत हैं उन सभी मानवेतर पात्रों की गतिविधि की संचालिका के रूप में कवयित्री का व्यक्तित्व इन चित्रों में अपनी परिपूर्ण मानवीयता के साथ उभरकर पग-पग पर पाठक की चेतना के अणु-अणु में अपने अमृत-स्पर्श का संचार करता चला जाता है।"[235] वास्तव में 'मेरा परिवार' हिन्दी साहित्य की दुर्लभ कृति है।

गद्य रचनाएँ : भाषा और शिल्प

युग में आए हुए परिवर्तन के साथ विचारधारायें भी बदलती है और विचारधारा में हुए परिवर्तनों का प्रभाव साहित्य पर भी पड़ता है। हमारे आधुनिक काल के साहित्य की भी यही गति है। यद्यपि आधुनिक काल के साहित्य में पुरानी विधाएं तो सर्वस्वीकृत रही हैं, परन्तु साथ ही कुछ नई विधाओं ने भी साहित्य जगत में अपना स्थान बनाया। प्राचीन काव्य और कथा साहित्य में विषयगत तत्वों का जितना प्राधान्य था, अब वही स्थान आत्मगत तत्वों को मिल गया है। इसके लिए सर्वाधिक उपयुक्त माध्यम संस्मरण विधा है। संस्मरण में घटनाएँ स्वाभाविक रूप से क्रमबद्ध ढ़ंग से सामने नहीं आती, वरन् कोई घटना अथवा विषय स्मृति को इस प्रकार प्रभावित करता है कि स्मृति को अचानक उस विषय से सम्बंधित अतीत की अनेक भूली हुई बातें याद आ जाती हैं। वह उन्मुक्त भाव से अतीत में विचरण करने लगती है और अतीत की भूली हुई एक-एक घटना को हमारे सामने उसी प्रकार प्रस्तुत करती है, जिस प्रकार कंकड़ी की चोट से जल में जमा हुआ तत्व सतह पर उतराने लगता है।

समय की माँग के अनुसार जैसे-जैसे साहित्य में भावानुभूति प्रधान होने लगी है, वैसे ही उसको व्यक्त करने के साधन-भाषा तथा शैली में भी पर्याप्त अन्तर आ गया। वैज्ञानिक विकास ने जहाँ मानव को जीने के अनेक साधन सुलभ कराये, वहाँ उसके भावानुभवों को इतना उलझा दिया कि इन उलझी हुई भाव स्थितियों को व्यक्त करने के लिए शैली तथा भाषा में आए हुए परिवर्तन को सभी ने स्वीकार कर लिया। भाषा और शैली प्रत्येक लेखक की निजी विशेषता होती है। सभी लेखक एक ही बात को समान ढंग से व्यक्त नहीं करते। हर एक का ढंग अलग-अलग होता है। इस अलग-अलग ढंग से विचार प्रकट करने का तरीका ही शैली कहलाती है तथा विचार प्रकट करने के साधन को भाषा कहते हैं। जिस प्रकार महादेवी का गद्य साहित्य अपनी विषयगत

प्रवृत्तियों के कारण अनुपम बन पड़ा है उसी प्रकार उनकी भाषा शैली भी अभूतपूर्व है। महादेवी का गद्य कई प्रकार का है, अतः भाषा और शैली भी विषय के अनुसार कई प्रकार का है। संस्मरणात्मक साहित्य की भाषा जहाँ सहज, सरल और सरस है वहीं आलोचनात्मक निबंधों में उनकी भाषा संस्कृतगर्भित एवं क्लिष्ट भी हो गई है। नारी विषयक निबन्धों में विषयानुरूप वे उत्तेजित हो जाती हैं और इस उत्तेजना का प्रभाव उनकी भाषा और शैली पर भी पड़ता है, भाषा वहाँ ओजपूर्ण और कहीं-कहीं व्यंग्यात्मक भी हो गई है। महादेवी के गद्य साहित्य की भाषा के सम्बंध में हर्षनंदिनी भाटिया के विचार हैं कि -"उनके गद्य में उनके कवि हृदय की विशालता, उनकी कल्पना-शक्ति, उद्भावना-वृत्ति इतनी घुलमिल गई है कि उनका परिष्कृत गद्य जहां एक ओर चिन्तनपूर्ण हो गया है, वहाँ दूसरी ओर भावमय।"[236]

कोई भी कवि जब गद्य लेखन के क्षेत्र में प्रवृत्त होता है तो उसकी भाषा में काव्यात्मकता का आना स्वाभाविक ही है। महादेवी की कवित्व-प्रतिभा ने उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों का आश्रय लेकर संस्मरण की है। निबंध दोनों में ही बड़ी भावपूर्ण व्यंजना की है। उनकी कवित्व शक्ति के बल पर प्रकृति उनकी इन रचनाओं में कितनी सजीव हो उठी है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है-"फागुन की गुलाबी जाड़े की वह सुनहरी संध्या क्या भुलायी जा सकती है सबेरे के पुलक पंखी वैतालिक एक लयवती उड़ान में अपने-अपने नीड़ों की ओर लौट रहे थे। विरल बादलों के अंतराल से उन पर चलाए हुए सूर्य के सोने के शब्दवेधी बाण उनकी उन्मद गति में ही उलझकर लक्ष्य भ्रष्ट हो रहे थे।"[237]

संध्या समय गोधूलि के वातावरण को भी निम्न पंक्तियों ने जैसे हमारी आँखों के सम्मुख सजीव चित्र ही प्रस्तुत कर दिया गया है-"संध्या के लाल सुनहली आभा वाले उड़ते हुए दुकूल पर रात्रि ने मानो छिपकर अंजन की मूठ चला दी थी।"[238]

निबंधों में विचारात्मकता एवं आलोचनात्मकता का तत्व प्रधान होने के कारण भाषा क्लिष्ट तत्सम प्रधान एवं संस्कृतगर्भित हो गई है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है-"परिवर्तनों के कोलाहल में काव्य जब से मुकुट और तिलक से उतरकर मध्यवर्ग के हृदय का अतिथि हुआ तब से आज तक वही है और सत्य कहें तो कहना होगा कि उस हृदय की साधारणता ने कवि के नेत्रों से वैभव की चकाचौंध दूर कर दी और विषाद ने कवि को धर्मगत संकीर्णताओं के प्रति असहिष्णु बना दिया।"[239]

संस्मरणात्मक साहित्य की भाषा सहज, सरस, संयत, परिष्कृत एवं प्रौढ़ है। कबीर की भाँति बात को दरेरा देकर कहने की प्रवृत्ति भी उनमें विद्यमान है। प्रसंग के अनुकूल भाषा में हास्य, व्यंग्य और विनोद का भी समावेश हो जाता है। व्यंग्यात्मकता का निम्न उदाहरण द्रष्टव्य है- "वृद्ध जीवन के कम से कम 54 बसंत और

पतझड़ देख चुके होंगे। दो अर्धांगिनियाँ मानों उनके जीवन की द्रुतगति से पग न मिला सकने के कारण ही उनका संग छोड़ गयी हैं। उनसे मिले उपहार स्वरूप दो पुत्रों में से एक कलकत्ते में कोई व्यवसाय करता है और दूसरा ससुराल की धरोहर बन गया है। दो मकान और कुछ धन है, इसी से वानप्रस्थ आश्रम को भी कुछ सरस बनाए रखने के लिए वृद्ध महोदय को एक संगिनी ढूँढने की आवश्यकता जान पड़ी।"240

महादेवी ने अपनी बात को स्पष्ट करने के लिए अन्य भाषाओं के शब्दों को भी निस्संकोच अपनी भाषा में स्थान दिया है। इसलिए उनकी भाषा में स्थान-स्थान पर संस्कृत, तत्सम, तद्भव, अरबी, फारसी तथा अंग्रेजी आदि भाषाओं के शब्द भी मिलते हैं।-

संस्कृत शब्द— समृद्ध, आकुल, अवगुण्ठन, यवनिका, अरण्यरोदन, नवोढ़ा, अचिन्त्य, मूर्तिमत्ता, अनभिज्ञ, प्राचीर, कृश, तारुण्य, क्षुत्क्षाम, यथार्थवादी आदि शब्द।

फारसी शब्दी— लबालब, चीज़, हुलिया, निशान, शबनम, शबरात, बेहोशी, गुंजाइश, मर्सिया, मौलवी साहब, फिजूलखर्ची आदि शब्द।

अंग्रेजी शब्द— इंलार्जमेंट, कम्पाउण्ड, पेरिसप्लास्टर, ड्रामा, स्कूल, मास्टर, क्लेमॉडल, फोटोग्राफी, फ्लोरा, पोस्ट-आफिस, फिलॉसफी आदि शब्द।

आंचलिक शब्द— अपनन खौं, बींदनी, ओहीका, होइके, सियारन, ए मताई, छोड़ियो, मेहरारू, पथरौठी, बरेठिन, मचिया, बचिया, बांभनी, पथती, आदि शब्द।

शब्दयुग्म— लेखा-जोखा, टोने-टोटके, लिपे-पुते, भेंट-अंकवार, माँग-जाँच, बची-खुची, धूल-धूसरित, कल्याण-कामना आदि शब्द।

स्पष्ट है कि महादेवी की भाषा शब्द बिन्यास की दृष्टि से अत्यंत समृद्ध है। उनका मुख्य लक्ष्य अपनी बात को स्पष्ट करना रहा है और विभिन्न भाषाओं के शब्दों द्वारा उन्हें इसमें महारत भी प्राप्त हुई है। इतना ही नहीं, वरन् कहीं-कहीं तो वे नये नये शब्द भी गढ़ लेती हैं जैसे धृतराष्ट्रता। श्री रामस्वरूप चतुर्वेदी द्वारा किये गए प्रश्न के उत्तर में उन्होंने स्वयं स्वीकार किया हैं-"कोश उठाकर देखिए, कितने शब्द बनाए हैं। कितने शब्द माँजे हैं हमने। हर शब्द को तपाया है हमने, अपनी अनुभूति में उसे ढाला है।"[241]

वाक्य-विन्यास के दृष्टिकोण से भी महादेवी की भाषा समृद्ध रही है। वाक्य विचारों के अनुसार रहे हैं। जब वे किसी विषय पर अपनी दृष्टि केन्द्रित करती हैं तो जैसे वाक्य एक दूसरे से गुँथे हुए चले आते हैं। ऐसे स्थानों पर न तो उनके विचारों की श्रृंखला भंग होती है और न ही अनवरत् चले आ रहे वाक्यों का क्रम भंग

रूप भी स्थान-स्थान पर उपलब्ध होता है। भाषा के कारण ही महादेवी का गद्य साहित्य ओज और माधुर्य का अद्भुत सम्मिश्रण प्रस्तुत करता है।

भाषा के समान महादेवी की शैली भी विविधरूपिणी है। अपनी शैली के माध्यम से महादेवी किसी स्थान विशेष, घटना विशेष अथवा किसी पात्र के भावविशेष को लक्ष्य बनाकर बड़ी सफलता से पाठक के सामने रखती है। जैसे-घीसा को पढ़ाते वक्त उसके द्वारा उनको एकटक देखना शैली के माध्यम से ही मूर्तिमान हो उठा है-वे लिखती हैं कि-"उसकी सचेत आँखों में न जाने कौन-सी जिज्ञासा भरी थी। वे निरन्तर घड़ी की तरह खुली मेरे मुख पर टिकी रहती थीं। मानों मेरी सारी विद्या-बुद्धि को सीख लेना ही उनका ध्येय था।"[249]

महादेवी केवल भावविशेष अथवा घटना विशेष का ही वर्णन नहीं करती वरन् उस पृष्ठभूमि का भी भौतिक चित्रण प्रस्तुत करतीं है, जो घटना के साथ मिलकर उस वातावरण को और भी सजीव कर देती है। जैसे-पुरूष द्वारा छली गई बाल बिधवा को देखने जाते समय उनका ध्यान शहर की गंदगी की ओर भी जाता है और इस गंदगी का, उस सामाजिक गंदगी से, (जिसे महादेवी देखने जा रही हैं) मिलाकर देखने पर घटना का वातावरण के साथ बड़ा ही सटीक सामंजस्य निम्न पंक्तियों में देखने को मिलता है-"नगर की शिराओं के समान फैली और एक दूसरे से उलझी हुई गलियों से जिनमें दूषित रक्त जैसा नालियों का मैला पानी बहता है और रोग के कीटाणुओं की तरह नंगे-मैले बालक घूमते हैं।"[250]

वर्णनात्मक शैली के अलावा महादेवी की शैली की एक अन्य विशेषता विवरणात्मकता भी है, जिसमें विवरण को बिल्कुल सतही ढंग से प्रस्तुत कर दिया जाता है। जहां भावुकता का प्रधान्य हो गया है, वहाँ सरल भाषा में चित्र प्रस्तुत कर दिया गया है। जैसे निम्न उदाहरण में देखिए-"छोटी लाल कली जैसा मुँह नींद में खुल गया था और उस पर एक विचित्र-सी छोटी मुस्कराहट थी, मानों कोई सुंदर स्वप्न देख रहा हो। इसके आने से कितने भरे ह्रदय सूख गये, कितनी सूखी आँखों में बाढ़ आ गई और कितनों को जीवन की घड़ियाँ भरना दूभर हो गया, इसका इसे कोई ज्ञान नहीं।"[251]

इस शैली में कविता में पाई जाने वाली दुरूहता नहीं है। जनसाधारण में प्रचलित मुहावरों एवं लोकोक्तियों द्वारा एवं बोलचाल के शब्दों द्वारा शैली ओर भाषा में आत्मीयता आ गई है। ऐसा लगता है, "जैसे भागते हुए भाव रूपात्मकता या मूर्तिमत्ता की पकड़ में बाँध कर बिठा दिये जाते हैं, वैसे ही उफनते हुए विचार सूक्तियों के समास में बँधकर विलक्षण तीक्ष्णता धारण कर लेते हैं, गागर में सागर भर जाता है, बिहारी के दोहरों की भाँति।[252]

चित्रात्मकता महादेवी की शैली की प्रमुख विशेषता है। चाहे वह पात्र का हो या घटना अथवा स्थानविशेष का। पात्रों का चित्रण करते समय उसके व्यक्तित्व अथवा उसके अंगों के एक-एक पहलू का वे

चित्रण नहीं करती वरन् पहली दृष्टि में वे जैसे दिखाई देते हैं वैसा ही महादेवी उनका चित्रांकन कर देती है। वे उसके रूप को अवश्य इस प्रकार सामने ले आती हैं कि पाठकों के आगे उस पात्र की बिल्कुल सजीव मूर्ति ही गढ़ दी जाती है। सविया का उदाहरण दृष्टव्य है, जिसमें शब्दों के द्वारा महादेवी ने उसका चित्र खींचा है-"उसका मुख चिकनी काली मिट्टी से गढ़ा जान पड़ता था, परन्तु प्रत्येक रेखा में साँचे की वैसी ही सुडौलता थी, जैसी प्रायः पेरिस प्लास्टर की मूर्तियों में देखी जाती है। आँखों की गढ़न लम्बी न होकर गोल-गोल होने के कारण उनमें मेले में खोये बच्चे जैसी चकित दृष्टि थी। हाथ-पैर में मोटे-मोटे चमकहीन गिलट के कड़े उसे कैदी की स्थिति में डाल देते थे।"[253]

इसी प्रकार सुभद्रा कुमारी चौहान का चित्र महादेवी इन शब्दों में प्रस्तुत करती हैं-"कुछ गोल मुख, चौड़ा माथा, सरल भृकुटियाँ, बड़ी और भावस्नात आँखें, छोटी सुडौल नासिका, हँसी को जमा कर गढ़े हुए से ओंठ और दृढ़तासूचक ठुड्डी.... सब कुछ मिलाकर एक अत्यन्त निश्छल, कोमल, उदार व्यक्तित्व वाली भारतीय नारी का ही पता देते थे।"[254]

महादेवी वातावरण को पूरी सजीवता के साथ प्रस्तुत करने में सिद्धहस्त है।'अतीत के चलचित्र'के अन्तर्गत जहाँ घीसा का चित्रण है, वहीं पर महादेवी ने पूरे ग्रामीण वातावरण को उपस्थित किया है। पानी भरने के लिए आई उन स्त्रियों की एक एक वस्तु पर महादेवी की दृष्टि जाती है। इस चित्रांकन में महत्वपूर्ण बात महादेवी की अंतर्दृष्टि तो है ही, जो पात्रों की बाह्य विशेषताओं के साथ-साथ उनकी आंतरिक विशेषताआं का भी उद्घाटन कर देती है परन्तु सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात इन पात्रों के प्रति महादेवी की आत्मीयता तथा सहानुभूति है, जिसके कारण इनका निर्माण महादेवी ने कला के दृष्टिकोण से नहीं किया है, वरन् स्नेह के वशीभूत होकर किया है।

महादेवी के संस्मरणात्मक साहित्य की एक मुख्य विशेषता उसकी आत्मकथात्मक शैली है, जिसमें बनावट के लिए कोई स्थान नहीं है। इस शैली में जब तक लेखक अपने हृदय को पूर्णतया खोलकर सामने नहीं रखता तब तक सहृदय जन उसके साथ आत्मीयता का अनुभव नहीं करते। महादेवी ने इस विधा में अपने हृदय की सीवन को उधेड़ कर रख दिया है। उनके हृदय में करुणा की जो अजस्रधारा विद्यमान है, उसका स्रोत रामा, घीसा, अलोपी से शुरू होकर सबिया, बिट्टो, बिन्दा, लछमा, बिबिया, गुंगिया आदि के पास से होते हुए अपने समकालीन कवियों को भी उसमें बहा ले जाता है।

महादेवी सूक्तियों के प्रयोग में सिद्धहस्त हैं, जो अत्यन्त सारगर्भित है। निबंध साहित्य हों या संस्मरणात्मक साहित्य -महादेवी ने सूक्ति शैली का जमकर उपयोग किया है-

कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

1. छायावाद व्यथा का सवेरा है।[255]

2. कवि का दर्शन जीवन के प्रति उसकी आस्था का दूसरा नाम है।[256]

3. मनुष्य स्वयं एक सजीव कविता है।[257]

4. पुरुष समाज का न्याय है, तो सत्री दया, पुरुष प्रतिशोधमय क्रोध है, स्त्री क्षमा, पुरुष शुष्क कर्त्तव्य है, स्त्री सरस सहानुभूति...।[258]

इतना ही नहीं, कहीं कहीं तो वे अध्याय की समाप्ति भी सूक्ति के माध्यम से करती है। जैसे अलोपी के संस्मरण में। अंधे अलोपी का जीवन प्रकृति का क्रूर मजाक तो था ही उस पर पत्नी द्वारा किए विश्वासघात से तो उसका अन्त हो गया-महादेवी लिखती हैं कि-"नियति के व्यंग्य से जीवन और संसार के छल से मृत्यु पाने वाला अलोपी क्या मेरी ममता के लिए प्रेत होकर मंडराता रहेगा।"[259]

महादेवी की शैली में भावात्मकता का वहाँ प्राधान्य हो गया है, जहाँ उन्होंने करुणा और सहानुभूति से प्रेरित होकर चित्र खींचे है। निम्न उद्धरण में महादेवी द्वारा अनुभूत करुणा से पाठक का भी साधारणीकरण होता है। वे लिखती हैं कि-"स्मरण नहीं आता वैसी करुणा मैंने कहीं और देखी है। खाट पर बिछी मैली दरी, सहस्त्रों सिकुड़न भरी मलिन चादर और तेल के कई धब्बे वाले तकिये के साथ मैंने जिस दयनीय मूर्ति से साक्षात किया उसका ठीक चित्र दे सकना सम्भव नहीं है।[260]

महादेवी के संस्मरणात्मक साहित्य के अधिकांश पात्र ग्रामीण क्षेत्रों से आए हुए हैं। इसलिए इन पात्रों के मनोभावों के सजीव चित्रण के लिए महादेवी ने संवाद शैली का आश्रय लिया है और संवाद भी उनकी अपनी बोली में, जिससे सम्पूर्ण वातावरण ही जीवन्त हो उठता है। 'स्मृति की रेखाएँ' में मुन्नू के संस्मरण में महादेवी द्वारा गाँव जाकर एक ग्रामीण स्त्री से यह पूछने पर, यह किसका घर है? और उत्तर-"तोहका का करै का है! शहराती मेहरारुन के कामकाज नाहिन बा जौन हियाँ-उहाँ गस्ता घूमै चल देती है?" और भक्तिन द्वारा उसको दिया गया उत्तर-"शहर माँ शोर परा है कि ई गाँव की मलका कण्डा बिनती है, गोबर पथती है, तौन के उनही के दरसन बरे दौरत आइत है। अउर का।"[261] पूरे ग्रामीण वातावरण को सजीव कर देता है और पाठक इस वार्तालाप से प्रभावित हुए बिना नहीं रहता।

शैली तो जैसे महादेवी की दासी बन गई है। व्यंग्य की तेज धार से समाज की सारी ढोंग से भरी हुई गम्भीरता को वे लाक्षणिकता के साथ उधेड़ कर रख देती है। वेश्या पुत्री के सम्बंध में वे समाज पर अत्यन्त

चुटीला व्यंग्य कसती हैं-वे लिखती हैं कि-"वह पतित कही जाने वाली माँ की पुत्री है और बिना समाज के प्रवेशपत्र के ही साध्वी स्त्रियों के मंदिर में प्रवेश करना चाहती थी। उसे पता नहीं कि समाज के पास वह जादू की छड़ी है, जिससे छूकर वह जिस स्त्री को सती कह देती है, केवल वही सती होने का सौभाग्य प्राप्त कर सकती है।"262

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि महादेवी भाषा और शैली के क्षेत्र में पूर्ण निपुण है। पद्य के क्षेत्र से जब वह गद्य क्षेत्र में आती हैं तो भाव में परिवर्तन के साथ उनकी भाषा शैली में परिवर्तन लक्षित होता है। प्रारम्भ में लिखे गए संस्मरणात्मक साहित्य में जहाँ उनकी भाषा कवित्वपूर्ण, तत्सम-तद्भव शब्दों से अलंकृत है, वहीं पर जब व निबंध के क्षेत्र में आती हैं तो भाषा में प्रौढ़ता के साथ शैली भी और विकसित हो जाती है। अलंकर, सूक्तिकथन, लाक्षणिक-वैचित्र्य, कथनवक्रता आदि के द्वारा वे अपनी बात को स्पष्ट करती हैं। सूर्य प्रसाद दीक्षित ने ठीक ही लिखा है-"वह भावानुकूल भाषा का निर्माण करने में समर्थ है। हास्य रसपूर्ण प्रसंगों में उनका प्रत्येक शब्द क्रीड़ा करता है।"[263] इसी प्रकार उनकी शैली के सम्बंध में वीणा पत्रिका में की गई निम्न टिप्पणी अत्यन्त महत्वपूर्ण है-"लट्ठमार शैली में, धधकते हुए शब्दों में समाज के नंगेपन के चित्र या कैरिकेचर हिन्दी में इतने अधिक खींचे गए कि जिस संयत शैली से महादेवी ने इस विषय पर कलम उठायी वह न केवल अपने उद्देश्य में सफल ही होती है, बल्कि विषय को एक नवीन पहलू से हमारे सामने उपस्थित करती है।"[264]

महादेवी के गद्य को लेकर उठाए गए विवाद-

पद्य साहित्य के समान महादेवी का गद्य साहित्य भी आलोचकों की दृष्टि से ओझल न हो सका और विद्वान आलोचकों ने गद्य कृतियों के वर्ण्यविषय के सम्बंध में अनेक विवाद उठाये हैं। यह विवाद उनके संस्मरणात्मक साहित्य पर तो है ही, साथ ही निबंध साहित्य भी इनसे नहीं बच सका। महादेवी के गद्य साहित्य में नारी के प्रति जो एक सम्मानित दृष्टिकोण दिखाई पड़ता है, उसका कारण अधिकांश विद्वानों ने दाम्पत्यजीवन की असफलता से जोड़ा है। डा0 प्रेमलता कुमारी ने अपने लेख में लिखा है-"कुछ विद्वानों ने महादेवी पर यह आक्षेप किया है कि दाम्पत्यजीवन की असफलता के कारण ही नारी के प्रति उनकी भावनाएँ बहुत पक्षपातपूर्ण है और पुरुष के प्रति वे सदा आक्रोश और विद्रोह से भरी रहती हैं।"[265]

महादेवी पर लगाया गया यह आक्षेप पूर्णतया निराधार है। महादेवी की सहानुभूति एवं संवेदना सिर्फ नारी-वर्ग तक ही सीमित नहीं है वरन् पुरुष वर्ग भी सहज ही उनकी ममता का अधिकारी रहा है। रामा, चीनी फेरीवाला, अलोपी, ठकुरी बाबा, घीसा, बदलू कुम्हार और जंगिया तथा धनसिंह के पात्रों का चरित्रांकन भी महादेवी ने उतनी ही आत्मीयता के साथ किया है जितनी आत्मीयता के साथ सबिया, विधवा भाभी, बिन्दा,

बिट्टो, वेश्यापुत्री आदि का चित्रांकन किया है। हाँ! महादेवी के 'शृंखला की कड़ियाँ' नामक निबंध में प्रथम दृष्टया ऐसा लग सकता है कि वे पुरुषों के प्रति पक्षपातपूर्ण रही हैं पर यहाँ पर भी इस दृष्टि की ओर आलोचकवर्ग का ध्यान नहीं जाता कि आधुनिक नारी को वे अपने कर्तव्य पालन के लिए निरन्तर सचेत भी करती चलती है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है- 'अच्छा होता यदि स्त्री प्रतिद्वंदिता के क्षेत्र में बिना उतरे हुए ही अपने उपयोगिता के बल पर स्वत्वों की मांग सामने रखती।''[266] यह अवश्य स्वीकार करना पड़ता है कि स्त्रियों को निर्देश देते वक्त उनकी वाणी संयम में बँधी है। पुरुषप्रधान समाज पर स्त्रियों पर होने वाले अत्याचारों का वर्णन करते समय वह विद्रोही और तेज हो जाती है। ऐसा लगता है कि-उस समाज में स्त्रियों की वस्तु स्थिति ही ऐसी थी कि उनका चित्रण करने वाले किसी भी सच्चे चिन्तक में उनके प्रति सहानुभूति का उदय हो जाना स्वाभाविक ही था।

महादेवी पर एक आरोप यह लगाया जाता है कि उन्होंने समस्या को ज्यों का त्यों सामने रख दिया है, उसके समाधान के प्रति वे पूर्णतया उदासीन रहती हैं। आनन्द माधव मिश्र अपने एक लेख में लिखते है-"उनके कला कुशल कलाकार ने बड़ी ही मार्मिक भाषा और शैली में उनके चित्र उतारे हैं पर उनकी स्थिति समाधान के नाम पर उनकी समस्याओं के हल के प्रश्न पर उनका कलाकार पलथी मारकर मौन संन्यासी की नाईं बैठ जाता है। वह किसी स्पष्ट सामाजिक हल की ओर न इशारा करता है और न प्रयास। उसकी इस अवगुण्ठा के पीछे या उनका काव्यदर्शन है, जो उन्हें रहस्य के गहरे अंधेरे में भुलावा देता है या उनके कलाकार की साहित्य के शिवं पक्ष की साधना की ओर से उदासीनता, जिसके तल में युगीन जीवन दर्शन का अभाव निहित है। सत्यम्-सुन्दरम् के साथ शिवं का भी कला में उतना ही महत्वपूर्ण स्थान है। यह कहना कोई अनर्गल प्रलाप न होगा कि महादेवी का संस्मरणात्मक साहित्य जितना अपने सत्यम् और सुन्दरम् के लिए धनी है, उतना शिवम् के लिए नहीं।''[267]

इन समस्याओं के समाधान की जहाँ तक बात है, महादेवी ने व्यावहारिक जीवन के आधार पर कुछ समस्याओं का हल तो प्रस्तुत किया है। परन्तु यह सच है कि वे सर्वत्र ऐसा कर पाने में असफल रही हैं। यद्यपि अपनी विरोधभरी वाणी द्वारा उन्होंने नारी शक्ति को जाग्रत करने का प्रयास तो निरन्तर किया है। अतीत के चलचित्र में एक स्थान पर बड़े ही विश्वास के साथ उन्होंने लिखा है-"फिर भी स्त्री को हारा हुआ मेरा मन कैसे स्वीकार करे, जब तक उसके परिस्थितियों से चूर-चूर हृदय में भी आलोक की लौ जल रही है।''[268] इन समस्याओं का एकमात्र समाधान स्त्री द्वारा आत्मशक्ति जाग्रत करना है और जब तक वह समर्थ होकर पुरुष के इन अत्याचारों का विरोध करते हुए स्वावलम्बी नहीं बनती, तब तक उसकी स्थिति में सुधार की कोई सम्भावना नहीं है।

प्रायः आलोचक वर्ग वर्तमान समय में दो जीवन धाराओं का विकास होना मानते हैं। इनमें से एक जीवन के प्रश्नों का हल अध्यात्म में ढूँढती है और दूसरी द्वन्द्वात्मक ढंग से जीवन के प्रश्नों को देखती हैं और उनका समाधान करती हैं। लेकिन इसी सन्दर्भ में आनन्दमाधव मिश्र का विचार है कि "महादेवी जी सब कुछ स्वान्तः सुखाय ही लिखती जाती है। इन दोनों धाराओं से अलिप्त अछूती रहकर। जहाँ उनके कलाकार ने कुछ विचारने का प्रयास किया, वहाँ भावुकता ने चिन्तन को गहरा न होने देकर कल्पना के पंखों पर ही उड़ाकर कलाकार को उस ठोस भूमि से टकराने से बचा लिया है।"[269]

महादेवी ने अक्सर इन स्त्रियों की समस्याओं के समाधान के विषय में कुछ कहा भी है तो वहाँ वे सिर्फ उनकी करुणा और संवेदना से प्रेरित होकर ही कहती है इसी विचार की दृष्टि से आनन्दमाधव मिश्र का निम्न वक्तव्य जहाँ वे महादेवी के गद्य साहित्य से ही एक उदाहरण लेकर लिखते हैं कि- "यदि ये स्त्रियाँ अपने शिशु को गोद में लेकर साहस से कह सकें कि "बर्बरों, तुमने हमारा नारीत्व, पत्नीत्व सब ले लिया, पर हम अपना मातृत्व किसी प्रकार न देंगी, तो इनकी समस्यायें तुरन्त सुलझ जावें।" क्या यह कवि कल्पना सी सहज उड़ान नहीं है? नारी की समस्या यही तक सीमित नहीं है- न अवैध संतान वाली माँ की, न रूप व्यापार करने वाली वेश्या की, न समाज के पहिए में पिसने वाली एक पतिव्रता की। उनकी समस्याओं की जड़ तो सामाजिक व्यवस्था के मूल में है, जिसमें आमूल परिवर्तन हुए बिना कुछ भी, किसी के लिए संभव नहीं है।"[270]

वास्तव में इन समस्याओं का समाधान तभी सम्भव हो सकता है जब एक तो सामाजिक व्यवस्था में आमूल परिवर्तन हो, पुरुषों को सार्वभौमिक समझने की मनोवृत्ति का अन्त हो, समाज में विद्यमान आर्थिक असमानता का दुष्चक्र टूटे और यह भी सच है कि इसके लिए प्रथम प्रयास भी नारी को ही करना होगा। महादेवी के समय में विद्यमान समस्यायें दशकों का व्यवधान पार करने के बाद भी आज ज्यों की त्यों है। हाँ! समस्या के मूल स्वरूप में थोड़ा अन्तर अवश्य आया है। लेकिन लक्ष्य केवल कुछ स्त्रियों को स्वतंत्रता, समानता देना नहीं है, वरन् जब तक सम्पूर्ण नारी जाति को ये अधिकार नहीं मिलते तब तक कुछ नारियों द्वारा स्वयं को स्वतंत्र मानना एक आधा अधूरा बदलाव मात्र है।

महादेवी पर एक आक्षेप यह लगाया जाता है कि छायावादी महादेवी प्रगतिवादी नहीं बन पाई हैं अथवा प्रगतिवाद अथवा प्रयोगवाद पर उनकी आस्था नहीं है, और यह कहा जाता है कि युग चेतना के अनुरूप वह विद्रोहिणी नहीं है। इस आक्षेप का जवाब ओंकार राही इन शब्दों में देते हैं -"गद्यकार महादेवी वादों से मुक्ति पा गई है और विशेषकर इन तीन संग्रहों में-क्योंकि उनकी मार्मिक करुणा में शाश्वत नारीत्व का रूप अधिक प्रभावोत्पादक बन गया है। महादेवी ने कुछ शाश्वत पात्रों का चयन किया है। यथा चीनी फेरी वाला, रामा, बदलू कुम्हार -ये सभी युग के प्रतिनिधि हैं।"[271]

महादेवी नारी की हीनदशा पर जहाँ आक्रोश अथवा विद्रोह व्यक्त करती हैं, उसे अधिकांश आलोचकों ने भावुकता से प्रेरित माना है क्योंकि जब स्वयं महादेवी को एक ऐसा अवसर उपलब्ध होता है तो वे समाज के डर से पीछे हट जाती है। उसी समाज से- जिसकी पुरुष प्रधान प्रवृत्ति को वे ढोंग मानती है, जिसकी अपने ग्रंथों में कटु आलोचना करती है। वह स्थल है-अतीत के चलचित्र में "वेश्यापुत्री द्वारा उनसे काम मांगने के लिए उनके पास जाना और वे लिखती हैं-"उस रात कितनी देर तक मैं इस समस्या में उलझी रही, यह याद नहीं आता, पर कोई समाधान न निकल सका। अपने पति की प्रतिष्ठा के लिए और अपने आत्मसम्मान के लिए भी वह दान नहीं स्वीकार करेगी... और काम देने की बात स्मरण कर मेरे ओंठों में एक व्यंग्य की हँसी आये बिना न रह सकी। वह क्या जाने उसकी उपस्थिति क्या-क्या अनर्थ कर सकती है।"[272] क्या महादेवी उसकी सहायता करके एक आदर्श उपस्थित नहीं कर सकती थीं। क्या महादेवी द्वारा उसे ऐसे काम दिया जाना, जिनकी कोई महत्ता ही न थी, उचित था। उन्होंने लिखा है-"तब मैंने क्या किया, इसकी कथा मनोविज्ञान सम्बंधी मेरे अज्ञान को प्रकट करती है। कभी कोई ऐसा लेख नकल करने के लिए दे दिया, जिसके पृष्ठों का कोई उपयोग ही शेष न रहा था। कभी कोई ऐसा पत्र लिखवा दिया जिससे रद्दी कागजों की टोकरी का ही गौरव बढ़ता था।[273] क्या महादेवी द्वारा काम देने का यह अभिनय किया जाना उचित था।

प्रो0 अशोक भी अपने लेख में महादेवी की विद्रोही वाणी को भावुकता से प्रेरित मानते हैं। वे लिखते है -"उसका रुख समाज के प्रति शांत उपेक्षा का है, अधिक से अधिक समाज उससे व्यंग्य प्राप्त कर सकता है। फिर समाज की नैतिकता क्या है! संस्कार की जड़ता। उसके जादू भरे दायरे के बाहर के प्राणी को सहज मानवता का भी अधिकार नहीं है, जब समाज के निर्मम बहिष्कार से विवश नारी जिसका दोष यह था कि वह पतिता की पत्नी थी, उसके पास, अपने उस पति की बीमारी के कारण, जिसने एक ऊपर उठते हुए प्राणी की उंगली पकड़ने का महत्व प्राप्त किया है, सहायता मांगने आती है, तो लेखिका उसके दुस्साहस पर ही आश्चर्य करती है, समाज पर रोष नहीं।"[274]

रेखा अवस्थी महादेवी की गद्य कृतियों में व्यक्त यथार्थवादी रुझान को तो स्वीकार करती हैं। लेकिन वे मानती है कि इन शोषित की पीड़ा के कारण को महादेवी स्पष्ट नहीं करती। रेखा अवस्थी इसी को महादेवी की सीमा मानती हैं। वे लिखती है "अपने भाववादी दर्शन के कारण लेखिका 'घरों को लीपने के लिए सदैव तत्पर रहती है, घीसा, मुन्नू और विविया जैसे चरित्रों से उन्हें सहज ममता हो जाती है। भाभी की दुर्दशा देख मन व्यथित हो उठता है और रंगीन कपड़ों से सदा के लिए वितृष्णा हो जाती है। परन्तु घीसा, भाभी, लछमा, मुन्नू की माई क्यों उत्पीड़ित हैं, उन्हें किसने उत्पीड़ित बना रखा है, इनकी इन दयनीय स्थितियों के लिए जिम्मेदार कौन हैं- इसका उल्लेख या संकेत इन स्केचों में ढूँढने पर भी नही मिलता है। अर्थात इन वस्तुन्मुखी

स्केचों में वर्गशत्रु की पहचान गायब है। वर्गशत्रु पर चोट करने के स्थान पर नियति एवं भाग्य की विडम्बना जैसे जुमलों से शोषकों की विचारधारा का ही प्रचार मिलता है।''[275]

महादेवी अपनी इन गद्य कृतियों में उत्पीड़ित वर्ग द्वारा अपनी मुक्ति के लिए किये जा रहे सामूहिक प्रयत्नों का कहीं उल्लेख नहीं करती। इसी सन्दर्भ में रेखा अवस्थी आगे लिखती हैं- यह महादेवी वर्मा के संकुचित दृष्टिक्षेत्र एवं मध्यवर्गीय संस्कारों का दोष है कि वे मुन्नू जैसे मेधावी बालकों का भविष्य 'अपराध क्षेत्र' में देख पाती है या लछमा के मुँह से ''हम तो ऐसे ही जंगली हैं हमें क्या चाहिए'' जैसे वाक्य कहलाकर मध्यवर्ग के अहम् को संतुष्ट करना चाहती है।''[276]

'पथ के साथी' के संबंध में रेखा अवस्थी का विचार है कि '' विशिष्ट व्यक्तियों के विशिष्ट संस्मरण होने के कारण तथा उनके सामाजिक सम्बंधों का टाइप चित्रण न होने के कारण इन स्केचों में संवेदना एवं भावमयता का अभाव प्रतीत होता है।''[277]

'मेरा परिवार' में महादेवी ने अपने पशुपक्षियों के साथ जैसी आत्मीयता प्रदर्शित की है वैसी ही आत्मीयता प्रेमचन्द की अपने पशुओं के प्रति रहीं है। अन्तर सिर्फ इतना है कि प्रेमचन्द का इन पात्रों के साथ रोजी रोटी का सम्बंध रहा है, यद्यपि महादेवी ने भी उसी संवेदना को गिल्लू, गौरा और नीलकंठ में उभारने की कोशिश की, परन्तु उन्हें सफलता नहीं मिल सकी। रेखा अवस्थी का विचार है कि ''यह उनकी पूँजीवादी करुणा ही है, जिसका प्रसार मनुष्य से लेकर जानवरों के बीच हो गया है।''[278]

अमृतराय का विचार है कि महादेवी नारी स्वाधीनता से सम्बंधित प्रश्नों पर समाजवाद से प्रभावित हैं। वे लिखते हैं कि ''नारी की परवशता का जो मूल कारण समाजवाद बतलाता है, महादेवी भी अपने धर्मक्षेत्र के आधार पर उससे सहमत है। जीवन के प्रति महादेवी का दृष्टिकोण भी स्वस्थ गांधीवादी है, इसमें सन्देह नहीं, किन्तु नारी स्वाधीनता के प्रश्न पर समाजवाद के ही अधिक समीप हैं। गांधीवाद में नारी को घर ही में सीमित रखने का जो आग्रह है, उसे महादेवी स्वीकार नहीं करती।[279]

लेकिन अमृतराय के विचार के ठीक लेकिन विपरीत रामविलास शर्मा का मत है कि ''महादेवी जी में जनसाधारण के प्रति बौद्धिक सहानुभूति ही नहीं है, उन्हें पीड़ित जनता से हार्दिक सहानुभूति है। पंतजी 'ग्राम्या' में बौद्धिक सहानुभूति की रेखा तक आकर वापस लौट गये। महादेवी जी अपने गद्य में इस ओर उनसे कहीं अधिक आगे बढ़ी है। छायावादी कवियों में केवल 'चतुरी चमार' और 'बिल्लेसुर बकरिहा' का रचयिता निराला उनसे इस बात में आगे हैं। महादेवी जी की यह सहानुभूति बड़ी मूल्यवान है। उसके बल पर वह समाज में पीड़ित जनों के अनेक मर्मस्पर्शी चित्र दे सकी हैं। फिर भी इस सहानुभूति की सीमाओं को न पहचानना और

नारी समस्या के प्रति उनके दृष्टिकोण को लेनिन के दृष्टिकोण से तुलना करना अपने को और दूसरे को धोखा देना है।''[280]

महादेवी का निबंध साहित्य भी विवादों से परे नहीं रहा है। 'साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध में महादेवी ने जहाँ निबन्ध का आश्रय लेकर अपनी काव्यगत मान्यताओं को स्पष्ट किया है और साथ ही छायावाद की आलोचना को शान्त करने का प्रयास किया है, वहीं विद्वान आलोचकों ने उसमें भी विवादों के लिए जगह बना ही ली है। डा0 नगेन्द्र का महादेवी के आलोचनात्मक निबन्धों पर यह आक्षेप है-''महादेवी के साहित्यिक भाव नैतिकता के बोझ से काफी दबे हैं, इसमें सन्देह नहीं। इसमें उनका स्त्रीत्व बाधक हुआ है, जो मर्यादा से बाहर जीवन की मुक्ति खोजने का अभ्यासी नहीं है और वास्तव में अभी महादेवी की दृष्टि पूर्ण सामंजस्य की अधिकारिणी भी नहीं हो पाई है क्योंकि उसमें पुरुषत्व से भिन्न नारीत्व की इतनी प्रखर चेतना वर्तमान है कि वह पुरुष को आततायी प्रतिद्वंदी के अतिरिक्त और कुछ कठिनाई से ही समझ पाती है। महादेवी जैसे उन्नत व्यक्तित्व में यह भाव अवश्य ही किसी ग्रन्थि की ही अभिव्यक्ति है, जो अभी उलझी रह गई है।[281]

महादेवी की छायावाद संबंधी उद्भावना की आलोचना करते हुए विद्वान आलोचक का मत है कि ''महादेवी ने छायावाद की तन्वी कविता पर दर्शन का बोझ कुछ अधिक ही लाद दिया है।[282] डा0 नगेन्द्र ने छायावाद को द्विवेदी युगीन स्थूल प्रवृत्तियों के विरोध में जगी हुई जीवन के प्रति एक रोमांटिक प्रतिक्रिया मानते हैं, जिसमें रहस्य की ओर उन्मुख भावुकता अधिक थी। डा0 नगेन्द्र ने छायावाद के जन्म का मूलकारण व्यक्तिगत कुण्ठा और अवृप्तियों के दमन में देखते हैं। उनका माना है कि ''गत युद्ध के बाद जिन कवियों के ह्दय से छायावाद की कविता उद्भूत हुई उन पर किसी प्रकार आध्यात्मिक अनुभूति का आरोप नहीं किया जा सकता। इसके अतिरिक्त उस अवस्था में तो कोई विशेष परिष्कृति भी सम्भव नहीं थी—वह उन कवियों का तारुण्य था जब मन की सहज भावनायें अभिव्यक्ति के लिए आकुल हो रहीं थी। बाद में प्रसाद या महादेवी भारतीय अध्यात्म दर्शन के सहारे, अथवा पन्त देश विदेश के भौतिक सर्वहित वादी दर्शनों के आधार पर, उसे परिशुद्ध एवं संस्कृत भले ही कर पाये हो, परन्तु आरम्भ से कोई दिव्य प्रेरणा उन्हें थी, यह मानना असत्य होगा।''[283]

नगेन्द्र आगे लिखते हैं कि ''महादेवी ने कविता की तात्विक परिभाषा में छायावाद को कुछ ऐसा फिट कर दिया है कि वह कविता के परिपूर्ण क्षणों की वाणी ही लगता है—यह स्वभावतः असत्य है। छायावाद की अपनी सीमायें हैं। उसकी कविताओं में जितनी सूक्ष्मता है; उतनी शक्ति नहीं है; जितनी सकुकुमारता है उतनी तीव्रता नहीं है; जितना अरुप चिन्तन है उतना मांसल रस नहीं आ सका है। इसका निषेध कैसे किया जा सकता है। हमारे दो प्रतिनिधि कवि पन्त और महादेवी जीवन में पूरी तरह से उतर ही नहीं पाए। जब

जीवन की भूख तड़पती थी, तब तो परिस्थितिवश वे उसे झुठलाते रहे और जब भूख मन्द पड़ गई, तब वे जीवन में उतरे, पर इस समय उसका संस्कार करने के अतिरिक्त उनके पास दूसरा कोई उपाय नहीं रहा। संस्कार में रस तभी आता है; जब उसके द्वारा खौलती हुई वासनाओं से संघर्ष कर उन पर विजय प्राप्त की जाती है। प्रासाद और निराला में स्थान-स्थान पर यह भूख हुँकार उठी है और वहीं वे महान काव्य की सृष्टि कर सके हैं।''[284]

इस प्रकार महादेवी और छायावाद को लेकर आलोचकों की दो दृष्टियाँ हमारे सामने आती हैं एक वर्ग वह है जो महादेवी के समर्थन में खड़ा है और दूसरी ओर वह वर्ग है जो निरन्तर इनकी आलोचना में प्रवृत्त था। उस समय उठाए गए छायावाद सम्बंधी विवाद प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी के रचनासंसार के सन्दर्भ में थे। निश्चय ही महादेवी की गद्य रचनाओं में जो प्रगतिशील चिंतन का तत्व विद्यमान है वह प्रश्न के रूप में ही हमारे सामने आते हैं। कुछ हद तक उनके प्रति सहानुभूति भी मिलती है किन्तु वे प्रश्न अपने समाधान की पूर्णता को प्राप्त करने में असफल ही रहे हैं। यह महादेवी के आदर्शात्मक चिन्तन की प्रक्रिया तो हो सकती है किन्तु यह यथार्थ चिन्तन की भावभूमि से प्रायः सघन ढंग से जुड़ती हुई नहीं दिखती।

* * *

सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची

1. साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध, महादेवी वर्मा, पृष्ठ संख्या—63
2. साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध, महादेवी वर्मा, पृष्ठ संख्या—62
3. महादेवी साहित्य समग्र; भाग-एक (सं.) निर्मला जैन, 'भूमिका से'।
4. महादेवी साहित्य समग्र; भाग-एक (सं.) निर्मला जैन, 'भूमिका से'।
5. शृंखला की कड़ियाँ, महादेवी वर्मा, पृष्ठ सं.—7
6. शृंखला की कड़ियाँ, महादेवी वर्मा, पृष्ठ सं.—7
7. आधुनिक कवि, महादेवी वर्मा, पृ. सं.—36
8. दीपशिखा, महादेवी वर्मा, पृष्ठ सं.—56
9. 'चिन्तन के क्षण में' महादेवी वर्मा 'महादेवी साहित्य समग्र—3' सं. - निर्मला जैन, पृ. सं. 404
10. महादेवी साहित्य समग्र; भाग-एक महादेवी वर्मा (सं.) निर्मला जैन, 'भूमिका से'।
11. मेरा परिवार, महादेवी वर्मा पृ. सं.—11
12. महादेवी साहित्य समग्र-3 सं. निर्मला जैन, पृ.सं—412
13. महादेवी, (सं.-इन्द्रनाथ मदान) ले.-सूर्य प्रसाद दीक्षित, पृ. सं.—197
14. महादेवी साहित्य समग्र-3 सं. निर्मला जैन, पृ.सं—414
15. नीहार, महादेवी वर्मा, पृ. सं.—43
16. सान्ध्यगीत, महादेवी वर्मा,पृ. सं.—31
17. अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ. सं.—56
18. नीरजा, महादेवी वर्मा, पृ. सं.—21

20. स्मृति की रेखाएँ, महादेवी वर्मा, पृ. सं.—55

21. महादेवी साहित्य समग्र-1,सं. निर्मला जैन, 'भूमिका से'

22. साहित्य संदेश, दिसम्बर 1966, लेखिका – प्रा0 कु0 प्रेमलता, पृ. सं. 213.

23. साहित्य संदेश, रेखाचित्र और संस्मरण, डा. विश्वनाथ शुक्ल, पृ. सं. 80

24. शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त, द्वितीय भाग, गोविन्द त्रिगुणायत पृ. सं.—497

25. संस्मरण, महादेवी वर्मा, 'आत्मकथ्य' से

26. गद्यकार महादेवी वर्मा, वीरेन्द्र कुमार बड़सूवाला, पृ. सं. 86

27. गद्यकार महादेवी वर्मा, वीरेन्द्र कुमार बड़सूवाला, पृ. सं. 86

28. गद्यकार महादेवी वर्मा, वीरेन्द्र कुमार बड़सूवाला, पृ. सं. 104

29. गद्यकार महादेवी वर्मा, वीरेन्द्र कुमार बड़ सूवाला, पृ. सं. 138

30. महादेवी और उनकी गद्य रचनाएँ, माधवी राजगोपाल, पृ. सं. 25

31. महादेवी और उनकी गद्य रचनाएँ, माधवी राजगोपाल, पृ. सं. 25

32. महादेवी और उनकी गद्य रचनाएँ, माधवी राजगोपाल, पृ. सं. 40

33. महादेवी का संस्मरणात्मक गद्य, चरनसखी शर्मा,पृ. सं.—30

34. महादेवी का गद्यः एक मूल्यांकन, डा. विजय प्रकाश उपाध्याय पृ. सं.—48

35. महीयसी महादेवी, गंगा प्रसाद पाण्डेय, पृ.सं.—327

36. महादेवी (सं.) इन्द्रनाथ मदान, पृ.सं.—218

37. शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त, द्वितीय भाग, गोविन्द त्रिगुणायत पृ. सं.—496

38. ले. महादेवीः रेखाचित्र-एक विश्लेषण, श्री ओंकार राही, पत्रिका साहित्य संदेश, अप्रैल, 1963 पृ. सं.—405

39. महादेवीः रेखाचित्र-एक विश्लेषण, श्री ओंकार राही, पत्रिका साहित्य संदेश, अप्रैल, 1963 पृ. सं.—407

40. महादेवीः रेखाचित्र-एक विश्लेषण, श्री ओंकार राही, पत्रिका साहित्य संदेश, अप्रैल, 1963 पृ. सं.—408

40. (1) विशाल भारत, दिसम्बर, 1944, प्रकाश चन्द्र गुप्त

41. महादेवी जी के रेखाचित्र और संस्मरण, श्री घ.गो. वेद, साहित्य संदेश, अगस्त 1961, पृ.सं.—108

42. महादेवी का संस्मरण साहित्य, कृष्ण कुमार शर्मा, साहित्य-संदेश जुलाई-अगस्त, 1966 पृ.सं. 26
43. क्या महादेवी के रेखाचित्र संस्मरण भी है?, प्रा.कु. प्रेमलता, साहित्य सदेश, दिसम्बर-1966 पृ.सं.—216
44. महादेवी के गद्य का मानवतावादी धरातल, श्री रामशरण तिवारी साहित्य संदेश, अप्रैल 1962, पृ.सं.—476
45. महादेवी साहित्य समग्र-भाग-दो, सं. निर्मला जैन, पृ.सं.9
46. अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ.सं.9
47. संस्मरण, महादेवी वर्मा, आत्मकथ्य
48. शृंखला की कड़ियाँ, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—7
49. साहित्य संदेश, फरवरी 1955 ले.-आनन्द माधव मिश्र, पृ.सं.—303
50. साहित्य संदेश, फरवरी 1955 ले.-आनन्द माधव मिश्र, पृ.सं.—304
51. अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—27
52. अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—27
53. अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—28
54. अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—35
55. अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—41
56. अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—50
57. अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—56
58. अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—72
59. अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—71
60. अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—71-72
61. अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—93
62. अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—95
63. अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—101
64. स्मृति की रेखाएँ, महादेवी वर्मा, पृ. सं.—12

65. स्मृति की रेखाएँ, महादेवी वर्मा, पृ. सं.—18

66. स्मृति की रेखाएँ, महादेवी वर्मा, पृ. सं.—44

67. स्मृति की रेखाएँ, महादेवी वर्मा, पृ. सं.—56

68. स्मृति की रेखाएँ, महादेवी वर्मा, पृ. सं.—100

69. अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ. सं.—20

70. अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—63

71. अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—67

72. अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—77

73. अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—77

74. अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—83

75. स्मृति की रेखाएँ, महादेवी वर्मा, पृ. सं.—23

76. स्मृति की रेखाएँ, महादेवी वर्मा, पृ. सं.—22

77. स्मृति की रेखाएँ, महादेवी वर्मा, पृ. सं.—22

78. स्मृति की रेखाएँ, महादेवी वर्मा, पृ. सं.—37

79. स्मृति की रेखाएँ, महादेवी वर्मा, पृ. सं.—38

80. स्मृति की रेखाएँ, महादेवी वर्मा, पृ. सं.—81

81. स्मृति की रेखाएँ, महादेवी वर्मा, पृ. सं.—80

82. महादेवी के रेखाचित्रों में उपेक्षित तत्व, लेखिका-डा. प्रेमलता वर्मा प.-साहित्य सन्देश, अप्रैल, 1968 पृष्ठ सं.—415

83. अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—26

84. अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—51

85. अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—56

86. अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—72

87. अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—43

88. अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—101

89. अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—50

90. अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—51

91. अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—44

92. स्मृति की रेखाएँ, महादेवी वर्मा, पृ. सं.—28

93. स्मृति की रेखाएँ, महादेवी वर्मा, पृ. सं.—58

94. महादेवी का संस्मरणात्मक साहित्य, लेखक-आनन्द माधव मिश्र,पत्रिका,साहित्य संदेश, फरवरी 1955, पृ.सं.—304

95. महादेवी साहित्य समग्र-2 सं., निर्मला जैन, पृ.सं.—349

96. महादेवी साहित्य समग्र-2 सं., निर्मला जैन, पृ.सं.—352

97. चिन्तामणि-भाग-२, रामचन्द्र शुक्ल

98. शृंखला की कड़ियाँ, 'समर्पण', महादेवी वर्मा

99. शृंखला की कड़ियाँ, महादेवी वर्मा, पृ.सं.–7

100. महीयसी महादेवी, गंगा प्रसाद पाण्डेय, पृ.सं—332

101. शृंखला की कड़ियाँ, महादेवी वर्मा, पृ.सं.–13

102. शृंखला की कड़ियाँ, महादेवी वर्मा, पृ.सं.–20

103. शृंखला की कड़ियाँ, महादेवी वर्मा, पृ.सं.–26

104. शृंखला की कड़ियाँ, महादेवी वर्मा, पृ.सं.–36

105. शृंखला की कड़ियाँ, महादेवी वर्मा, पृ.सं.–36

106. शृंखला की कड़ियाँ, महादेवी वर्मा, पृ.सं.–37

107. शृंखला की कड़ियाँ, महादेवी वर्मा, पृ.सं.–46

108. शृंखला की कड़ियाँ, महादेवी वर्मा, पृ.सं.–48

109. शृंखला की कड़ियाँ, महादेवी वर्मा, पृ.सं.–61

110. शृंखला की कड़ियाँ, महादेवी वर्मा, पृ.सं.–70

111. शृंखला की कड़ियाँ, महादेवी वर्मा, पृ.सं.–83

112. शृंखला की कड़ियाँ, महादेवी वर्मा, पृ.सं.–83

113. शृंखला की कड़ियाँ, महादेवी वर्मा, पृ.सं.–80

114. शृंखला की कड़ियाँ, महादेवी वर्मा, पृ.सं.–90

115. शृंखला की कड़ियाँ, महादेवी वर्मा, पृ.सं.–101

116. शृंखला की कड़ियाँ, महादेवी वर्मा, पृ.सं.–110

117. शृंखला की कड़ियाँ, महादेवी वर्मा, पृ.सं.–119

118. शृंखला की कड़ियाँ, महादेवी वर्मा, पृ.सं.–129

119. शृंखला की कड़ियाँ, महादेवी वर्मा, पृ.सं.–131

120. शृंखला की कड़ियाँ, महादेवी वर्मा, पृ.सं.–148

121. शृंखला की कड़ियाँ, महादेवी वर्मा, पृ.सं.–148

122. शृंखला की कड़ियाँ, महादेवी वर्मा, पृ.सं.–151

123. शृंखला की कड़ियाँ, महादेवी वर्मा, पृ.सं.–19

124. शृंखला की कड़ियाँ, महादेवी वर्मा, पृ.सं.–60

125 शृंखला की कड़ियाँ, महादेवी वर्मा, पृ.सं.–93

126. शृंखला की कड़ियाँ, महादेवी वर्मा, पृ.सं.–7

127. महीयसी महादेवी, गंगाप्रसाद पाण्डेय पृ.सं.—332

128. महीयसी महादेवी, गंगाप्रसाद पाण्डेय पृ.सं.—334

129. साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—24

130. साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—30

131. साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—30-31

132. (1) साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—36

133. साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—57

134. साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—57

135. साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—82

136. साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—83

137. साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—100

138. साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—102

139. साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—103

140. साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—118

141. साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—124

142. साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—124

143. साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—127

144. साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—130

145. साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—149

146. साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—149

147. साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—151

148. साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—170

149. साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—171

150. साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—174

151. वीणा, जुलाई 1944, पृ.सं.—464, वीरेन्द्र कुमार एम.ए.

152. विशाल भारत, अप्रैल-1944, नगेन्द्र-पृष्ठ सं.—262

153. महादेवी साहित्य समग्र-3 सं.,—निर्मला जैन, पृ.सं.—15

154. महादेवी साहित्य समग्र-3 सं.,—निर्मला जैन, पृ.सं.—16

155. महादेवी साहित्य समग्र-3 सं.,—निर्मला जैन, पृ.सं.—11

156. महादेवी साहित्य समग्र-3 सं.,—निर्मला जैन, पृ.सं.—11

157. महादेवी साहित्य समग्र-3 सं.,—निर्मला जैन, पृ.सं.—285

158. महादेवी साहित्य समग्र-3 सं.,—निर्मला जैन, पृ.सं.—286

159. महादेवी साहित्य समग्र-3 सं.,—निर्मला जैन, पृ.सं.—121

160. महादेवी साहित्य समग्र-3 सं.,—निर्मला जैन, पृ.सं.—124

161. महादेवी साहित्य समग्र-3 सं.,—निर्मला जैन, पृ.सं.—126

162. महादेवी साहित्य समग्र-3 सं.,—निर्मला जैन, पृ.सं.—430

163. महादेवी साहित्य समग्र-3 सं.,—निर्मला जैन, पृ.सं.—433

164. क्षणदा, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—68

165. क्षणदा, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—71

166. क्षणदा, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—76

167. महादेवी साहित्य समग्र-3 सं., निर्मला जैन, पृ.सं.—554

168. महादेवी साहित्य समग्र-3 सं., निर्मला जैन, पृ.सं.—555

169. महादेवी साहित्य समग्र-3 सं., निर्मला जैन, पृ.सं.—72

170. महादेवी साहित्य समग्र-3 सं., निर्मला जैन, पृ.सं.—190

171. पथ के साथी, 'दो शब्द' महादेवी वर्मा

172. पथ के साथी, 'दो शब्द' महादेवी वर्मा, पृ.सं.—9

173. पथ के साथी, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—13

174. पथ के साथी, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—13

175. पथ के साथी, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—15

176. पथ के साथी, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—17

177. पथ के साथी, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—21

178. पथ के साथी, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—22

179. पथ के साथी, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—23

180. पथ के साथी, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—24

181. पथ के साथी, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—32

182. पथ के साथी, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—34

183. पथ के साथी, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—35

184. पथ के साथी, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—38

185. पथ के साथी, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—39

186. पथ के साथी, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—41

187. पथ के साथी, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—43

188. पथ के साथी, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—45

189. पथ के साथी, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—47

190. पथ के साथी, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—50

191. पथ के साथी, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—52

192. पथ के साथी, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—53

193. पथ के साथी, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—57

194. पथ के साथी, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—58

195. पथ के साथी, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—59

196. पथ के साथी, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—67

197. पथ के साथी, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—69

198. पथ के साथी, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—71

199. पथ के साथी, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—73

200. पथ के साथी, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—76

201. पथ के साथी,महादेवी वर्मा, पृ.सं.—77

202. पथ के साथी, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—76

203. पथ के साथी, महादेवी वर्मा, 'दो शब्द' से उद्धृत

204. पथ के साथी, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—28

205. पथ के साथी, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—39

206. पथ के साथी, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—38

207. पथ के साथी, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—45-46

208. पथ के साथी, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—71

209. पथ के साथी, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—33

210. पथ के साथी, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—29

211. पथ के साथी, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—26

212. पथ के साथी, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—10

213. पथ के साथी, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—22

214. पथ के साथी, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—21

215. पथ के साथी, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—41

216. मेरा परिवार 'उच्छवास', महादेवी वर्मा, पृ.सं.—6

217. मेरा परिवार 'आत्मिका' महादेवी वर्मा, पृ.सं.—18

218. मेरा परिवार, महादेवी वर्मा, पृ. सं.—27

219. मेरा परिवार, महादेवी वर्मा, पृ. सं.—40

220. मेरा परिवार, महादेवी वर्मा, पृ. सं.—40

221. मेरा परिवार, महादेवी वर्मा, पृ. सं.—41

222. मेरा परिवार, महादेवी वर्मा, पृ. सं.—50

223. मेरा परिवार, महादेवी वर्मा, पृ. सं.—47

224. मेरा परिवार, महादेवी वर्मा, पृ. सं.—61

225. मेरा परिवार, महादेवी वर्मा, पृ. सं.—61

226. मेरा परिवार, महादेवी वर्मा, पृ. सं.—70

227. मेरा परिवार, महादेवी वर्मा, पृ. सं.—75

228. मेरा परिवार, महादेवी वर्मा, पृ. सं.—82

229. मेरा परिवार, महादेवी वर्मा, पृ. सं.—86

230. मेरा परिवार, महादेवी वर्मा, पृ. सं.—89

231. मेरा परिवार, महादेवी वर्मा, पृ. सं.—92

232. मेरा परिवार, महादेवी वर्मा, पृ. सं.—93

233. मेरा परिवार, महादेवी वर्मा, पृ. सं.—93

234. मेरा परिवार, महादेवी वर्मा, पृ. सं.—99

235. मेरा परिवार, 'उच्छवास' महादेवी वर्मा, पृ. सं.—9

236. महादेवी अभिनन्दन ग्रन्थ, सं-देवदत्त शास्त्री, पृ.सं.—230

237. अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—52

238. अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—60

239. साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध,महादेवी वर्मा, पृ.सं.—58

240. अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—47

241. उत्तर प्रदेश, 'महादेवी वर्मा अंक' सितम्बर—1988, पृ.सं.—141

242. अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—58-59

243. अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—16

244. महादेवी, सं.-इन्द्रनाथ मदान, पृ.सं.—228

245. महादेवी साहित्य समग्र-3, सं. निर्मला जैन, पृ.सं.—119

246. अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—11

247. अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—15

248. साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध,महादेवी वर्मा, पृ.सं.—43

249. अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—61

250. अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—53

251. अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—55

252. वीणा, जुलाई 1942 लें. प्रो. अशोक, एम.ए. पृ. सं.—816

253. अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—38

254. पथ के साथी, महादेवी वर्मा पृ. सं.—34

255. साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध,महादेवी वर्मा, पृ.सं.—113

256. साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध,महादेवी वर्मा, पृ.सं.—37

257. रश्मि, महादेवी वर्मा, पृ. सं.—5

258. श्रृंखला की कड़ियाँ, महादेवी वर्मा,पृ. सं.—13

259. अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—84

260. अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—55

261. स्मृति की रेखाएँ, महादेवी वर्मा, पृ. सं.—43

262. अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—71

263. महादेवी, सं. इन्द्रनाथ मदान, पृ. सं.—200

264. वीणा, जुलाई 1942 पृ. सं.—819

265. साहित्य सन्देश, नवम्बर-1966, डा. प्रेमलता कुमारी पृ.सं.—419

266. श्रृंखला की कड़ियाँ, महादेवी वर्मा, पृ. सं.—46

267. साहित्य सन्देश, फरवरी-1955, आनन्द माधव मिश्र, पृ.सं.—305

268. अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—51

269. साहित्य सन्देश, फरवरी-1955, आनन्द माधव मिश्र, पृ.सं.—305

270. साहित्य सन्देश, फरवरी-1955, आनन्द माधव मिश्र, पृ.सं.—305

271. साहित्य सन्देश, अप्रैल-1963, ओंकार राही, पृ.सं.—407

272. अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—72

273. अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, पृ.सं.—72

274. वीणा, जुलाई 1942, प्रो. अशोक, पृ. सं.—818-819

275. आलोचना, जुलाई-सितम्बर 1973, रेखा अवस्थी, पृ. सं.—96

276. आलोचना, जुलाई-सितम्बर 1973, रेखा अवस्थी, पृ. सं.—96

277. आलोचना, जुलाई-सितम्बर 1973, रेखा अवस्थी, पृ. सं.—96

278. आलोचना, जुलाई-सितम्बर 1973, रेखा अवस्थी, पृ. सं.—96

279. महोदवी वर्मा, काव्य कला और जीवन दर्शन, शचीरानी गुर्टू पृ. सं.—122

280. महादेवी, सं. परमानन्द श्रीवास्तव, पृ. सं.—182

281. विशाल भारत, अप्रैल 1944, नगेन्द्र पृ. सं.—261

282. विशाल भारत, अप्रैल 1944, नगेन्द्र पृ. सं.—262

283. विचार और अनुभूति, डा. नगेन्द्र पृ. सं.—56-57

284. विशाल भारत, अप्रैल 1944, नगेन्द्र पृ. सं.—262

* * *

उपसंहार

महादेवी वर्मा का साहित्य लेखन में प्रवेश स्वाधीनता आन्दोलन की पृष्ठभूमि में होता है। इसी समय गद्य लेखन में प्रेमचन्द, जैनेन्द्र, यशपाल जैसे मूर्धन्य कथाकार जीवन की छोटी से छोटी समस्याओं से लेकर राष्ट्रीय स्तर की समस्याओं को अपनी रचनाओं का विषय बना रहे थे, वहीं दूसरी ओर काव्य के क्षेत्र में प्रसाद, निराला और पन्त जैसे कवि छायावादी काव्य प्रवृत्तियों को उसके शीर्ष तक पहुँचा चुके थे। महादेवी इसी परम्परा की अगली कड़ी के रूप में साहित्य में प्रवेश करती हैं। इस समय साहित्य में जहाँ एक ओर समष्टि की चिन्ता से लेखक जूझ रहे थे, वहीं दूसरी ओर वैयक्तिक सुख-दुख की पीड़ा भी कवियों की अभिव्यक्ति का आधार बन रही थी। यह युग छायावाद का युग था, जिसे अपने अस्तित्व-स्थापन के लिए आलोचना की कठिन परीक्षा से गुज़रना पड़ रहा था।

यद्यपि महादेवी के काव्यक्षेत्र में प्रवेश तक छायावाद पूर्णतया प्रतिष्ठापित तो हो चुका था, लेकिन छायावाद की निरन्तर की जा रही आलोचना अब छायावाद से हटकर उसके प्रमुख कवियों को अपने घेरे में ले रही थी और यही कारण है कि महादेवी की प्रथम काव्यरचना 'नीहार' के साथ ही उनकी आलोचना भी शुरू हो जाती है, जो उनकी अंतिम काव्यरचना 'दीपशिखा' तक चलती रही। आज हम महादेवी के आलोचकों के दो वर्ग देखते हैं-एक वर्ग उनके काव्य में छायावादी प्रवृत्तियों का पूर्ण परिपाक मानता है और दूसरा वर्ग उनके काव्य को छायावादी प्रवृत्तियों से शून्य मानता है लेकिन अब यह तो निश्चित हो चुका है कि महादेवी की कविता पूरी तरह से छायावादी कविता है। 'नीहार' से लेकर 'दीपशिखा' तक उनमें काव्यानुभूतियों का प्रौढ़ से प्रौढ़तम विकास देखा जा सकता है।

महादेवी की कविता पर सबसे बड़ा आरोप एकरसता का लगाया गया है और कहा गया है कि उसमें वैविध्य नहीं है, बस एक जैसी भावभूमि ही सभी रचनाओं में मिलती है। अन्तर है तो सिर्फ इतना कि किसी में अनुभूति का तत्व प्रबल हो जाता है और किसी में चिन्तन का तत्व हावी हो जाता है। हम यदि इस दृष्टि से उन रचनाओं की विषयवस्तु का विवेचन करें तो निश्चय ही उसमें एकरसता है लेकिन एक ही अनुभूति को इतनी गहराई और व्यापकता से व्यक्त किया गया है कि विषय की एकरसता की ओर हमारा ध्यान ही नहीं जाता। इसी प्रकार महादेवी ने जहाँ आध्यात्मिक प्रेम की अभिव्यक्ति लौकिक रूपकों के माध्यम से की है, वहाँ भी आलोचकों ने इस अभिव्यक्ति के बीज को दमित कामवासना और अतृप्त इच्छाओं में ढूँढ़ा है। लेकिन जो कवयित्री बचपन से ही बौद्ध भिक्षुणी बनने का स्वप्न देख रही हो और एक स्थान

पर वे स्वयं इस बात की पुष्टि भी करती हैं,- 'आप आज से साठ वर्ष पहले की कल्पना कीजिए, कि जब एक पन्द्रह-सोलह वर्ष की लड़की कहती है कि वह गृहस्थ नहीं होगी, वह भिक्षु होगी। कल्पना कीजिए, उसने कितना कष्ट, कितना संघर्ष झेला होगा, लेकिन संघर्ष ने मुझे कभी पराजित नहीं किया।'' अतः उनके काव्य की ऐसी आलोचना उचित नहीं है। फिर फ्रायडीय दृष्टि से कविता की आलोचना हमारे यहाँ की अवधारणा नहीं है। यह तो पश्चिम से उधार ले ली गई अवधारणा है, जिसे आज पश्चिम में ही साहित्यजगत से बहिष्कृत किया जा चुका है। महादेवी की कविता प्रारम्भ से ही अपने रहस्यमयी स्वरूप के कारण आलोचकों के मध्य विवाद का विषय बनी रही है। उनके आलोचक और प्रशंसक दोनों ही यह नहीं समझ पा रहे थे कि आध्यात्मिक संस्पर्श से युक्त होते हुए भी कोई कविता अपने रूढ़ अर्थ में रहस्यवादी नहीं है। महादेवी भी अन्य छायावादी कवियों के समान व्यक्तिगत सुख-दुख के संस्पर्श से अपनी कविता को प्राणशक्ति देती हैं। कविता के सम्बन्ध में उनका मानना था कि, ''संभवतः अंतर्जगत में बहुत कुछ ऐसा रहस्यमय है, जिसे हम कविता में व्यक्त करें तो हमको कुछ बल मिलता है।'' लेकिन यह रहस्यमय अंतर्जगत, जिसे महादेवी कविता में व्यक्त करती हैं, प्रतीक और संकेत के माध्यम से अभिव्यक्त पाता है और इस कारण वह निगूढ ही बना रहता है। महादेवी के व्याख्याकार उनकी कविता में व्यक्त सर्वनाम और अस्पष्ट विम्बों के द्वारा असीम और ससीम के बीच होने वाली आँखमिचौनी की समानता मध्ययुगीन रहस्यवाद से करते हैं और महादेवी को उन कवियों की कोटि में बिठा देते हैं। फिर उन्हें आधुनिक युग की मीरा के रूप में स्थापित किया जाने लगता है। यद्यपि विद्रोह और समकालीन परिस्थितियों से संघर्ष की दृष्टि से तो महादेवी और मीरा को समान स्तर पर रखा जा सकता है। मीरा मध्यकालीन समाज में लोकलाज के समस्त बंधनों को तोड़कर साधु-संतों के बीच जा बैठती है। राजघराने से सम्बद्ध होने के कारण तथा राजपरिवार की मर्यादा की बेड़ियों को तोड़ने के कारण मीरा द्वारा किया गया विद्रोह अधिक कठिन था। महादेवी भी आधुनिक युग की महिला थी और इस युग में भी स्त्रियों को वेदाध्ययन और संस्कृत पढ़ने का अधिकार प्राप्त नहीं था। महादेवी वेद और संस्कृत पढ़ने की ज़िद करती हैं। वे स्वयं स्वीकार करती हैं कि -''स्त्रियों का वेदाध्ययन तो व्यर्थ था हमारे यहाँ। कोई पंडित सुनते ही अप्रसन्न हो जाता था।'' लेकिन महादेवी उन रूढ़ियों के विरुद्ध संघर्ष कर के वेदों का भी अध्ययन करती हैं और संस्कृत भी पढ़ती है, इसलिए विद्रोह और संघर्ष दोनों में ही है। अन्तर दोनों में यह है कि मीरा जहाँ भक्ति में तन्मय होकर सुधबुध खो बैठती हैं, वहीं महादेवी में भक्ति का तत्व तो है, लेकिन सुधबुध खो देने की स्थिति वहाँ निश्चय ही नहीं है। एक सचेष्टता है अपने साहित्य के प्रति, अपने समाज के प्रति, नारी वर्ग के प्रति और अपनी संस्कृति के प्रति और इसे हम युग की बदली हुई मान्यताओं के रूप में ग्रहण कर सकते हैं। दूसरी ओर अधिकांश आलोचकों

द्वारा यह कहा जाना कि महादेवी में अनुभूति की वह गहनता नहीं जो मीरा में मिलती है तथा वे महादेवी के गीतों को कलात्मक गीतों की कोटि में रख देते हैं। उनका मानना है कि चूँकि महादेवी अपने गीतों को सधे हुए शिल्पी के आश्चर्यचकित कर देने वाले कौशल के साथ अभिव्यक्त करती हैं अतः वहाँ कला ही प्रधान हो गई है। लेकिन इस ओर हमारा ध्यान नहीं जाता कि मीरा के गीतों में कलात्मक तत्व गौण हैं और रागात्मक तत्व प्रमुख है इसलिए जब भी मीरा के गीतों की चर्चा होती है तो उसकी अनुभूति की ही बात की जाती है और महादेवी के गीतों के सम्बन्ध में स्थिति भिन्न है, वहाँ अनुभूति के साथ-साथ कला भी प्रधान है। अतः कलात्मक तत्वों के प्रमुख होने के कारण उनके गीतों के रागात्मक तत्व के प्रति संदेह व्यक्त करना निश्चय ही उचित नहीं है। इस प्रकार आलोचकों द्वारा महादेवी को आधुनिक मीरा सिद्ध करने की जो कोशिश की गई, उस अत्यधिक प्रशंसा ने उनकी काव्यानुभूति की बनावट को समझने में सहायता तो नहीं की वरन् इसके स्थान पर उसकी विश्वसनीयता के बारे में संदेह अधिक पैदा कर दिया।

अपने जीवन में धार्मिक आडम्बरों को पूर्णतया नकारने वाली महादेवी अपनी कविता के विषय में एक ओर तो यह कहती हैं-"क्या पूजा क्या अर्चन रे!" और दूसरी ओर कविता के सम्बन्ध में उनकी धारणा है कि- कविता एक प्रकार से मेरे लिए आत्मा की अभिव्यक्ति भी है और पूजा अद्यनि भी।" महादेवी की कविता इसी आत्मा की अभिव्यक्ति है और सामान्य मानव के दुख को वे अपने काव्य विषय के रूप में चुनती हैं। वे लिखती हैं कि- मनुष्य मेरे लिए, मेरे निकट निरन्तर बड़ा है, लेकिन इसलिए बड़ा है कि कोई और भी उसके भीतर है।" यह 'कोई और' ही उनकी कविता में बार-बार अभिव्यक्त होता है। गद्य को वे स्वयं ही काव्य से सर्वथा अलग स्वीकार करती हैं। वे लिखती हैं कि-हाँ! गद्य में कुछ और कहती हूँ, पद्य में वह न कहूँ, यानी वही बात कहूँ जो गद्य में कहती हूँ तो मुझे बल नही मिलेगा। मेरा अन्तर्जगत दूसरे प्रकार की अभिव्यक्ति चाहता है।" महादेवी के इस प्रकार के कथन के प्रति प्रायः आलोचकों में विवाद की स्थिति देखी गई है। महादेवी द्वारा स्वयं अपने काव्य और गद्य के मध्य वैचारिक अन्तर को स्वीकार करने को लेकर निरन्तर की जा रही उनकी आलोचना को बल मिलता है।

महादेवी के काव्य में अन्तर्व्याप्त पीड़ा को लेकर आलोचकों ने अनेक प्रश्न उठाए हैं कि पीड़ा का ऐसा प्रसार उनके काव्य में सर्वत्र क्यों दिखाई पड़ता है। महादेवी इसका कारण अपने परिवार द्वारा प्राप्त अतिशय प्यार दुलार को मानती है जिसकी प्रतिक्रियास्वरूप ही उन्हें पीड़ा मधुर लगने लगी है। वे 'रश्मि' की भूमिका में अपने दुखवाद की अवधारणा पर भी पर्याप्त प्रकाश डालती हैं तथा आलोचकों द्वारा लगाई जा रही अटकलों को शान्त करने का प्रयास करती हैं। वे लिखती हैं कि -"दुख मेरे निकट जीवन का ऐसा

काव्य है जो सारे संसार को एक सूत्र में बाँध रखने की क्षमता रखता है। हमारे असंख्य सुख हमें चाहे मनुष्यता की पहली सीढ़ी तक भी न पहुँचा सके, किन्तु हमारा एक बूँद आँसू भी जीवन को अधिक मधुर, अधिक उर्वर बनाये बिना नहीं गिर सकता। मनुष्य सुख को अकेला भोगना चाहता है, परन्तु दुख सबको बाँटकर-विश्वजीवन में अपने जीवन को, विश्ववेदना में अपनी वेदना को इस प्रकार मिला देना जिस प्रकार एक जलबिन्दु समुद्र में मिल जाता है, कवि का मोक्ष है।

मुझे दुख के दोनों ही रूप प्रिय हैं, एक वह जो मनुष्य के संवेदनशील हृदय को सारे संसार से एक अविच्छिन्न बन्धन में बाँध देता है और दूसरा वह जो काल और सीमा के बन्धन में पड़े हुए असीम चेतन का क्रन्दन है।'' और वे सिर्फ भूमिका में ही नहीं वरन् कविता में भी कह उठती है कि -''कहता जग दुख को प्यार न कर।' आलोचकों द्वारा उनकी अनुभूति को लेकर जो प्रश्नचिह्न लगाए जाते हैं तो वे कह उठती है कि -

''जाने क्यों कहता है कोई
मैं तम की उलझन में खोई।''

इसी प्रकार महादेवी के काव्य में अव्यक्त, अज्ञात प्रियतम को आलम्बन बनाकर रहस्यात्मकता का आवरण जो चारों ओर तना हुआ सा दिखाई देता है उसमें भी आलोचक विद्वान अतृप्त कामवासना और दमित कुण्ठा के दर्शन करते हैं लेकिन महादेवी से युगों पीछे कबीर जैसे विध्वंसक कवि के काव्य में भी उसी अज्ञात, अव्यक्त प्रिय को सम्बोधित करके लिखे गए पद मिलते हैं। यद्यपि दोनों में थोड़ा अन्तर है, कबीर की रहस्यात्मकता साधनात्मक है और महादेवी की भावात्मक। लेकिन कबीर के पदों में किसी भी आलोचक ने अतृप्त कामवासना (पैराग्राफी) और दमित कुण्ठा का आरोपण नहीं किया।

महादेवी के काव्य में वैयक्तिक भावों की प्रधानता है परन्तु सामाजिक मुक्ति की आकांक्षा भी अत्यंत प्रबल रही है, जिसकी आलोचक वर्ग द्वारा प्रायः उपेक्षा कर दी जाती है। महादेवी की कविता में 'मैं' और 'मेरा' का जो सन्दर्भ बार-बार अभिव्यंजित होता है जैसे 'मैं' नीरभरी दुख की बदली' उसे व्यक्तिगत निष्ठा और समष्टिगत निष्ठा से जोड़कर देखने की जरूरत है, तभी निश्चित परिणाम उभरकर हमारे सामने आएंगे और इसी चिन्तन प्रक्रिया के चलते महादेवी के आलोचकों की दो कतारें हमें सामने खड़ी मिलती हैं- एक तो वह है जो उनकी व्यक्तिगत करुणा दुख और वेदना में समष्टि का आभास पाता है और दूसरा वह जो उनकी व्यक्तिगत, विरह, वेदना, कातरता आदि को नितांत निजी एकान्त क्षणों की अनुभूति मानता है, जहाँ समष्टि का कोई हस्तक्षेप नहीं है।

1942 में 'दीपशिखा' के प्रकाशन के पश्चात महादेवी काव्य के क्षेत्र में पूर्ण विराम लगा देती हैं। परमानन्द श्रीवास्तव भी अपने एक व्याख्यान में स्वीकार करते हैं कि— "1942 में महादेवी ने दीपशिखा की लम्बी भूमिका लिखी और अपने कविकर्म का आदर्शीकरण करके जैसे वे काव्य से विदा ले रही हो।" यद्यपि महादेवी के अन्य समानधर्मा कवि प्रगतिवाद से प्रभावित होकर उस ओर उन्मुख हो गए लेकिन महादेवी इस विचारधारा को स्वीकार नहीं कर पाई। वे लिखती भी है कि- 'मुझसे जहाँ ठहराया गया, वहाँ मैं ठहरी। मैंने प्रयत्न भी नहीं किया कि लोग मुझको प्रगतिशील माने या न माने, यह चिंता मैंने कभी नहीं की।" सम्भवतः महादेवी को प्रगतिवाद के अन्तर्गत यथार्थ का स्थूल वर्णन स्वीकार न हुआ और वे गद्य क्षेत्र की ओर उन्मुख हो जाती हैं। जिस प्रगतिवाद की उनकी कविता में बार-बार उपेक्षा की गई है, वही प्रगतिशील तत्व गद्य के विविध आयामों की रचना के आधार बनते हैं। हमें उनकी गद्यरचनाओं में यथार्थ के विविध रूप एक ही स्थान पर मिल जाते है तथा ये तत्व निरन्तर प्रगतिशीलता का ढ़िढोंरा पीटने वाले लेखकों की रचनाओं में भी नहीं मिलते। प्रगतिवाद का प्रतिनिधित्व करने वाले रामा, भक्तिन, सबिया, रधिया, बदल, अलोपी आदि संस्मरणात्मक रेखाचित्र उस समय लिखे गए जब प्रगतिशील लेखन की शुरुआत भी नहीं हुई थी। महादेवी इन पात्रों का चित्रण जितनी आत्मीयता, लगाव और संलग्नता से करती है, उनकों पढ़ने वाला हर पाठक भी उन पात्रों के साथ वैसी ही आत्मीयता और लगाव का अनुभव करता है। बस इसके लिए जिस विशेषता का उसके व्यक्तित्व में समावेश होना आवश्यक है, वह संवेदनशीलता का गुण है। लेकिन इन संस्मरणात्मक रेखाचित्रों में एक कमी अवश्य खटकती है। वहाँ महादेवी इन पात्रों की समस्याओं को केवल उजागर मात्र कर देती हैं। वे हमें किसी समस्या का समाधान करती हुई अथवा उस समाधान की ओर संकेत करती हुई नहीं मिलती। क्या कारण है कि महादेवी उन समस्याओं की ओर संकेत मात्र करती है? उन्हें हल करने का प्रयास नहीं करती। यह प्रश्न अनुत्तरित ही रह जाता है।

महादेवी का निबन्ध लेखन उनके गहन अध्ययन, चिन्तन एवं मनन का परिणाम है। वे गवेषणात्मक दृष्टि से अपने विषय का पूर्ण ऐतिहासिक विवेचन प्रस्तुत करती है। अपने निबन्धों के माध्यम से छायावाद को लेकर लगाई जा रही विभिन्न अटकलों को शान्त करने का प्रयास करती हैं और निश्चय ही, इसमें महादेवी को पूरी सफलता मिली है। 'मेरा परिवार' की रचना द्वारा महादेवी मानवेतर प्राणियों के प्रति अपनी संवेदना और सहानुभूति व्यक्त करती है। अपनी सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति के द्वारा वे उनकी छोटी-छोटी बातों पर हमारा ध्यान आकर्षित करती है। निश्चय ही परिवार की यह अवधारणा ही मानवता की सच्ची अवधारणा है और सृष्टि के प्रति गहरा एकात्म भाव प्रदर्शित करती हैं।

हम इक्कीसवीं सदी को स्त्री मुक्ति के दशक के रूप में मना रहे हैं, कई कार्यक्रम में भाग ले रहे हैं सेमिनार आयोजित करवा रहे हैं, लेकिन आज जब हम महादेवी की 1942 में प्रकाशित रचना 'शृंखला की कड़ियाँ' की विषयवस्तु का अध्ययन करते हैं तो उसमें व्यक्त स्त्री के सम्बन्ध में महादेवी की बेचैनी और चिन्तन हमें गहरे आश्चर्य में डाल देती है। स्त्री को लेकर जिस स्वाधीनता की बात हम आज कर रहे हैं वह महादेवी में 30 के दशक में विद्यमान थी। 'शृंखला की कड़ियाँ' एक स्त्री द्वारा स्त्री को नये दृष्टिकोण से देखने का सफल प्रयास है। आज इस रचना की प्रासंगिकता और भी बढ़ गई है। हम स्त्री की सामाजिक-आर्थिक स्थिति में भले ही सुधार के लक्षण देख रहे हों लेकिन उसके तनाव, उसकी जटिलतायें, घर और बाहर दोनों मोर्चों में सामंजस्य बिठाती हुई स्त्री के अपने भय और भी विकराल रूप धारण कर चुके हैं। गगन गिल अपने एक व्याख्यान में स्वीकार करती है कि- "महादेवी ने अपने जीवनकाल में, अपनी रचनायात्रा में एक स्त्री की सामाजिक स्थिति के कितने ही छिलके उतारे हों, बदला अब भी कुछ नहीं है, बल्कि अनेक अर्थों में हम अपनी रूढ़ियों में, अपनी अपेक्षाओं और मान्यताओं में पीछे ही जाते गए हैं। हमारी खिड़कियाँ खुलने की बजाय और जाम ही हुई हैं।"

महादेवी को समसामयिक परिस्थितियों से जोड़ने वाले ग्रन्थ 'बंगदर्शन' और 'हिमालय' है जिनके द्वारा वे देश में आए हुए संकट के क्षणों में देश के साथ खड़ी हुई दिखाई देती हैं फिर वे अनुवाद कार्य में संलग्न होती है और 'सप्तपर्णा' में संस्कृत साहित्य के कुछ मधुर अंशों का हिन्दी में अनुवाद करती है इस प्रकार वे संस्कृत न जानने वाले हिन्दी भाषी को समृद्ध संस्कृत साहित्य से परिचय करवाती है। महादेवी संपादन कार्य से भी जुड़ी रहती है। सामाजिक क्षेत्र में भी वे सक्रिय रहती है, इस प्रकार वे अपने व्यक्तित्व का बहुमुखी विकास करती हैं। हम महादेवी के समग्र साहित्य में एक विचित्र स्थिति पाते हैं। महादेवी ने जिस विधा को अपनाया, उस विधा को छोड़ने के बाद वह उस विधा में वापस नहीं आती। उन्होंने काव्य से शुरुआत की और 'दीपशिखा' के बाद संस्मरणात्मक रेखाचित्र लिखे, फिर शृंखला की कड़ियाँ जैसा निबन्ध आया, आलोचनात्मक और ललित निबन्ध भी लिखे, अनुवाद कार्य किया लेकिन काव्य से विमुख हो जाने पर वे पुनः काव्य सृजन की ओर प्रवृत्त नहीं होती। संस्मरणात्मक रेखाचित्र लिखने के बाद इस तरह की रचना उनके साहित्य में दूसरी नहीं मिलती, यद्यपि 'पथ के साथी' की रचना करती है लेकिन विषयभूमि सर्वथा भिन्न है। ऐसा लगता है कि मानो वे जिस विधा को अपनाती हैं, उसमें लिखने के बाद उस विधा पर विराम लगा देती हैं कि अब वापस यहाँ नहीं आना और आगे बढ़ जाती हैं।

अन्त में, महादेवी के समग्र साहित्य के इस विश्लेषण के पश्चात एक प्रश्न अवश्य मन में कौंधता है कि क्या हम हमेशा महादेवी को आलोचना के उन्हीं चिरपरिचित खाँचों में बिठाते रहेंगे और इसी परम्परा

प्रचलित आधार पर उनके साहित्य का मूल्यांकन करते रहेंगे। निश्चय ही, आज महादेवी के समग्र साहित्य के सम्बन्ध में वाद विवाद से ऊपर उठने की आवश्यकता है तथा एक नये प्रगतिशील दृष्टिकोण से उनके साहित्य को देखने की आवश्यकता है जिससे समाज को उनके साहित्य द्वारा जो जीवनदिशा प्राप्त हुई है, उसका सम्यक् अनुशीलन हम साहित्यिक सन्दर्भों में कर सकें। महादेवी के काव्य पर लगाए गए अनेक आरोप क्या आलोचकों की पुरुष प्रधान प्रवृत्ति का परिचय नहीं देते। जो समाज स्त्रियों को वेदाध्ययन के अधिकार से भी वंचित रखना चाहता है, कहीं यह सत्य वास्तविकता तो नहीं कि महादेवी की इतनी कटु आलोचना उसी वर्ग द्वारा निर्धारित प्रतिमानों के आधार पर की गई हो। अन्यथा क्या कारण है कि समान भावभूमि को स्वीकार करने पर भी अन्य छायावादी कवि जैसे प्रसाद, पन्त, निराला की कविताएँ उस तरह से आलोचना के घेरे में नहीं आती जिस तरह से महादेवी की कविताएँ आती है। क्या महादेवी के काव्य पर आलोचकों द्वारा लगाए गए अनेक आरोपों पर उनका नारी व्यक्तित्व हावी हो गया है। यदि हम तत्कालीन समाज में व्याप्त संक्रमण की दशा और युगीन परिवेश को दृष्टिगत रखें तो महादेवी के काव्य की भावभूमि को और भी अधिक गहराई के साथ समझ सकते हैं। यदि तत्कालीन आलोचकों द्वारा महादेवी के नारी व्यक्तित्व को परे रखकर उनके काव्य का मूल्यांकन करने में कुछ उदारता का परिचय दिया जाता तो उनकी काव्यगत प्रवृत्तियों के अनेक बंद आयाम खुल जाते। प्रगतिवाद का जोर होने पर और सभी प्रमुख कवियों द्वारा प्रगतिवाद की ओर अग्रसर हो जाने पर भी महादेवी ने काव्य में छायावाद का दामन नहीं छोड़ा और उनका काव्य छायावाद से प्रारम्भ होकर छायावाद में ही समाप्त हो जाता है। 'दीपशिखा' के पश्चात जब महादेवी गद्य क्षेत्र में आती हैं तो उनके गद्य में काव्य से सर्वथा भिन्न भावभूमि को देखकर हम आश्चर्य में पड़ जाते हैं कि काव्य में बिल्कुल एकाकी रहने वाली महादेवी गद्य साहित्य में आकर पूर्णतया सामाजिक और यथार्थोन्मुखी कैसे हो जाती है। केवल भावभूमि के क्षेत्र में ही नहीं वरन् अभिव्यंजना शिल्प के क्षेत्र में भी नई भाषा और शिल्प को स्वीकार करके चलती हैं। लेकिन यदि हम उनकी कविताओं का अध्ययन पूर्वाग्रह से मुक्त होकर करें तो उनकी 'जाग तुझको दूर जाना'', 'पंथ रहने दो अपरिचित, प्राण रहने दो अकेला', 'तोड़ दो यह क्षितिज मैं भी देख लूँ उस ओर क्या है?' कह दे माँ अब क्या देखूँ, रात के उर में दिवस की चाह का शर हूँ', 'कीर का प्रिय आज पिंजर खोल दो' जैसी पंक्तियों में गद्य में विद्यमान सामाजिकता और यथार्थता के सृजनबीज अंकुरित होना प्रारम्भ हो चुके थे।

महादेवी के काव्य-रचना-संसार और गद्य रचना संसार में व्याप्त इन तमाम अंतर्विरोधों के साथ ही उनको पढ़ने, समझने और उन पर किसी भी प्रकार की संवाद योजना की आवश्यकता है। निश्चय ही, परमानन्द श्रीवास्तव का यह कथन पूरे सन्दर्भ में अत्यन्त सार्थक है- ''परिचित और ज्ञात महादेवी में एक

दूसरी कम ज्ञात महादेवी को खोजकर पुनः पढ़ने की जरूरत है। उन्होंने अपनी कविताओं में, कहानियों में, कथात्मक विवरणों में, रेखाचित्रों में, गद्य के रूप प्रकार में, अपने व्याख्यानों में, अपने सामाजिक कर्म में किस तरह अपने एक व्यक्तित्व को विकसित करने की कोशिश की और कुछ न कुछ मोर्चे तो ऐसे है, जिन पर महादेवी की सक्रियता अन्त तक बनी रही, वह अपने आप में महत्वपूर्ण है। ऐसी एक लेखिका को उसे समग्र रूप में पढ़ने के लिए उसके अपने अंतर्विराधों को भी शायद देखने की ज़रूरत बनी रहती है।

* * *

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

महादेवी साहित्यः

काव्य कृतियाँ-

1. **नीहार** (1930), साहित्यभवन प्रा0 लिमिटेड, इलाहाबाद

2. **रश्मि** (1932), साहित्यभवन प्रा0 लिमिटेड, इलाहाबाद

3. **नीरजा** (1934) लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

4. **सांध्यगीत** (1936) लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

5. **दीपशिखा** (1942) लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

6. **बंग दर्शन** (1943-44) प्रयाग महिला विद्यापीठ की ओर से

7. **हिमालय** (1962), लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

8. **आधुनिक कविः** महादेवी वर्मा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

9. **सन्धिनी** (1964), महादेवी वर्मा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

गद्य रचनाएँ

10. **अतीत के चलचित्र** (1941), लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

11. **स्मृति की रेखाएँ,** (1943) लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

12. **श्रृंखला की कड़ियाँ** (1942), भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद

13. **पथ के साथी** (1956), लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

14. **मेरा परिवार** (1971), लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

15. **साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध,** चयन-गंगा प्रसाद पाण्डेय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद (1960)

16. **संकल्पिता**, सेतु प्रकाशन, झाँसी (1969)
17. **क्षणदा**, प्रयाग भारती, इलाहाबाद (1956)
18. **महादेवी साहित्य समग्र**- 1,2,3, संपादन -निर्मला जैन, (प्रथम संस्करण-1969), सेतु प्रकाशन, झाँसी

सहायक ग्रन्थ-

1. **महादेवी संस्मरण ग्रन्थ** (सं0) सुमित्रानन्दन पन्तः शान्ति जोशी, लोकभारती प्रकाशन, (प्र0सं0- 24 मार्च 1967 ई0)
2. **महादेवी अभिनन्दन ग्रन्थ**, (सं0) देवदत्त शास्त्री, भारती परिषद प्रयाग
3. **उत्तर प्रदेश (दिसम्बर 1988), 'महादेवी वर्मा अंक'**, सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उत्तर प्रदेश
4. **महादेवीः चिंन्तन व कला, इन्द्रनाथ मदान**, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, (संस्करण-1973)
5. **महीयसी महादेवी, गंगा प्रसाद पाण्डेय**, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, (प्रथम संस्करण-1969)
6. **महादेवी वर्माः काव्यकला और जीवन दर्शन**, (सं0) **शचीरानी गूर्टू** आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, (संस्करण 1963)
7. **महादेवी, सं0 परमानन्द श्रीवास्तव**, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद (द्वितीय संस्करण-1997)
8. **महादेवी वर्मा, कुमार विमल**, पराग प्रकाशन, पटना (संस्करण-1962)
9. **महादेवी का काव्य सौष्ठव, कुमार विमल**, अनुपम प्रकाशन, (प्रथम संस्करण-1983)
10. **महादेवीः नया मूल्यांकन, गणपति चन्द्र गुप्त**, लोकभारती प्रकाशन, (द्वितीय संस्करण-1997)
11. **महादेवी का काव्यः एक विश्लेषण**, डा0 **दुर्गाशंकर मिश्र**, हिन्दी साहित्य भण्डार, लखनऊ, (प्रथम संस्करण-1979)
12. **महादेवी वर्मा साहित्यः कला, जीवनदर्शन, रामचन्द्र गुप्त**, सरस्वती पुस्तक सदन, आगरा (प्रथम संस्करण-1955)

13. **महादेवी वर्माः कवि और गद्यकार**, डा0 **लक्ष्मण दत्त** गौतम, कोणार्क प्रकाशन, दिल्ली (प्रथम संस्करण- 1972)

14. **महादेवी की काव्यचेतना**, डा0 **राजेन्द्र मिश्र**, तक्षशिला प्रकाशन लखनऊ, (प्रथम संस्करण- 1979)

15. **महादेवी की काव्यसाधना**, **सत्यपाल चुघ**, विश्वभारती प्रेस पहाड़गंज, नई दिल्ली।

16. **महादेवी की रहस्य साधना**, **विश्वम्भर मानव**, बनबटा मुरादाबाद (संस्करण-1944)

17. **महादेवी की रचना प्रक्रिया**, **कृष्णदत्त पालीवाल**, पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली, (संस्करण- फरवरी 1971)

18. **महादेवी का काव्य वैभव** (सं0) **रमेशचन्द्र गुप्त**, प्रेम प्रकाशन मन्दिर, दिल्ली (प्रथम संस्करण-1968)

19. **महादेवीः सृजन और शिल्प**, **रणजीत सिंह**, जयभारती प्रकाशन, मुट्ठीगंज इलाहाबाद (प्रथम संस्करण-1997)

20. **महादेवी वर्मा के काव्य में प्रतीक योजना**, **अरविन्द मोरे**, अनुभव प्रकाशन कानपुर, (संस्करण-1987)

21. **महादेवी का बिम्बबोध और प्रतीक सृजन**, डा0 **सन्तोष शर्मा**, आर्यबुक डिपो, करोलबाग नई दिल्ली (संस्करण-1985)

22. **महादेवी वर्मा और उनका आधुनिक कवि**, **सुरेश चन्द्र गुप्त**, हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली (प्रथम संस्करण-1957)

23. **महादेवी की कविताः संशय और समाधान, ब्रजलाल गोस्वामी**

24. **छायावाद और महादेवी, नन्द कुमार राय**

25. **कवयित्री महादेवी वर्मा, शोभनाथ यादव**, बम्बई, 1969

26. **महादेवी का काव्य-परिशीलन, भागीरथी दीक्षित**

27. **महादेवी का वेदना-भाव, जयकिशन प्रसाद**

28. **महादेवीः विचार और व्यक्तित्व, शिवचन्द्र नागर**

29. महादेवी की साहित्य साधना, सुरेश चन्द्र गुप्त

30. महादेवी और उनका काव्य, गंगा प्रसाद पाण्डेय

31. महादेवी के काव्य में लालित्य विधान, डा0 मनोरमा शर्मा, मराठवाड़ा (1974)

32. गद्य लेखिका महादेवी, योगराज थानी, भारतीय साहित्य मन्दिर, दिल्ली

33. महादेवी का संस्मरणात्मक गद्य, चरनसखी शर्मा, शोध -प्रबन्ध प्रकाशन दिल्ली।

34. महादेवी और उनकी गद्य रचनाएँ, माधवी राजगोपालन रंजन प्रकाशन, आगरा (1968)

35. महादेवी का गद्य-एक मूल्यांकन , डा0 विजय प्रकाश उपाध्याय, रेणुका प्रकाशन, आगरा (जून 1988)

36. गद्यकार महादेवी, वीरेन्द्र कुमार बड़सूवाला

37. छायावाद, नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली (1995)

38. छायावादः पुनर्मूल्यांकन, सुमित्रानन्दन पन्त, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

39. छायावाद, सं0-उदयभानु सिंह, सामयिक प्रकाशन, दिल्ली

40. छायावाद के आधार स्तम्भ, गंगा प्रसाद पाण्डेय, लिपि प्रकाशन, दिल्ली।

41. छायावादः एक पुनर्मूल्यांकन, डा0 रवीन्द्र भ्रमर, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली (1971)

42. छायावादी काव्य, डा0 कृष्णचन्द्र वर्मा, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल (1972)

43. छायावाद की भाषा, डा0 रमेशचन्द्र गुप्त, प्रवीण प्रकाशन मेहरौली, दिल्ली (1984)

44. छायावाद की प्रासंगिकता, रमेशचन्द्र शाह, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली।

45. छायावादःउत्थान, पतन, पुनर्मूल्यांकन, डा0 देवराज, कल्पकार प्रकाशन, लखनऊ (1973)

46. छायावाद और प्रगतिवाद, देवेन्द्रनाथ शर्मा, ग्रन्थमाला कार्यालय, पटना।

47. छायावाद युग, शम्भूनाथ सिंह, सरस्वती मन्दिर, बनारस (प्र0सं0-1952)

48. छायावाद और रहस्यवाद का रहस्य (सं0) धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी, राजप्रकाशन पटना (1955)

49. छायावादः विश्लेषण और मूल्यांकन, दीनानाथ शरण नवयुग ग्रन्थकार, लखनऊ (प्र0सं0-1958)

50. छायावाद की काव्यसाधना, प्रो0 श्रीपाल सिंह क्षेम, साहित्यग्रन्थमाला कार्यालय, बनारस।

69. देखा-परखा, इलाचन्द्र जोशी, राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली (प्रथम संस्करण-1957)

70. विचार और अनुभूति, नगेन्द्र, गौतम बुक डिपो, दिल्ली

71. विचार और विश्लेषण, नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली (1955)

72. शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धांत, गोविन्द त्रिगुणायत, भारतीय साहित्य मन्दिर दिल्ली (1959)

73. साहित्यचिन्ता, देवराज

74. काव्यधारा (सं0) शिवदान सिंह चौहान, आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली (1955)

75. साहित्यिकी - शान्तिप्रिय द्विवेदी

76. सामयिकी, शान्तिप्रिय द्विवेदी

77. स्मृतियाँ और कृतियाँ, शान्ति प्रिय द्विवेदी, चौखम्भा विद्यापीठ वाराणसी (1966)

78. जीवन के तत्व और काव्य के सिद्धांत, लक्ष्मीनारायण सुधांसु

79. प्रसाद, निराला, पन्त, महादेवी की श्रेष्ठ रचनाएँ, प्रस्तुतकर्ता-वाचस्पति पाठक, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

80. निराला की कविताएँ और काव्य भाषा, रेखा खरे

पत्र पत्रिकाएँ -

1. चाँद
2. सरस्वती
3. सुधा
4. माधुरी
5. विशाल भारत
6. साहित्य सन्देश
7. वीणा
8. रूपाभ
9. अवन्तिका
10. आजकल
11. आलोचना